बी०टी०सी० द्वितीय सेमेस्टर

सैद्धान्तिक विषय – 03

वर्तमान भारतीय समाज और प्रारम्भिक शिक्षा

राज्य शिक्षा संस्थान, उ0प्र0,
इलाहाबाद

Downloaded From www.dietmathura.org

बी0टी0सी0 द्वितीय सेमेस्टर

मुख्य संरक्षक	:	**श्री एच0एल0गुप्ता,** आई.ए.एस., सचिव, बेसिक शिक्षा, उ0प्र0, शासन, लखनऊ
संरक्षक	:	**सुश्री कुमुदलता श्रीवास्तव,** आई.ए.एस. राज्य परियोजना निदेशक, सर्व शिक्षा अभियान, लखनऊ
निर्देशन	:	**श्री सर्वेन्द्र विक्रम बहादुर सिंह, निदेशक,** राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, उ0प्र0
समन्वयन	:	**श्री दिब्यकान्त शुक्ल, प्राचार्य,** राज्य शिक्षा संस्थान, उ0प्र0, इलाहाबाद
परामर्श	:	**श्री अजय कुमार सिंह, संयुक्त निदेशक,** (एस0एस0ए0) राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद, उ0प्र0, लखनऊ
लेखक	:	श्रीमती सुषमा यादव, श्रीमती नीलम मिश्रा, श्रीमती मंजुलेश विश्वकर्मा, डॉ0 संध्या सिंह, श्रीमती उषा अग्रवाल, श्रीमती निहारिका कुमार, श्रीमती दीपा मिश्रा, श्रीमती अंशिका यादव, श्री केशव कुमार, श्री रवीन्द्र प्रताप सिंह, श्रीमती अस्मत नीलो अन्सारी, श्रीमती शाबाना परवीन, श्रीमती अनिल कुमारी शुक्ला, सुमिता, श्रीमती अरूणा, श्रीमती दीपिका यादव, श्रीमती सुनीता उपाध्याय, श्रीमती जया शुक्ला, श्री अशोक कुमार।
कम्प्यूटर कम्पोजिंग	:	राजेश कुमार यादव

Downloaded From www.dietmathura.org

वर्तमान भारतीय समाज और प्रारम्भिक शिक्षा

कक्षा शिक्षण : विषयवस्तु

खण्ड–क प्रारम्भिक शिक्षा

- ❖ शिक्षा की संकल्पना, अर्थ (प्राचीन तथा अर्वाचीन) एवं महत्व
- ❖ शिक्षा के उद्‌देश्य एवं वर्तमान भारत में शिक्षा के उद्‌देश्यों को प्रभावित करने वाले कारक
- ❖ शिक्षा के प्रकार– औपचारिक शिक्षा, अनौपाचारिक शिक्षा, दूरस्थ शिक्षा
- ❖ प्रारम्भिक शिक्षा की पृष्ठिभूमि
  - प्राचीन काल (गुरुकुल एवं बौद्धकालीन शिक्षा)
  - मध्यकालीन शिक्षा (मुगलकालीन शिक्षा)
  - आधुनिक शिक्षा (स्वतन्त्रता के पूर्व एवं पश्चात)
- ❖ प्रमुख शैक्षिक विचाराधाराएँ एवं विचारक
  - आदर्शवाद
  - प्रकृतिवाद
  - प्रयोजनवाद
- ❖ भारतीय विचारक– विवेकानन्द, रवीन्द्रनाथ टैगोर, महात्मका गांधी, डॉ0 राधाकृष्णन, गिजूभाई बधेका
- ❖ पाश्चात विचारक– प्लेटो, रूसो, जॉन डीवी, फ्रोबेल, मॉरिया मॉन्टेसरी

खण्ड–ख शिक्षा और समाज :–

- ❖ शिक्षा और समाज का अन्तः सम्बन्ध
- ❖ शिक्षा के प्रभावी कारक–परिवार, समाज, विद्यालय, राज्य एवं जनसंचार साधन
- ❖ शिक्षा और सामाजिक परिवर्तन–सामाजिक परिवर्तन के कारक
- ❖ विद्यालय और समुदाय के सम्बन्ध–विद्यालय, सामुदायिक केन्द्र के रूप में
- ❖ उभरते समाज के प्रमुख मुद्‌दे–
  - शिक्षा का सार्वभौमीकरण एवं शैक्षिक अवसरों की समानता
  - शिक्षा का व्यावसायीकरण एवं इस पर नियन्त्रण
  - बचपन छीनता बालश्रम– निःशुल्क व अनिवार्य बाल शिक्षा में बाधक

Downloaded From www.dietmathura.org

- जनंसख्या शिक्षा– अर्थ, आवश्यकता, महत्व एवं समयानुरूप मानव संसाधन का विकास
- जातिवाद, अलगाववाद, साम्प्रदायिकता एवं इसके दुष्परिणाम, सामाजिक/पारस्परिक सौहार्द्र व समरसता वर्तमान आवश्यकता
- पर्यावरण प्रदूषण एवं पर्यावरण संरक्षण के प्रति जागरूकता
- जलसंचयन– ऊर्जा एवं भूमि संरक्षण
- भूमण्डलीय ताप वृद्धि (ग्लोबल वार्मिंग) एवं जलवायु परिवर्तन
- भूमण्डलीयकरण
- लैंगिक असमानता तथा उसका प्रभाव, शिक्षा द्वारा लैंगिक समानता के प्रति समझ व संवेदनशीलता का विकास
- जनसंचार माध्यमों की बढ़ती भूमिका और समाज पर इनका बहुआयमी प्रभाव

❖ शिक्षा एवं मानवीय मूल्य

- मानवीय मूल्यों की शिक्षा– अर्थ एवं उद्‌देश्य
- मूल्यों के विकास में परिवार, समाज और विद्यालय की भूमिका
- राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय सद्‌भवना की शिक्षा
- लोकतांत्रिक, वैज्ञानिक एवं तकनीकी दृष्टिकोण का विकास

Downloaded From **www.dietmathura.org**

शिक्षा की संकल्पना

सोहन एक अति धनाढ्य व सम्पन्न परिवार का सीधा साधा अनपढ़ लड़का है। उसके साथी पढ़े लिखे हैं। जो बात–बात में उसे अशिक्षित होने का एहसास दिलाते रहते हैं। चूँकि सोहन का परिवार अशिक्षित है वह अपने कारोबार जमीन जायदाद की लिखा पढ़ी का काम अपने ही खास रिश्तेदार के द्वारा कराते हैं। धीरे–धीरे करके वह रिश्तेदार उसके परिवार को बेवकूफ बनाकर अब कुछ अपने नाम करवा लेता है। सोहन का परिवार बर्बाद हो जाता है। तब उसके दोस्त उससे कहते हैं कि यदि तुम आज पढ़े लिखे होते, तो अपने पिता जी का सारा काम स्वयं करते और इस तरह कोई तुम्हें बर्बाद न करता। सोहन की शिक्षा के प्रति सोच बदलती है और वह पढ़ने के लिए निश्चय करता है। कहा भी गया है–

प्रमुख शिक्षण बिन्दु

- शिक्षा की संकल्पना, अर्थ एवं महत्त्व
- शिक्षा के उद्देश्य एवं वर्तमान भारत में शिक्षा के उद्देश्यों को प्रभावित करने वाले कारक।
- शिक्षा के प्रकार–औपचारिक, अनौपचारिक, दूरस्थ शिक्षा

माता शत्रुः पिता बैरी, येन बालौ न पाठितः।

न शोभते सभा मध्ये, हंस मध्ये बको यथा।।

शिक्षा मनुष्य के विकास की पूर्णता की अभिव्यक्ति है। शिक्षा स्वयं को पहचानने की, अपनी शक्तियों को पहचानने की क्षमता का विकास करती है। व्यक्ति के आन्तरिक गुणों को प्रखर करके उसकी अन्तर्निहित शक्तियों को विकसित करती है। दूसरे शब्दों में ''शिक्षा बालक के नैतिक, शारीरिक, संवेगात्मक, बौद्धिक एवं आन्तरिक ज्ञान को बाहर लाने में योग देने वाली एक क्रिया है। शिक्षा व्यक्ति के जीवन में ऐसा परिवर्तन लाती है, जिससे वह निरन्तर उत्कृष्टता की ओर अग्रसर हो सकता है।

भारतीय वाङ्ग्मय में 'शिक्षा' को जीवन में शाश्वत् मूल्य के रूप में आदरणीय स्थान दिया गया है। 'शिक्षा' को विद्या या ज्ञान के रूप में संज्ञापित किया गया है। वस्तुतः मानव जीवन में आने वाले झंझावातों, उलझनों, शंकाओं का मूल कारण अशिक्षा या अज्ञान ही होता है। अशिक्षा या अज्ञान व्यक्ति का सबसे बड़ा शत्रु है। प्लेटो का कथन है कि ''अज्ञान समस्त विपत्तियों का मूल कारण है। अज्ञानी रहने की अपेक्षा जन्म न लेना ही अच्छा है।''

महर्षि वेदव्यास का कथन है कि– '' ज्ञान (शिक्षा) जीवन के सत्य का दिग्दर्शन ही नहीं कराता, प्रत्युत वह व्यक्ति को बोलना, चलना, व्यवहार करना भी सिखाता है।''

महर्षि वेदव्यास प्राचीन 'श्रीमद्भगवद्गीता' में ज्ञान या शिक्षा को संसार का सबसे महत्वपूर्ण एवं पवित्र तत्व बताया गया है–

'न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते'' अर्थात् इस संसार में ज्ञान के समान और कुछ पवित्र है ही नही।

Downloaded From www.dietmathura.org

भारतीय साहित्य में तो शिक्षा को एक ऐसा अमूल्य धन माना गया है जिसकी प्राप्ति के बाद मनुष्य को किसी चीज की कमी ही नहीं रह जाती– किं किं न साधयति कल्पलतेव विद्या'' अर्थात्, विद्या या शिक्षा कल्पलता के समान है जो सभी चीजों की पूर्ति करने वाली होती है।

मानव जीवन में शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान है। जीवन में प्रारम्भिक वर्षों में मानव शिशु पराश्रित होता है किन्तु शिक्षा ही वह प्रक्रिया है। जिसकी सहायता से पर निर्भर शिशु क्रमशः अपना विकास करता है और समाज में उपयुक्त स्थान प्राप्त करता है। वह शिक्षा द्वारा ही अपना सर्वांगीण विकास करके अपने को अन्य चेतन प्राणियों से अलग रखता है। आदिम मनुष्य के असभ्य एवं बर्बर जीवन की तुलना में आज के मनुष्य का सभ्य एवं सुसंस्कृत जीवन वास्तव में शिक्षा की ही देन है। मानव की उन्नति, सभ्यता एवं ज्ञान–विज्ञान की प्रगति का एकमात्र साधन शिक्षा ही है।

शिक्षा का अर्थ

शिक्षा एक व्यापक शब्द है जिसका प्रयोग विभिन्न अर्थों में किया जाता है–

प्राचीन भारत में शिक्षा का अर्थ (प्राचीन दृष्टिकोण से)

प्राचीन समय में शिक्षा को 'विद्या' कहा जाता था विद्या शब्द की उत्पत्ति ''विद्'' धातु 'अ' प्रत्यय लगाने से बना है जिसका अर्थ है– जानना। इस प्रकार विद्या का अर्थ 'ज्ञान' से लगाया गया। ज्ञान को मानव जीवन के विकास के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण दिया गया। शिक्षा द्वारा व्यक्ति ज्ञानार्जन करता है। भारतीय संस्कृति में ज्ञान को मनुष्य का तीसरा नेत्र बताया गया है– ''तृतीयं मनुषस्य नेत्रं''। वैदिक काल में शिक्षा का विद्या से प्राप्त ज्ञान को ऐसा प्रकाश कहा गया है जो मानव जीवन के विभिन्न क्षेत्रों को प्रकाशित करता है। जिससे व्यक्ति जीवन–मार्ग की कठिनाइयों का सामना सफलतापूर्वक कर सकता है।

शिक्षा का शाब्दिक अर्थ– (प्राचीन व अर्वाचीन दृष्टिकोण से

'शिक्षा' शब्द संस्कृत भाषा के शिक्ष् धातु में 'आ' प्रत्यय लगाने से बना है। जिसका तात्पर्य है– 'सीखना और सिखाना'। इस दृष्टि से शिक्षा एक प्रक्रिया है, इसमें सीखने और सिखाने की प्रक्रिया चलती रहती है। यह प्रक्रिया मानव जीवन के किसी विशेष स्तर तक ही सीमित नहीं रहती वरन् बालक में जन्म के साथ ही शिक्षा प्रक्रिया आरम्भ होकर आजीवन चलती रहती है।

शिक्षा को आंग्ल भाषा में एजूकेशन (Education) कहते हैं। शिक्षाशास्त्रियों के अनुसार– 'एजूकेशन' शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के निम्नलिखित शब्दों से हुई है–

शब्द (Words)	अर्थ (Meaning)
1. एडूकेटम (Educatum)	To Train, act of teaching or training. (शिक्षित करना)
2. एड्सीयर (Educere)	To Lead out (विकसित करना अथवा निकालना)
3. एडूकेयर (Educare)	To educate, to bring up, to raise(आगे, बढ़ाना, बाहर निकालना अथवा विकसित करना

Downloaded From www.dietmathura.org

लैटिन भाषा के 'एड्केटम' (Educatum) शब्द का अर्थ है शिक्षित करना 'ए' (E) का अर्थ है अन्दर से तथा 'डूको' (Duco) का अर्थ है। आगे बढ़ाना अथवा विकास अर्थात् अन्दर से विकास। 'एड्केटम' (Educatum) के अतिरिक्त उक्त दोनों शब्दों एड्सीयर (Educere) तथा एडूकेयर (Educare) का अर्थ भी यही है। 'एड्सीयर' (Educere) का अर्थ है– निकालना तथा 'एडूकेयर' (Educare) का अर्थ है– आगे बढ़ना, बाहर निकालना अथवा विकसित करना। इस प्रकार शिक्षा शब्द का अर्थ जन्मजाति शक्तियों का सर्वागीण विकास है।

चर्चा बिन्दु– ***आपकी दृष्टि में अन्दर से विकास का अर्थ क्या हो सकता है ?***

शिक्षा का संकुचित अर्थ

संकुचित रूप में स्कूली शिक्षा को ही शिक्षा कहते है। इस रूप में वयस्क वर्ग एक पूर्व निश्चित योजना के अनुसार बालक के सामने एक विशेष प्रकार के नियन्त्रित वातावरण को प्रस्तुत करके एक निश्चित ज्ञान को निश्चित विधि के द्वारा निश्चित काल में समाप्त करने का प्रयास करता है जिससे उसका मानसिक विकास हो जाये। शिक्षा के इस अर्थ में शिक्षक का स्थान मुख्य होता है तथा बालक का गौण ऐसे ज्ञान को प्राप्त करके बालक तोता तो अवश्यक बन जाता है परन्तु उसका सर्वांगीण विकास नहीं हो पाता। परिणाम स्वरूप वह अपने भावी जीवन में चारों ओर भटकता ही फिरता है।

शिक्षा का व्यापक अर्थ

व्यापक दृष्टि से शिक्षा का अर्थ बालक के उन सभी अनुभवों से है जिनका प्रभाव उसके ऊपर जन्म से लेकर मृत्यु तक पड़ता है अर्थात् शिक्षा वह अनियत्रित वातावरण है जिसमें रहते हुए बालक अपनी प्रकृति के अनुसार स्वतन्त्रतापूर्वक नाना प्रकार के अनुभव प्राप्त करता है तथा विकसित होता है। दूसरे शब्दों में, शिक्षा जीवन– पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है। ऐसी शिक्षा किसी विशेष व्यक्ति, समय स्थान अथवा देश तक ही सीमित नहीं रहती अपितु जिन व्यक्तियों के सम्पर्क में आकर बालक जो कुछ भी सीखता है, वे सब उसके शिक्षक हैं, जिन्हें वह सिखाता है वे सब उसके शिष्य हैं, तथा जिस स्थान पर सीखने अथवा सिखाने का कार्य चलता है, वह स्कूल है इस शिक्षा प्रक्रिया में नियन्त्रित वातावरण का अंकुश नहीं होता है।

शिक्षा शास्त्री टी0 रेमण्ट के अनुसार– *''शिक्षा विकास का वह क्रम है जो बाल्यावस्था से परिपक्वावस्था तक चलता है तथा जिसमें मनुष्य अपने आपको आवश्यकतानुसार धीरे–धीरे भौतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक वातावरण के अनुकूल बना लेता है।''*

शिक्षा का विश्लेषणात्मक अर्थ

शिक्षा शब्द इतना बहुअर्थी है कि इसकी व्याख्या विविध प्रकार से भी जानी जाती है। शिक्षा के विश्लेषणात्मक अर्थ को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

Downloaded From www.dietmathura.org

शिक्षा छात्रों की जन्मजाति शक्तियों के विकास के रूप में

शिक्षा का अर्थ बालक की जन्मजति शक्तियों का सर्वांगीण विकास करना है, ज्ञान को बलपूर्वक ठूँसना नहीं। एडिसन का मत है– ''शिक्षा के द्वारा मानव के अन्तर में निहित उन सभी शक्तियों तथा गुणों का दिग्दर्शन होता है, जिनकी शिक्षा की सहायता के बिना अन्दर से बाहर निकलना नितान्त असम्भव है।''

शिक्षा नवीन सूचनाओं के रूप में

कुछ व्यक्तियों के मतानुसार नवीन सूचनाओं का संग्रह तथा निष्पादन ही शिक्षा है। वे सूचनाओं को ही ज्ञान कहते है यद्यपि शिक्षा प्रक्रिया में सूचनाएँ सहायक होती है, किन्तु ये शिक्षा का स्थान ग्रहण नहीं कर सकती हैं।

शिक्षा–एक गतिशील प्रक्रिया के रूप में

शिक्षा एक गतिशील प्रक्रिया है जो व्यक्ति एवं समाज दोनों को ही विकास के यथ पर अग्रसर करती है। गतिशीलता से यह भी तात्पर्य है कि सामाजिक परिवर्तनों के साथ–साथ प्रक्रिया में परिवर्तन होते रहते है। यह सब प्रक्रिया नहीं है।

शिक्षा– विद्यालय की परिधि के सीमित ज्ञान के रूप में

कुछ विद्वान शिक्षा को विद्यालय की परिधि तक ही सीमित मानते है। किन्तु शिक्षा के सम्बन्ध में इस प्रकार की धारणा दोषपूर्ण है। शिक्षा तो जीवन पर्यान्त चलने वाली प्रक्रिया है, जिस पर आयु या स्थान का कोई प्रतिबन्ध नहीं होता है।

शिक्षा का वास्तविक अर्थ (अर्वाचीन व वैज्ञानिक दृष्टिकोण से)

शिक्षा के वास्तविक अर्थ से तात्पर्य है– वह शिक्षा जिसमें संकुचित तथा व्यापक दोनों रूप निहित हों। वास्तविक अर्थ को समझने के लिए शिक्षा के विभिन्न अर्थों में समन्वय करना आवश्यक है, क्योंकि शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति का सर्वांगीण विकास होता है। जो कि उसके जीवन को वैज्ञानिक और सामाजिक रूप से सफल बनाने में सहायक होती है।

शिक्षाशास्त्री रेमण्ट के अनुसार– '' शिक्षा मानव जीवन के विकास की वह प्रक्रिया है जो शैशव से प्रौढ़ावस्था तक चलती रहती है अर्थात् शिक्षा विकास का वह क्रम है जिससे मानव अपने आप को आवश्यकतानुसार भौतिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक वातावरण के अनुसार बना लेता है''।

चर्चा बिन्दु–आपकी दृष्टि से यदि वास्तविक अर्थ को समझने के लिए शिक्षा के विभिन्न अर्थों को समन्वित किया जाए तो क्या उचित होगा? यदि हाँ तो क्या ?

Downloaded From www.dietmathura.org

वास्तविक शिक्षा बालक स्वयं अपने अनुभवों तथा प्रयत्नों से प्राप्त करता है। इस प्रकार वह अपनी शक्ति, रुचि एवं योग्यता के अनुसार अपना विकास करता है। यह शिक्षा केवल विद्यालय तक ही सीमित नहीं रहती वरन् जीवन– भर बराबर चलती रहती है। यह प्रक्रिया वैज्ञानिक तथा मनोवैज्ञानिक पद्धति पर आधारित होती है। इसमें एक ओर नवीनतम वैज्ञानिक, आविष्कारों को आधार मानकर व्यक्ति के व्यक्तित्व को विकसित करने का प्रयास किया जाता है, दूसरी ओर मनोविज्ञान के सिद्धान्त को ध्यान में रखकर बालक की मूल–प्रवृत्तियों, रुचियों, प्राकृतिक शक्तियों आदि को महत्व प्रदान किया जाता है। इसमें समाज के आदर्शों, मूल्यों तथा मान्यताओं को भी ध्यान में रखा जाता है।

बोधात्मक प्रश्न

- ''अज्ञान समस्त विपत्तियों का मूल कारण है'' इस कथन को स्पष्ट कीजिए।
- शिक्षा एक गतिशील प्रक्रिया है'' इस वाक्य पर अपने विचार लिखिए।
- मनोवैज्ञानिक दृष्टि से शिक्षा के अर्थ को स्पष्ट कीजिए।

ध्यातव्य बिन्दु

- शिक्षा विकास की प्रक्रिया है।
- शिक्षा सचेतन प्रक्रिया है।
- शिक्षा आजीवन चलने वाली प्रक्रिया है।
- शिक्षा एक गतिशील क्रिया है।
- शिक्षा एक द्विमुखी प्रक्रिया है।
- शिक्षा एक त्रिमुखी प्रक्रिया है।
- शिक्षा अनुभवों के पुनर्गठन एवं पुनर्रचना की सतत प्रक्रिया है।

शिक्षा का महत्त्व

मानव को जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त तक शिक्षा की आवश्यकता रहती है। मानव का अस्तित्व शिक्षा के बिना वैसा ही है जैसा बिना पतवार के नाव का। शिक्षा का महत्त्व अनेक दृष्टिकोण से है। शिक्षा व्यक्ति के प्रत्येक पहलू को विकसित करके इसका चारित्रिक निर्माण करती है अर्थात् मानवता का पाठ पढ़ाती है। इसका कार्यक्षेत्र इतना व्यापक है कि इसके अन्तर्गत वे सभी कार्य आ जाते है जिनको पूरा करने से व्यक्ति अपने जीवन का सुखी तथा सफल बनाते हुए सामाजिक कार्यों को उचित समय पर पूरा करने के योग्य बन जाता है। शिक्षा मानवीय जीवन में व्यक्ति को जहाँ एक ओर वातावरण से अनुकूलन करने तथा उसमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन करते हुए भौतिक सम्पन्नता को प्राप्त करके चरित्रवान, बुद्धिमान, वीर तथा साहसी उत्तम नागरिक के रूप में आत्मनिर्भर बनाकर उसका सर्वांगीण विकास करती है। वहाँ दूसरी ओर शिक्षा राष्ट्रीय जीवन में व्यक्ति के अन्दर राष्ट्रीय एकता, भावात्मक एकता, सामाजिक कुशलता तथा राष्ट्रीय अनुशासन आदि भावनाओं को विकसित करके उसे इस योग्य बना देती है कि वह सामाजिक कर्त्तव्यों को पूरा करते हुए राष्ट्रीय हित को प्राथमिकता देने के लिए ओत–प्रोत हो जाता है। शिक्षा सामान्य तथा राष्ट्रीय जीवन में इतने कार्य करती है जिससे व्यक्ति तथा समाज निरन्तर उन्नति के शिखर पर चढ़ते रहते हैं। महत्त्व की दृष्टि से शिक्षा के कार्य निम्नलिखित बिन्दुओ में विभक्त है–

Downloaded From www.dietmathura.org

शिक्षा के कार्य

• *व्यक्ति सम्बन्धी*	• *समाज सम्बन्धी*	• *राष्ट्र सम्बन्धी*	• *वातावरण सम्बन्धी*
• *आन्तरिक शक्यिो का विकास करना*	• *सामाजिक नियमों का ज्ञान*	• *भावात्मक एकता*	• *वातावरण से समायोजन*
• *सम्पूर्ण व्यक्तित्व का पूर्ण विकास*	• *प्राचीन साहित्य का ज्ञान*	• *कुशल नागरिक*	• *वातावरण का अनुकूलन*
• भावीजीवन की तैयारी करना	• कुरीतियों के आवारण में सहायक	• राष्ट्रीय विकास	
• नैतिक उत्थान करना	• सामाजिक भावना का विकास	• राष्ट्रीय एकता	
• मानवीय गुणों का विकास करना	• सामाजिक उन्नति में सहायक	• सार्वजनिक हित सम्बन्धी कार्य	
• आत्मनिर्भर बनाना	• धर्मों के विषय में	• राष्ट्रीय आय सम्बन्धी कार्य	
• आवश्यकता की पूर्ति में सक्षम बनाना	• उदार दृष्टिकोण	• राष्ट्रीय अनुशासन	
• जन्मजात प्रकृतियों में सुधार	•	• अधिकार तथा कर्त्तव्यों का ज्ञान	

शिक्षा के उद्देश्य

मानव जीवन के प्रत्येक पक्ष तथा दैनिक जीवन की प्रत्येक क्रिया को सफल बनाने के लिए उद्देश्य का विशेष महत्त्व होता है। बिना उद्देश्य के हम जीवन के किसी भी क्षेत्र में सफल नहीं हो सकते। यदि लक्ष्य निश्चित तथा स्पष्ट होता है तो व्यक्ति की क्रिया उस समय तक उत्साहपूर्वक चलती रहती है, जब तक वह उस लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर लेता। जैसे–जैसे लक्ष्य निकट आता जाता है। वैसे–वैसे उसकी क्रियाओं में भी अन्तर आता जाता है। अन्त में एक समय ऐसा आता है जब व्यक्ति अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है। इस लक्ष्य के प्राप्त करने के ही उद्देश्य कहते हैं।

उद्देश्य एक पूर्वदर्शित लक्ष्य है जो किसी क्रिया को संचालित करता है अथवा व्यवहार को प्रेरित करता है।

अर्थात् उद्देश्य वह पूर्वदर्शित लक्ष्य है जिसको प्राप्त करने के लिए व्यक्ति प्रसन्नतापूर्वक उत्साह के साथ चिन्तनशील रहते हुए क्रियाशील होता है। शिक्षा के क्षेत्र में भी यही बात है। उसका एकमात्र कारण यह है कि प्राकृतिक बालक तथा प्रगतिशील एवं विकसित समाज की आवश्यकताओं तथा आदर्शों के बीच एक गहरी खाई होती हैं। इस खाई को पाटने के लिए केवल शिक्षा ही एक ऐसा साधन है जो किसी उद्देश्य के अनुसार समाज की बदलती हुई आवश्यकताओं तथा आदर्शों को दृष्टि

Downloaded From **www.dietmathura.org**

में रखते हुए बालक की मूल प्रवृत्तियों का विकास इस प्रकार से कर सकती है कि व्यक्ति तथा समाज दोनो ही विकसित होते रहे।

चर्चा बिन्दु–'बालक और शिक्षक दोनों को ही शिक्षा के उद्देश्य की जानकारी होनी चाहिए।' अपने विचार व्यक्त कीजिए।

जब व्यक्ति को किसी उद्देश्य का स्पष्ट ज्ञान होता है तो उसके मन में दृढ़ता तथा आत्मबल जागृत हो जाता है। इससे वह एकाग्र होकर अपने कार्य को पूरे उत्साह के साथ करने लगता है। यही नहीं, उद्देश्य हमें शिक्षण पद्धतियों के प्रयोग करने, साधनों का चयन करने, उचित पाठ्यक्रम की रचना करने तथा परिस्थितियों के अनुसार शिक्षा की व्यवस्था करने में भी सहायता प्रदान करता हैं। इससे व्यक्ति तथा समाज दोनों विकास की ओर अग्रसर होते रहते हैं। जिस शिक्षा का कोई उद्देश्य नहीं होता, वह व्यर्थ है। ऐसी उद्देश्य विहीन शिक्षा को प्राप्त करके बालकों में उदासीनता उपन्न हो जाती है। परिणामतः उन्हें अपने किए हुए कार्यों में सफलता नहीं मिल पाती जिससे उनका मानसिक, शारीरिक, सामाजिक तथा नैतिक पतन होता रहता है।

उद्देश्य के ज्ञान के बिना शिक्षक उस नाविक के समान होता है जिसे अपने लक्ष्य का ज्ञान नहीं तथा उसके विद्यार्थी उस पतवार विहीन नौका के समान है जो समुद्र की लहरों के थपेड़े खाती हुई तट की ओर बढ़ती जा रही है।

शिक्षा के उद्देश्यों का वर्गीकरण

शिक्षा के उद्देश्यों के विभिन्न स्वरूप होते हैं। लेकिन ये उद्देश्य देश, काल तथा परिस्थिति में अनुसार बदलते रहते हैं। इनका निर्धारण समय विशेष की आवश्यकता और शिक्षा की उपयोगिता के आधार पर होता है। इस प्रक्रिया को संचालित करने के लिए कुछ विशिष्ट उद्देश्य निर्धारित करने पड़ते है। शिक्षा ही व्यक्तिगत एवं सामाजिक विकास की एक सार्थक प्रक्रिया है। अतः शिक्षाविदों ने शैक्षिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए शिक्षा के अलग–अलग उद्देश्यों एवं कार्यों को सुझाया है।

वर्गीकरण
- सामान्य उद्देश्य
- विशिष्ट उद्देश्य
- वैयक्ति उद्देश्य
- सामाजिक उद्देश्य

चर्चा बिन्दु–
1. आपकी दृष्टि में शिक्षा के सामान्य उद्देश्य कौन हो सकते हैं ?
2. आज के परिप्रेक्ष्य में शिक्षा हमारी किन आवश्यकताओं को पूरा करती है?

सामान्य उद्देश्य

शिक्षा हमारे जीवन के लिए आवश्यकता है। उसके द्वारा व्यक्ति का व्यवहार, चरित्र, आचरण, मनोवृत्ति, भावनाओं, विचारों तथा ज्ञान आदि में परिवर्तन होता है। जिससे वह जीवन को सुखमय एवं शान्तिमय व्यतीत कर सकता है। शिक्षा के सामान्य उद्देश्य निम्नलिखित है–

Downloaded From www.dietmathura.org

सामान्य उद्देश्य

- चरित्र निर्माण एवं विकास का उद्देश्य
- शारीरिक विकास का उद्देश्य
- ज्ञान सम्बन्धी उद्देश्य
- जीविकोपार्जन का उद्देश्य
- सांस्कृतिक विकास का उद्देश्य
- आध्यात्मिक विकास का उद्देश्य
- सन्तुलित विकास का उद्देश्य
- पूर्णतामय जीवन का उद्देश्य
- नागरिकता के उद्देश्य
- अनुकूलन अथवा समायोजन का उद्देश्य
- आत्माभिव्यक्ति का उद्देश्य
- आत्मानुभूति का उद्देश्य
- अवकाश *के उपयोग का उद्देश्य*

चरित्र निर्माण एवं विकास का उद्देश्य

सामाजिक जीवन अथवा धार्मिक जीवन में व्यक्ति का चरित्रवान होना आवश्यक है। अंग्रेजी के विद्वान ने कहा है कि ''यदि चरित्र चला गया तो सब कुछ खो दिया।'' (Character is lost every thingas lost) इसी प्रकार संस्कृत की एक सूक्ति है– 'वृतं यत्नेन संरक्षेत्' अर्थात् चरित्र की यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिए। अतः व्यक्ति के चरित्र के निर्माण में शिक्षा सर्वाधिक योगदान देती है। मानव को मानव बनकर रहना सिखाना शिक्षा का परम लक्ष्य है। यदि व्यक्ति का चरित्र ऊँचा है तो वह सामाजिक एवं राष्ट्रीय स्तर को उच्चता के शिखर पर पहुँचा देगा।

ध्यातव्य बिन्दु

- चरित्र व्यक्ति के अन्य विकासों को भी प्रभावित करता है।
- व्यक्ति में मानवीय विचार उत्पन्न होते हैं।
- अच्छा चरित्र मनुष्य के व्यवहार एवं जीवन–दर्शन में दृढ़ता लाता है।
- व्यक्ति के विचारों में शुद्धता आती है।
- चरित्रवान व्यक्ति दूसरों के लिए एक आदर्श प्रस्तुत करता है।
- चरित्र ही मानवता तथा पशुता की सीमा का निर्धारण करता है।
- व्यक्ति का चरित्र ही सभ्यता एवं संस्कृति का रक्षक एवं पोषक होता है, वही अगली पीढ़ी को सभ्यता निर्गमित करता है।

Downloaded From www.dietmathura.org

शारीरिक विकास का उद्देश्य

बालक का शारीरिक विकास शिक्षा स्वयं नहीं करती है बल्कि शिक्षा शरीर के विकास में सहायता अवश्य करती है। अरस्तू का विचार है– ''स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ्य मस्तिष्क होता है।'' (Healthy mind is a healthy body)

***चर्चा बिन्दु*–आपकी दृष्टि में 'बालक का शारीरिक विकास सन्तुलित रूप से किस प्रकार किया जा सकता है?**

यह शिक्षा की आरम्भिक अवस्था से सम्बन्धित है। शारीरिक विकास ही अन्य सभी उद्देश्यों का आधार है। स्वस्थ नागरिक अपने देश, समाज तथा परिवार के सम्मान के रक्षक होते हैं। शारीरिक विकास मनुष्य के मस्तिष्क को बलिष्ठ बनाता है। अस्वस्थता समाज के लिए कलंक होती है, जिससे समाज की निबर्लता की झलक आती है। अतः शिक्षा का उद्देश्य शारीरिक विकास होना चाहिए। क्योंकि स्वास्थ्य मनुष्य की इच्छा, आत्म–विश्वास एवं साहस का आधार होता है।

ज्ञान सम्बन्धी उद्देश्य

विद्वान् सर्वत्र पूज्यते' अर्थात् विद्वान की हर जगह पूजा होती है। विवेकशील पुरुष का सर्वत्र सम्मान होता है। शिक्षा का उद्देश्य बालक को विभिन्न विषयों के बारे में विस्तृत ज्ञान प्रदान करना है।

'ज्ञान ही स्वर्ग तक की उड़ान में पंखों का आधार है''।   –शेक्सपियर

ज्ञान ही एक ऐसा आधार है जिससे मानव समाज, धर्म, राष्ट्र, सभ्यता, संस्कृति तथा विज्ञान आदि में उन्नति सम्भव है। इसके द्वारा व्यक्ति के दृष्टिकोण में व्यापकता आती है। ज्ञान के अभाव में मानव कुएँ के मेढ़क के सामान होता है। ज्ञान तथा अनुभव के आधार पर ही नागरिक देश तथा सरकार की नीतियों को भली–भाँति जान सकता है तथा उससे लाभ प्राप्त कर सकता है। ज्ञान ही हमको भाई–चारे की भावना का पाठ पढ़ाता है।

जीविकोपार्जन का उद्देश्य

अस्तित्व की रक्षा के लिए आवश्यक है कि मनुष्य अपनी जीविका संचालित करने के योग्य बने। यदि वह स्वयं को संसार में समायोजित करना चाहता है अथवा समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त करना चाहता है तो जीविका कमाना आवश्यक होता है, अन्यथा वह समाज पर एक बोझ बन कर रह जाता है। शिक्षा ही एक ऐसा माध्यम है जो बालकों की व्यावसायिक रुचियों को विकसित करके उसे एक सही दिशा का पथ–प्रदर्शन कर सकती हैं शिक्षा ही बालक को आत्मनिर्भर बनाने में सहायता प्रदान करती है। वह व्यावसायिक क्षेत्र में सन्तोषजनक उन्नति करता है और अपने क्रियाकलापों से व्यवसाय, समाज तथा राष्ट्र को उन्नतिशील बनाता है।

Downloaded From www.dietmathura.org

सांस्कृतिक विकास का उद्देश्य

शिक्षा एक ऐसा माध्यम है जिसके आधार पर किसी देश की संस्कृति का विकास सम्भव है, जो शिक्षा के माध्यम से एक पीढी से दूसरी पीढ़ी में हस्तान्तरित की जाती है। संस्कृति मानव– जीवन की आधारशिला और प्रारम्भिक वस्तु है जिसमें ज्ञान, विश्वास, कला, नैतिकता, प्रथा तथा अन्य योग्यताएं और आदतें सम्मिलित है, जिनको मनुष्य समाज के सदस्य के रूप में प्राप्त करता है। शिक्षा के इस उद्देश्य के द्वारा शिक्षा के अन्य उद्देश्यों को बल मिलता है तथा व्यक्ति के विकास के साथ–साथ परिवार, समाज तथा राष्ट्र का विकास होता है तथा संस्कृति को एक नवीन मोड़ मिलता है।

आध्यात्मिक विकास का उद्देश्य

शिक्षा के आदर्शवादी विचारकों का मत है कि शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य बालक की आध्यात्मिक प्रवृत्तियों का विकास करना है उन्होंने बालक की भौतिक उन्नति को उद्देश्य नहीं माना है। आध्यात्मिकता बालक के विचारों में पवित्रता लाती है, तथा उसकी चिन्तन शक्ति का विकास करती है। आध्यात्मिकता व्यक्ति की धार्मिक प्रवृत्ति को जागृत करके व्यक्ति के क्रिया–कलापों पर नियन्त्रण रखती है, जिससे बालक समाज विरोधी कार्य नहीं करता और अपने व्यक्तित्व का विकास धनात्मक पक्ष में ले जाता है। उसमें भाई–चारे, त्याग तथा सहयोग की भावना का विकास होता है।

सन्तुलित विकास का उद्देश्य

व्यक्ति के सन्तुलित विकास के लिए शिक्षा का महत्वपूर्ण उद्देश्य उसके शारीरिक, मानसिक, नैतिक, भावात्मक और कलात्मक आदि पक्षों को विकसित करना है। व्यक्ति की शक्तियों एवं क्षमताओं का संतुलित विकास आवश्यक है।

> *"शरीर, मस्तिष्क और आत्मा इन तीनों का उचित और सामंजस्यपूर्ण मिश्रण, पूर्ण मनुष्य के निर्माण के लिए आवश्यक है और शिक्षा की सच्ची व्यवस्था का आधार है"*–***महात्मा गाँधी***

पूर्णतामय जीवन का उद्देश्य

जब शिक्षा व्यक्तित्व का सम्पूर्ण विकास करती है तो उससे जीवन पूर्ण रूप से सुखमय तथा शान्तिमय हो जाता है। यह वैज्ञानिक विचारधारा से प्रभावित है।

> *"शिक्षा का एक मात्र उद्देश्य हमें वह क्षमता प्रदान करना है जिसके द्वारा हम पूर्ण जीवन व्यतीत कर सकते हैं"।* –***हरबर्ट स्पेन्सर***

इस उद्देश्य के द्वारा बालक में सर्वागीण विकास पर जोर दिया गया है। वह अपने जीवन में आने वाली किसी भी समस्या के लिए तैयार रहता है। मनुष्य अपने जीवन में किसी भी काम को करने से वंचित नहीं रह सकता है। समय आने पर आवश्यकतानुसार कोई भी कार्य कर सकता है।

Downloaded From **www.dietmathura.org**

नागरिकता के उद्देश्य

अच्छे नागरिक का निर्माण शिक्षा के द्वारा ही सम्भव हो सकता है परन्तु केवल नागरिकता में राष्ट्रीय भावना की शिक्षा ही नहीं देनी चाहिए, बल्कि अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना का विकास भी आवश्यक है, जिससे **''वसुधैव कुटुम्बकम्''** की भावना को सार्थकता प्रदान की जा सके और विश्व में शान्ति की स्थापना हो सके।

चर्चा बिन्दु–'वसुधैव कुटुम्बकम्' इस सूक्ति की आज के परिप्रेक्ष्य में क्या आवश्यकता है ?

समायोजन का उद्देश्य

शिक्षा व्यक्ति को समाज, राष्ट्र, काल, देश आदि के साथ अनुकूलन अथवा समायोजन करना सिखाती है। शिक्षा बालक के बौद्धिक विकास के साथ–साथ उसके सदुपयोग पर भी बल देती है, जिससे विषम परिस्थितियों से समायोजन किया जा सके। बालक के विद्यालयी, प्राकृतिक एवं सामाजिक वातावरणों से समायोजन करने में सहायक होती है। इस प्रकार शिक्षा के द्वारा बालक वातावरण के कारण तथा परिणामों को जान सकता है। अतः स्वयं नवीन प्रयोगों के आधार पर वातावरण में वह परिवर्तन कर लेता है।

आत्माभिव्यक्ति का उद्देश्य

शिक्षा के इस उद्देश्य के द्वारा बालक को अपनी योग्यता के प्रदर्शन का अवसर प्राप्त होता है। शिक्षा के माध्यम से हीआदर्श प्रदर्शन सम्भव है। अतः शिक्षा द्वारा बालक का स्वाभाविक विकास होना चाहिए तथा उसकी जिज्ञासा एवं आत्मगौरव को प्रमुख स्थान दिया जाना चाहिए।

आत्मानुभूति का उद्देश्य

शिक्षा के इस उद्देश्य के द्वारा बालक अपने विषय में पूर्ण ज्ञान प्राप्त करता है और अपनी कमियों को कम करके अपनी क्षमताओं एवं रुचियों को बढ़ावा देता है। इससे आध्यात्मिकता को बल मिलता है, जिससे उसके विचारों में शुद्धता आती है और बालक में सर्वोत्तम गुणों का विकास होता है।

अवकाश के उपयोग का उद्देश्य

शिक्षा का यह बहुत ही महत्वपूर्ण उद्देश्य है कि खाली समय का सदुपयोग किया जाय। अतः बालकों में खाली समय में रचनात्मक कार्यों के लिए प्रशिक्षण देना चाहिए और उनकी रुचियों को संगीत, कला, चित्रकला तथा नृत्य आदि की ओर मोड़ देना चाहिए।

इस प्रकार शिक्षा एक महत्वपूर्ण तथा उद्देश्य पूर्ण प्रक्रिया है, जिसमें बालक के सर्वांगीण विकास पर ध्यान दिया जाता है। अतः शिक्षा व्यक्ति को व्यावहारिक बनाती है जिससे उसका पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन सम्पन्न हो सके और वह देश के स्तर को ऊँचा उठा सके।

Downloaded From **www.dietmathura.org**

विशिष्ट उद्देश्य

विशिष्ट उद्देश्यों को 'असामान्य उद्देश्यों' की संज्ञा दी जाती है। इनका क्षेत्र तथा प्रकृति सीमित होती है। यही नहीं, इनका निर्माण भी किसी विशेष परिस्थिति तथा विशेष कारण को ही ध्यान में रखते हुए किया जाता है। इस दृष्टि से ये उद्देश्य लचीले, अनुकूलन योग्य तथा परिवर्तनशील होते हैं।

सार्वभौमिक उद्देश्य

सार्वभौमिक उद्देश्य मानव जाति पर सामान्य रूप से लागू होते हैं। इन उद्देश्यों का तात्पर्य व्यक्ति में वांछनीय गुणों का विकास करना है। मानव के व्यक्तित्व का संगठन उचित शारीरिक तथा मानसिक विकास, समाज की प्रगति, प्रेम तथा अहिंसा आदि शिक्षा के कुछ ऐसे सार्वभौमिक उद्देश्य हैं, जो शिक्षा को सार्वभौमिक रूप प्रदान करते हैं।

वैयक्तिक उद्देश्य

शिक्षा का वैयक्तिक उद्देश्य एक प्राचीन उद्देश्य है। इस उद्देश्य के समर्थक समाज की अपेक्षा व्यक्ति को बड़ा मानते है। उनका विश्वास है कि व्यक्तियों के बिना समाज कोरी कल्पना है। व्यक्तियों ने ही मिलकर अपने हितों की रक्षा करने के लिए समाज की रचना की है तथा समय–समय पर संस्कृति, सभ्यता एवं विज्ञान के क्षेत्रों में भी अपना–अपना योगदान दिया है। प्राचीनकाल में ग्रीस भारत तथा अन्य पाश्चात्य देशों में भी शिक्षा के वैयक्तिक उद्देश्य को प्रमुख स्थान दिया जाता था। मध्यकाल में सामूहिक शिक्षा पद्धति को अपनाने के कारण व्यक्तित्व के विकास की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया। परन्तु वर्तमान युग में शिक्षा का दृष्टिकोण मनोवैज्ञानिक होने के कारण रुसो, पेस्टॉलाजी, फ्रोबेल तथा नन आदि शिक्षा शास्त्रियों ने शिक्षा के वैयक्तिक उद्देश्य पर फिर से बल देना आरम्भ कर दिया। शिक्षा के वैयक्तिक उद्देश्य को इसके संकुचित तथा व्यापक अर्थों के द्वारा भलीभांति समझा जा सकता है–

वैयक्तिक उद्देश्य

संकुचित अर्थ → आत्माभिव्यक्ति
अथवा
बालक की शक्तियों का सर्वांगीण विकास
अथवा
प्राकृतिक विकास

व्यापक अर्थ → आत्मानुभूति

चर्चा बिन्दु–क्या वैयक्तिक उद्देश्य के द्वारा बालक की शक्तियों का सर्वांगीण विकास किया जा सकता है?

Downloaded From www.dietmathura.org

शिक्षा के सामाजिक उद्देश्य

शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य व्यक्ति का सर्वांगीण विकास करना है। व्यक्ति का समाज से घनिष्ठ सम्बन्ध है। अतः व्यक्ति के साथ–साथ अप्रत्यक्ष रूप से समाज का भी विकास होता है। समाज ही एक ऐसा समुदाय है जो व्यक्ति के लिए आवश्यक है अतः समाज का विकास व्यक्ति के विकास का आधार है। मनुष्य समाज में जन्म लेता है। आरम्भ में ही वह अपने माता–पिता, भाई–बहन, पड़ोस, देश तथा वातावरण से कुछ न कुछ सीखता है। समाज के अभाव में व्यक्ति का जीवन पाशाविक ही रह जाता है।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। अतः समाज के अभाव में मनुष्य का कोई भी अस्तित्व नहीं रह जाता। समाज व्यक्ति के नैतिक तथा चारित्रिक मूल्यों की स्थापना करता है। समाज उसे शान्ति एवं सुरक्षा का वातावरण देता है। इस प्रकार सुखी एवं समृद्ध समाज देश को उत्थान की ओर ले जाता है। प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री रेमण्ट का कथन है– ''जो विद्वान व्यक्ति को समाज के ऊपर स्थान देते है, उनको स्मरण रखना चाहिए कि निःसमाज व्यक्ति कोरी कल्पना है। अतः शिक्षा का उद्देश्य व्यक्तिगत चरित्र गठन के साथ–साथ बालक को सच्चा सामाजिक प्राणी तथा नागरिक बनाना है।

साधारणतया समाज के दो रूप माने जाते हैं– 1. राष्ट्र–समाजवाद, 2. जनतनत्रात्मक समाजवाद। शिक्षा के सामाजिक उद्देश्य के संकुचित ओर व्यायक अर्थ को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

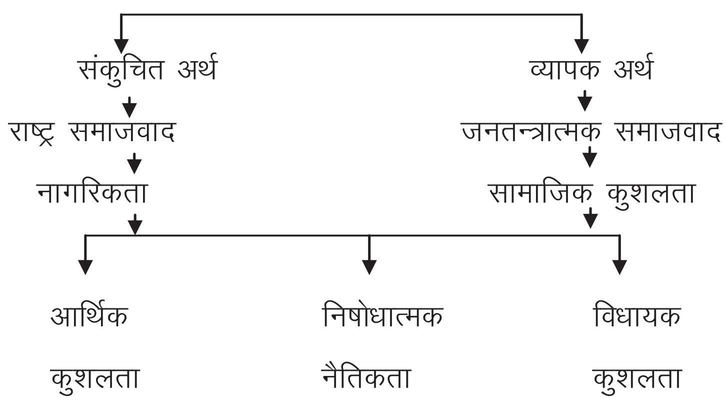

चर्चा बिन्दु–सामाजिक उद्देश्य के संकुचित अर्थ से क्या आशय है ?

समाजवाद के उग्र रूप में सामाजिक उद्देश्य के संकुचित अर्थ पर बल दिया जाता है। इस रूप में राज्य एक आदर्श रूपी भौतिक सत्ता है, जो व्यक्ति से कही ऊँचा तथा हर प्रकार से उत्कृष्ट है एवं उसकी सब आकांक्षाओं और इच्छाओं से ऊपर है। इस दृष्टि से व्यक्ति का सम्पूर्ण जीवन राष्ट्र की भलाई के लिए है, न कि राष्ट्र व्यक्ति के लिए है। अतः राष्ट्र का यह अधिकार है कि वह अपनी इच्छाओं, आवश्यकताओं तथा आदर्शों की पूति के लिए व्यक्ति को जैसा चाहे बनाये तथा शिक्षा के द्वारा बालकों को जिस साँचे में ढालना चाहे, ढाले। संकुचित अर्थ में राष्ट्र स्वयं ही शिक्षा की एक सुनिश्चित प्रणाली बनाकर लागू करता है। इसके अनुसार मानव की स्वतन्त्रता का दमन करके मानवीय जीवन के प्रत्येक अंग का पूर्णरूपेण समाजीकरण कर दिया जाता है। अतः शिक्षा के द्वारा प्रत्येक व्यक्ति में अपने राष्ट्र के प्रति अपार भक्ति की भावना का विकास किया जाना परमावश्यक है।

Downloaded From **www.dietmathura.org**

व्यापक अर्थ

समाजवाद के उदार रूप में सामाजिक उद्देश्य के व्यापक अर्थ पर बल दिया जाता है। जनतन्त्रात्मक समाजवाद में समाज के महत्व को तो स्वीकार किया जाता है, परन्तु व्यक्ति समाज के सम्मुख नगण्य नहीं माना जाता। सामाजिक उद्देश्य के व्यापक अर्थ के अनुसार शिक्षा की व्यवस्था इस प्रकार से की गई है कि प्रत्येक व्यक्ति समाज–सेवा की भावना से ओत–प्रोत होकर सच्चा देश–भक्त नागरिक बन जाये। सच्ची नागरिकता के लिए अनेक बौद्धिक, सामाजिक तथा नैतिक गुणों की आवश्यकता होती है। इन सभी गुणों को बालकों की रुचियों, योग्यताओं तथा क्षमताओं के अनुसार विकसित करना परम आवश्यक है। बालक की शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जिससे वह अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व को विकसित करते हुए अपनी योग्यताओं तथा क्षमताओं के अनुसार स्वतन्त्र नागरिक के रूप में राष्ट्र की सेवाकर सके।

शिक्षा के सामाजिक उद्देश्य के व्यापक अर्थ से तात्पर्य एक आदर्श जनतन्त्र से है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को एक सुखी, सम्पन्न तथा समृद्धशाली जीवन व्यतीत करने के समान अवसर प्राप्त होते है, चिन्तन तथा मनन करने की पूर्ण स्वतन्त्रता होती है। प्रत्येक व्यक्ति से यह आशा की जाती है, कि वह ऐसे कार्य करे जिनसे सबका भला हो। प्रत्येक व्यक्ति एक–दूसरे के विकास में बाधक सिद्ध न होकर मेल–जोल के साथ रहते हुए कन्धे से कन्धा मिलाकर चलता है। जिससे समाज दिन–प्रतिदिन उन्नति के शिखर पर चढ़ता रहे। प्रत्येक व्यक्ति की स्वतन्त्रता, सबके समान अधिकार तथा वैयक्तिक और सामाजिक जीवन के विश्वास आदि आदर्शों, को प्राप्त करने के लिए शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्यों का निर्माण किया जाता है–

- बालकों की रूचियों का विकास करना।
- अच्छी आदतों को विकसित करना।
- सामाजिक दृष्टिकोण को विकसित करना।
- प्रेम, सद्भावना, सहानुभूति, सहयोग, सहनशीलता, आत्म–अनुशासन तथा कर्त्तव्य परायणता आदि जनतान्त्रिक गुणों का विकास करना।
- व्यावसायिक तथा उदार शिक्षा प्रदान करना।

वर्तमान भारत में शिक्षा के उद्देश्यो को प्रभावित करने वाले कारक

भारत प्रजातंत्रात्मक देश है। प्रजातन्त्र में व्यक्ति स्वयं साध्य है और इसलिए शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य उसकी अपनी शक्तियों का पूर्ण विकास करने के लिए अधिक से अधिक अवसर प्रदान करना है। किसी भी देश की शिक्षा के उद्देश्यों का निर्धारण करते समय उसकी वर्तमान परिस्थितियों को ध्यान में रखना आवश्क है। अन्य कार्यों के समान ही शिक्षा भी एक प्रक्रिया है। अतः इसके भी कुछ निश्चित उद्देश्य अवश्यक होने चाहिए। ये उद्देश्य देश, काल एवं परिस्थिति के अनुसार परिवर्तित होते रहते हैं। इनका निर्धारण समय विशेष की आवश्यकता और शिक्षा की उपयोगिता के आधार पर होता है।

Downloaded From www.dietmathura.org

चर्चा बिन्दु

- **आपकी दृष्टि में वर्तमान भारत में शिक्षा के उद्देश्यों को प्रभावित करने वाले कारक कौन–कौन हो सकते है?**

वर्तमान भारत में उद्देश्यों को प्रभावित करने वाले कारक निम्नलिखित हैं–

दर्शन

शिक्षा के उद्देश्यों पर दर्शन का अधिक प्रभाव पड़ता है। प्रकृतिवादियों के अनुसार आत्माभिव्यक्ति, वैयक्तिकता का विकास, सम्बद्ध क्रियाओं का निर्माण, प्रवृत्तियों का शोधन, मार्गान्तरीकरण और समन्वय तथा प्रजातीय प्रगति की प्राप्ति ही शिक्षा के उद्देश्य थे परन्तु आदर्शवाद के अनुसार आत्मानुभूति, चरित्र–निर्माण तथा आध्यात्मिक व्यक्तित्व का विकास आदि शिक्षा के उद्देश्य थे।

जीवन दर्शन

समाज में रहने वाले व्यक्तियों के जीवन जीने के ढंग का भी शिक्षा के उद्देश्यों पर प्रभाव पड़ता है। गाँधीजी के जीवन दर्शन का शिक्षा के उद्देश्यों पर प्रभाव स्पष्ट है।

राजनैतिक विचारधारा

शासन करने वाली सरकार ही शिक्षा की व्यवस्था का कार्यभार सम्भालती है। अतः वह अपने अनुरूप ही शिक्षा के ढाँचे का गठन करती है। इस प्रकार शिक्षा के उद्देश्यों पर तत्कालीन सरकार का प्रभाव पड़ता है।

सामाजिक विचारधारा

समाज की दशाओं का शिक्षा के उद्देश्यों पर पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। भारतीय शिक्षा का उद्देश्य केवल समाज को शिक्षित करना तथा उसके जीवन यापन के साधना जुटाना मात्र है।

आर्थिक दशाएँ

किसी देश का आर्थिक स्तर वहाँ की शिक्षा के उद्देश्यों को प्रभावित करता है। भारत जैसे देश में आर्थिक साधनों की कमी के कारण शिक्षा के ऊँचे उद्देश्यों को निर्धारित करके भी उचित साधनों के अभाव में प्राप्त नहीं किया जा सका है। फलस्वरूप योजना केवल योजना के रूप में ही रह जायेगी, व्यावहारिक रूप में नहीं अपनायी जा सकती।

तकनीकीय उन्नति

शिक्षा के उद्देश्यों पर उस देश की तकनीकी उन्नति की अमिट छाप पड़ती है। यदि देश विकसित है तो उनकी शिक्षा में और अधिक तकनीकी को बढ़ावा देना तथा नवीन खोजों को प्रोत्साहन

Downloaded From www.dietmathura.org

देना प्रमुख उद्देश्य होंगे। इसके विपरीत जो देश पिछड़े हैं, वहाँ की शिक्षा का उद्देश्य दूसरे देशों की नकल करने के अलावा और कुछ भी नहीं रह गया है।

प्राकृतिक दशाएँ

शिक्षा के उद्देश्यों को देश का प्राकृतिक वातावरण तथा प्राकृतिक सम्पदा आदि भी प्रभावित करते है। वहाँ के वातावरण से समायोजन करने तथा देश के प्राकृतिक तत्वों के विषय में जानकारी देना वहाँ की शिक्षा का कार्य है।

इन कारकों के अतिरिक्त धार्मिक संस्कृति सभ्यता तथा अन्य देशों के लाभदायक अनुभवों का भी शिक्षा के उद्देश्यों पर प्रभाव पड़ता है।

शिक्षा के प्रकार–

- अनौपचारिक
- औपचारिक
- दूरस्थ

अनौपचारिक शिक्षा

अनौपचारिक शिक्षा व्यावहारिक होती है यह शिक्षा बिना किसी नियम अथवा बिना किसी विधि के प्राप्त होती है। बालक जन्मकाल से ही इस शिक्षा को जीवन की विभिन्न परिस्थितियों से प्राप्त करता चलता है। यह शिक्षा अनुभवों से प्राप्त होती है, उदाहरणार्थ– बच्चा जन्म लेने के पश्चात् माता के गोद का अनुभव, लोगों के साथ बातचीत करने के अनुभव और बड़ा होने पर खेल के मैदान का अनुभव तथा लोगों के साथ व्यवहार करने आदि परिस्थितियों से अनेक अनुभव प्राप्त करता रहता है उसे इन्हीं अनुभवों से शिक्षा प्राप्त होती रहती है।

प्रत्येक बालक में कुछ क्षमताएं जन्म से ही होती है जो उसके भौतिक और सामाजिक वातावरण के प्रति अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करती रहती है। ये ही क्षमताएं बालक के व्यक्तित्व के निर्माण में सहायता करती है। वर्तमान समय में बहुत सी संस्थाएँ चलायी जा रही है। जहाँ पर बालकों को क्रिया करने का स्वतन्त्र वातावरण प्राप्त होता है। और संस्थाएं उसके व्यवहार को परिमार्जित करके उसे आगे बढ़ने का अवसर प्रदान करती है। अनौपचारिक शिक्षा के नियम ढीले तथा लचीले रहते हैं। इसमें शिक्षा का पाठ्यक्रम, संगठन तथा व्यवस्था का अभाव रहता है।

परिभाषा

''अनौपचारिक शिक्षा औपचारिकता से मुक्त एक ऐसी शिक्षा व्यवस्था है जो औपचारिक शिक्षा सीमाओं और कमियों की पूर्ति करती है। इस व्यवस्था में वे औपचारिक तत्त्व नहीं है, जो जन शिक्षा की दिशा में उनकी क्षमता को सीमित करते हैं। अतः यह औपचारिकता से मुक्ति की शिक्षा व्यवस्था है। यह एक सुनियोजित लचीली शिक्षा व्यवस्था है, जो समुदाय की आवश्यकतानुसा नगर और ग्राम क्षेत्र की स्थानीय पृष्ठ–भूमि में बालकों को शिक्षित करती है तथा स्थानीय परिवेश में प्रविष्ट समाजोपयोगी कार्यों द्वारा जीवनोपयोगी व्यवस्था हेतु तैयार करती है। यह योजना कम समय में एक लचीले पाठ्यक्रम द्वारा निरक्षर को अपूर्ण रूप से शिक्षित करती है।''

Downloaded From www.dietmathura.org

उद्देश्य

- बालक को स्वतन्त्र रूप से सीखने का अवसर प्रदान करना।
- स्वावलम्बन की भावना विकसित करना।
- समूह में कार्य करने की भावना का विकास करना।
- भावी जीवन की उन्नति तथा समृद्धि हेतु तैयार करना।
- शैक्षिक स्तर के उन्नयन हेतु
- शिक्षा के सार्वजनीकरण का विस्तार करना।
- सभी को साक्षर करना।

ध्यातव्य बिन्दु—अनौपचारिक शिक्षा बिना प्रयास, आडम्बरहीन, अव्यवस्थित, आकस्मिक सर्वत्र, सभी दशा, परिस्थिति, अवस्था में एवं सभी व्यक्तियों द्वारा दी जाती है।

औपचारिक शिक्षा (Formal Education)

औपचारिक, सविधिक या नियमित शिक्षा उसे कहते हैं जो कुछ निश्चित नियम के अनुसार क्रियाशील होती हैं और उसकी एक निश्चित योजना बनी होती है। स्कूल में शिक्षार्थी को यह शिक्षा निश्चित समय पर विशेष विधियों के द्वारा ही जाती है। इसके लिए विशेष शिक्षा संस्थाएँ होती हैं, जैसे प्राथमिक शिक्षा के लिए प्राथमिक स्कूल, माध्यमिक शिक्षा के लिए माध्यमिक स्कूल और उच्च शिक्षा प्रदान करने के लिए उच्च स्तरीय विद्यालय अथवा विश्वविद्यालय होते है। इनमें विभिन्न कक्षाएँ होती है और हर कक्षा का एक निश्चित पाठ्यक्रम होता है। इसी से पाठ्यवस्तु का निर्धारण किया जाता है। विद्यार्थी विद्यालय में आते है, अध्यापक उपयुक्त विधियों से शिक्षा प्रदान करते है। वर्षान्त में बालक की परीक्षा होती है। जो जितना ज्ञान अर्जित करता है, उसी आधार पर उसको सफलता अथवा असफलता प्राप्त होती है। नियमित शिक्षा साधनों में विद्यालय, चर्च, पुस्तकालय, अजायबघर, चित्रभवन तथा पुस्तकें आदि प्रमुख हैं।

चर्चा बिन्दु—औपचारिक साधनों से क्या अभिप्राय है ?

औपचारिक साधनों का अर्थ

शिक्षा के औपचारिक साधनों के अन्तर्गत वे संस्थाएँ आती है जिनके द्वारा किसी पूर्ण निश्चित योजना के अनुसार बालक को नियन्त्रित वातावरण में रखते हुए शिक्षा के संकुचित अथवा निश्चित उद्देश्य को प्राप्त किया जाता है। शिक्षा के औपचारिक साधनों का सम्पूर्ण वातावरण नियन्त्रित होता है। इनके कार्य करने का स्थान तथा समय भी निश्चित होता है। इनकी देखभाल प्रशिक्षित व्यक्ति करते हैं।

औपचारिक साधनों के गुण

औपचारिक साधनों द्वारा संस्कृतिका संरक्षण, सुधार तथा हस्तान्तरण होता है। इस प्रकार इन साधनों का सबसे बड़ा गुण यह है कि इनके द्वारा मानव समाज के उन अनुभवों तथा गुणों को निश्चित समय में प्राप्त किया जा सकता है जो अन्य साधनों के द्वारा असम्भव है।

Downloaded From www.dietmathura.org

औपचारिक साधनों के दोष

जॉन डीवी ने औपचारिक शिक्षा के दोषों पर प्रकाश डालते हुए कहा है– ''औपचारिक शिक्षा बड़ी सरलता से तुच्छ, निर्जीव, अस्पष्ट तथा किताबी बन जाती है। कम विकसित समाजों में जो संचित ज्ञान होता है, उसे कार्य में बदला जा सकता है। पर उन्नत संस्कृति में जो बातें सीखी जाती हैं, वे प्रतीकों के रूप में होती है। और उनको कार्यों में परिणत नहीं किया जा सकता है। इस बात का सदैव डर रहता है कि औपचारिक शिक्षा जीवन के अनुभव से कोई सम्बन्ध न रखकर केवल स्कूलों की विषय–सामग्री न बन जाए।'' इस प्रकार औपचारिक साधनों के दोष भी अनेक हैं। इस प्रकार की शिक्षा पाठ्यक्रम से जकड़ी रहती है जिसके कारण बालक को समय चक्र तथा कठोर अनुशासन के बंधनों में जकड़कर नियन्त्रित वातावरण में रखा जाता हैं ऐसे नियन्त्रित वातावरण में बालक तोता तो अवश्य बन जाता है, परन्तु ज्ञानी नहीं।

चर्चा बिन्दु–आपकी दृष्टि में औपचारिक एवं अनौपचारिक शिक्षा में क्या अन्तर है ?

औपचारिक एवं अनौपचारिक शिक्षा में अन्तर

- औपचारिक शिक्षा का उद्देश्य सामान्य तथा आदर्शात्मक होता है, जबकि अनौपचारिक शिक्षा का उद्देश्य वास्तविक, विशिष्ट तथा समयानुसार होता है।
- औपचारिक शिक्षा सामाजिक जीवन की आकांक्षाओं, मान्यताओं, आदर्शों तथा आवश्यकताओं की प्रतीक है, जबकि अनौपचारिक शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति निहित आवश्यकताओं तथा समस्याओं की जानकारी तथा उनका समाधान है।
- औपचारिक शिक्षा का क्षेत्र व्यापक है। यह नियन्त्रित तथा क्रमिक है, जबकि अनौपचारिक शिक्षा का क्षेत्र सीमित है।
- औपचारिक शिक्षा वर्तमान, अतीत तथा भावी जीवन की तैयारी है जबकि अनोपचारिक शिक्षा वर्तमान पर अधिक बल देती है।
- औपचारिक शिक्षा का पाठ्यक्रम व्यापक, बहुउद्देशीय एवं जीवन से सम्बद्ध है, जबकि अनौपचारिक शिक्षा के पाठ्यक्रम का उद्देश्य सीमित तथा सामाजिक वातावरण हेतु है।

औपचारिक तथा अनौपचारिक शिक्षा के उपरोक्त अन्तर से यह स्पष्ट है कि दोनों ही शिक्षा एक–दूसरे से कुछ भिन्न होते हुए भी अत्यधिक निकट हैं एक के बिना दूसरे की सफलता की सम्भवना नहीं है, अतः दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि औपचारिक शिक्षा एवं अनौपचारिक शिक्षा एक–दूसरे भी पूरक हैं।''

दूरस्थ शिक्षा

आज का युग भौतिक उन्नति, उच्च लोकतन्त्र तथा मानवतावाद का युग है। मानव शिक्षा के माध्यम से नित्य नये आयाम स्थापित कर रहा है, किन्तु समय के साथ–साथ औपचारिक अथवा सैद्धान्तिक शिक्षा वर्तमान की सभी आवश्यकताओं को पूर्ण करने में असफल रही है क्योंकि यह शिक्षा को 'सर्व–सुलभ' तथा 'सर्व उपयोगी' रूप देने में असमर्थ है। अतः शिक्षा की इस सीमा का विस्तार

Downloaded From www.dietmathura.org

करने के लिए अनेक साधन उपयोग में लाये जा रहे हैं, उन्हीं में से दूरस्थ शिक्षा भी एक महत्वपूर्ण साधन सिद्ध हो रहा है।

चर्चा बिन्दु–

- *दूरस्थ शिक्षा से आप क्या समझते हैं ?*
- *किन–किन परिस्थितियों में दूरस्थ शिक्षा उपयोगी हैं?*

दूरस्थ शिक्षा का अर्थ

दूरवर्ती शिक्षा एक बहुआयामी शिक्षा व्यवस्था है। इसे अनेक नामों से जाना जाता है, जैसे– मुक्त अधिगम अथवा शिक्षा(Open learning or Education) पत्राचार, शिक्षा(Correspondence Education) बाहरी अध्ययन(External Study), गृह अध्ययन(Home Study) एवं परिसर से बाहर अध्ययन (Off Compus Study) इत्यादि। भारत में इसे दूरस्थ शिक्षा तथा मुक्त शिक्षा के नाम से ही अधिक जाना जाता है। सैद्धान्तिक रूप से दूरस्थ शिक्षा से तात्पर्य शिक्षा के ऐसे अप्रचलित एवं अपरम्परागत उपागम से है, जो परम्परागत (औपचारिक शिक्षा) शिक्षा के मानकों पर प्रश्नचिह्न लगाता हुआ इससे पृथक मापदण्डों को प्राथमिकता प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त दूरस्थ शिक्षा का एक अन्य महत्त्वपूर्ण तथ्य इसकी अपनी तार्किक भाषा तथा सम्वाद–विधि भी है, जो शिक्षण संस्थाओं से दूर निवास करने वाले विद्यार्थियों को शिक्षा प्रदान करने में उत्पन्न होने वाली समस्याओं के समाधान के परिणाम स्वरूप विकसित हुई है। दूरस्थ शिक्षा में मुद्रित तथा अमुद्रित बहुमाध्यमों का प्रयोग शिक्षक एवं छात्र के मध्य संचार माध्यम के रूप में किया जाता है।

> ''दूरस्थ शिक्षा में विद्यार्थी कक्षा में दूर विभिन्न आधुनिक उन्नत संचार माध्यमों से स्वतन्त्र अथवा स्वतन्त्रतापूर्वक शिक्षा ग्रहण करता है। विद्यार्थी की यह शिक्षा कक्षा–अधिगम की अपेक्षा अधिक व्यावसायिक, स्वतन्त्र तथा रोजगार परक होती है। यहाँ विद्यार्थी अपनी योग्यता तथा आवश्यकता के अनुरूप पाठ्यक्रम चयन के लिए स्वतन्त्र होता है। इसके माध्यम से विद्यार्थी सामाजिक उच्चता, आय वृद्धि तथा बढ़े हुए उत्तरदायित्वों का निर्वाहन भी कर सकता है।''

दूरस्थ शिक्षा अधिगम तथा इसका स्वरूप

सामान्यतः दूरस्थ शिक्षा एवं मुक्त अधिगम, मुक्त शिक्षा अथवा पत्राचार शिक्षा, न तो एक–दूसरे के पर्यायवाची हैं और न ही प्रत्यक्ष रूप से एक अधिगम दूसरे का अधिगम है। वस्तुतः दूरस्थ शिक्षा अनेक प्रारूपों में अन्य से साम्यता रखती है। दूरस्थ शिक्षा के निम्न घटक है–

- मुक्त अधिगम
- मुक्त शिक्षा
- पत्राचार शिक्षा

Downloaded From www.dietmathura.org

मुक्त अधिगम (Open Learning)

मुख्य रूप से मुक्त अधिगम दूरस्थ शिक्षा से साम्यता अवश्य रखता है किन्तु इसका पृथक अस्तित्व है। सामान्य शब्दों में मुक्त अधिगम मानव मस्तिष्क की एक अवस्था है। मुक्त शिक्षा अधिगम पाठ्यक्रम तथा अधिगम आव्यूह के चयन तथा नियन्त्रण में जहाँ तक सम्भव हो सके छात्रों को स्वतन्त्रता प्रदान करता है।

मुक्त शिक्षा (Open Education)

सामान्य रूप में मुक्त शिक्षा मुक्तता के सम्प्रत्यय पर आधारित है। इसका अर्थ हैं कि मुक्त शिक्षा एक ऐसी व्यवस्था है, जो परम्परागत मान्यताओं के माध्यम से संचालित नहीं होती है। यह ज्ञात रहे कि पत्राचार शिक्षा संस्थानों तथा दूरस्थ शिक्षा संस्थानों का मुक्त शिक्षा संस्थान होना आवश्यक नहीं हैं। ये संस्थाएँ मुक्त शिक्षा की संस्थाएँ भी हो सकती है अथवा नहीं भी अथवा कुछ सीमा तक भी हो सकती है। इसी प्रकार से परम्परागत शिक्षण संस्थाएँ भी कुछ सीमा तक मुक्त शिक्षा प्रदान करने वाली हो सकती हैं।

पत्राचार शिक्षा (Correspondence Education)

पत्राचार शिक्षा एक ऐसी शिक्षा व्यवस्था है जिसमें मुद्रित शिक्षा–सामग्री को डाक के माध्यम से विद्यार्थियों को प्रेषित की जाती है तथा अनुसरणीय शिक्षणात्मक सम्प्रेषण को भी डाक के द्वारा प्रभावी बनाने का प्रयास किया जाता है। इस प्रकार के पाठ्यक्रमों में प्रवेश तथा परीक्षा की प्रक्रिया परम्परागत शिक्षा के अनुरूप ही होती है, अर्थात् परम्परागत रूप से सर्वप्रथम विद्यार्थी की प्रवेश परीक्षा ली जाती है। उसके सफल होने के उपरान्त उसे पाठ्यक्रम में प्रवेश दे दिया जाता है। जब विद्यार्थी का प्रवेश हो जाता है तो उसे अध्ययन सामग्री डाक के द्वारा प्रेषित की जाती हैं अध्ययन– अवधि की समाप्ति पर परम्परागत रूप से परीक्षा देनी होती है।''

चर्चा बिन्दु–आपकी दृष्टि से दूरस्थ शिक्षा को किन–किन माध्यमों से प्राप्त किया जा सकता है?

दूरस्थ शिक्षा की आवश्यकताएँ

दूरस्थ शिक्षा के सफल संचालन एवं व्यवस्था हेतु निम्न तत्वों का सहारा लेना पड़ता है–

मुद्रित सामग्री (Printed Material)

यह माध्यम दूरस्थ शिक्षा ही नहीं बल्कि परम्परागत शिक्षा–पद्धति का भी महत्वपूर्ण तत्व है। इसके अन्तर्गत विभिन्न पुस्तकें, अध्ययन सामग्री तथा पत्र–पत्रिकाएँ इत्यादि सम्मिलित होते हैं।

Downloaded From www.dietmathura.org

श्रव्य दृश्य सामग्री (Audio-Video Material)

यह आधुनिक सूचना प्रौद्योगिकी का महत्वपूर्ण तत्व है। परम्परागत शिक्षा की अपेक्षा दूरस्थ शिक्षा में इसका विस्तृत उपयोग होता है। इण्टरनेट इसका सर्वप्रमुख माध्यम है। इसके अतिरिक्त इसमें विभिन्न वृत्तचित्र, स्लाइड्स, ऑडियो वीडियो कैसेट तथा सी0डी0 को सम्मिलित किया जाता है।

अध्ययन समूह (Study Group)

यह छात्रों के मध्य अनौपचारिक सम्वाद, विचार–विमर्श तथा तर्क–वितर्क कराने का मुख्य तत्व है। इसके माध्यम से विद्यार्थी में तार्किक क्षमता की वृद्धि होती है।

रेडियो तथ दूरदर्शन (Radio and Telivision)

यह माध्यम सर्व–सुलभ तथा सर्व व्यापक माध्यम है।

कम्प्यूटर आधारित शिक्षण अधिगम (Computer Aided Teaching Learning)

वर्तमान में शिक्षण– अधिगम में कम्प्यूटर अपनी व्यापक भूमिका का निर्वाहन कर रहा है। कम्प्यूटर पर कोई भी विद्यार्थी विभिन्न 'साफ्टवेयर कार्यक्रम' तथा इन्टरनेट के माध्यम से विश्व की कोई भी सूचना पलक–झपकते ही प्राप्त कर सकता है।

चर्चा बिन्दु–वर्तमान समय में दूरस्थ शिक्षा की आवश्यकता से आप क्या समझते हैं ?

दूरस्थ शिक्षा की आवश्यकता एवं महत्त्व

वर्तमान समय के भौतिकवादी युग ने शिक्षा को प्रत्येक व्यक्ति के लिए एक आवश्यक तत्त्व बना दिया है। यदि व्यक्ति अपने जीवन की प्रारम्भिक अवस्था में निरक्षर ही रहा है तो वह प्रौढ़ अवस्था में अध्ययन कर सकता है तथा यदि किसी व्यक्ति ने अपनी औपचारिक शिक्षा पूर्ण कर ली हो तो वह अपने जीवन में उन्नति के लिए भी दूरस्थ शिक्षा से जुड़ सकता है। इस प्रकार व्यक्ति निरक्षर हो अथवासाक्षर शिक्षा सभी के लिए महत्त्वपूर्ण है किन्तु शिक्षा जब अपने सीमित संसाधनों के कारण सर्वसुलभ नहीं हो पाती तो शिक्षा के वैकल्पिक अथवा अनौपचारिक माध्यमों की सहायता लेनी पड़ती है। दूरस्थ शिक्षा वैकल्पिक साधनों के रूप में प्रयोग की जाती है। आधुनिक युग में दूरस्थ शिक्षा की आवश्यकता को निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से समझा जा सकता है–

- दूरस्थ शिक्षा मुख्यतः जीवन के प्रारम्भिक समय में शिक्षा न ग्रहण कर पाने वाले व्यक्तियों के लिए हैं दूरस्थ शिक्षा घर बैठे ही उन्हें शिक्षा ग्रहण करने का अवसर प्रदान करती है।
- रूढ़िवादी प्रणाली के कारण शिक्षा न ग्रहण कर पाने वाले व्यक्तियों के लिए शिक्षा में अवसर प्रदान करती है।
- उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान, मध्यप्रदेश, झारखण्ड एवं उत्तराखण्ड इत्यादि में शिक्षा की स्थिति अभी चिन्ताजनक बनी हुई है। अतः इन राज्यों में दूरस्थ शिक्षा के माध्यम से सुधार लाया जा सकता है।
- वह क्षेत्र जहाँ पर शैक्षिक संस्थान उपलब्ध नहीं है वहाँ विद्यार्थी दूरस्थ शिक्षा के माध्यम से ऐच्छिक पाठ्यक्रम में प्रवेश पाकर शिक्षा को पूर्ण तथा उपयोगी बना सकता है।

Downloaded From www.dietmathura.org

इस प्रकार दूरस्थ शिक्षा की वर्तमान समय तथा परिस्थितियों में अत्यधिक माँग है। इसकी सहायता से शिक्षा को सर्वसुलभ, सर्व– उपयोगी तथा रोजगार परक बनाया जा सकता है।

दूरस्थ शिक्षा के गुण

दूरस्थ शिक्षा एक आधुनिक अवधारणा है। दूरस्थ शिक्षा प्रणाली छात्रों को समान अवसर तथा चयन की स्वतन्त्रता का अधिकार प्रदान करती है इससे विद्यार्थियों में उत्तरदायित्व की भावना जागृत होती है। निःसन्देह औपचारिक शिक्षा समाज के एक वर्ग तक ही सीमित रही है। परम्परागत शिक्षा व्यक्तिगत संचार पर आधारित है तथा दूरस्थ शिक्षा संचार के आधुनिक प्रारूप पर आधारित है। इस कारण दूरस्थ शिक्षा वर्तमान में ऐसे अनेक कार्य कर रही है, जोकि परम्परागत शिक्षा नहीं कर सकती। अतः दूरस्थ शिक्षा में निम्न गुणों को देखा जा सकता है–

- यह विद्यार्थी के प्रवेश में सरलता तथा विभेदीकरण की आवश्यकता की पूर्ति करती है।
- दूरस्थ शिक्षा आधुनिक समय में शिक्षा की लगभग सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करने में सहायक है।
- यह विद्यार्थियों में समान प्रत्यय का विकास करती है।
- दूरस्थ शिक्षा सेवारत व्यक्तियों के लिए नवीन शिक्षा के विभिन्न आयामों को स्थापित करती है।
- इस शिक्षा को प्राथमिक से लेकर उच्च स्तर तक की शिक्षा में प्रयोग किया जाता है।
- यह भारतीय संविधान के उद्देश्य तथा आशाओं को भी पूर्ण करने में सहायता करती है।
- यह विद्यार्थी के धन, समय तथा गति का सदुपयोग करती है।

दोष या सीमाएँ

- विकसित देशों की अपेक्षा विकासशील देशों में जहाँ प्रशिक्षण के सीमित संसाधन है, वहाँ विद्यार्थियों को प्रशिक्षित करना एक गम्भीर समस्या है। दूरस्थ शिक्षा में यह समस्या आधुनिक शैक्षिक विधि से दूर तो करने का प्रयास करता है, किन्तु अल्प बजट के कारण यह पूर्णतया सम्भव नहीं है।
- किसी व्यक्ति को कुशलतापूर्वक, प्रशिक्षण तभी दिया जा सकता है, जबकि उसका प्रशिक्षक उसके साथ हो।
- बहुत से ऐसे प्रायोगिक विषय भी होते हैं। जहाँ अध्यापक के अभाव में विषय का ज्ञान असम्भव ही है।
- दूरस्थ शिक्षा में परम्परा, सम्भ्यता, संस्कृति तथा ऐतिहासिक उपागमों के मध्य ज्ञान का उचित अभाव माना जाता है।

Downloaded From www.dietmathura.org

अभ्यास प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. शिक्षा से आप क्या समझते है? संकुचित और व्यापक दृष्टिकोण से इसकी व्याख्या कैसे की जा सकती हैं?
2. शिक्षा के महत्त्व एवं उसके कार्यों को समझते हुए आधुनिक भारत में शिक्षा के उद्देश्यों को समझाइए।
1. दूरस्थ शिक्षा से आप क्या समझते हैं? इस शिक्षा की आवश्यकता एवं महत्त्व पर प्रकाश डालिए।
2. औपचारिक शिक्षा किसे कहते हैं? आपैचारिक एवं अनौपचारिक शिक्षा में क्या अन्तर हैं ?

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. शिक्षा के वास्तविक अर्थ से क्या अभिप्राय है ?
2. वर्तमान भारत में शिक्षा के उद्देश्यों को प्रभावित करने वाले कारकों को लिखिए।
3. अनौपचारिक शिक्षा किसे कहते हैं ?
4. दूरस्थ शिक्षा के गुणों को लिखिए।
5. 'वसुधैव कुटुम्बकम्' इस सूक्ति का क्या आशय है ?

अतिलघु प्रश्न

1. शिक्षा शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के किन शब्दों में हुई है?
2. शिक्षा के कोई दो कार्य लिखिए।
3. दूरस्थ शिक्षा के कितने घटक है ?
4. वृतं यत्नेन संरक्षेत सूक्ति का क्या अर्थ है ?

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. ''स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क का वास होता है।'' यह कथन किसका है –

(क) हरबर्ट का (ख) स्पेन्सर का (ग) हैण्टरसन का (घ) अरस्तू का

2. शिक्षा का उद्देश्य नहीं है–

(क) चारित्रिक विकास (ख) ज्ञान अर्जन (ग) व्यवसायीकरण (घ) अन्तर्निहित शक्तियों का विकास

Downloaded From www.dietmathura.org

बी0टी0सी0 पाठ्यक्रम अधिगम सामग्री

- प्रारम्भिक शिक्षा की पृष्ठभूमि
- वैदिक कालीन शिक्षा
- अर्थ
- उद्देश्य
- सिद्धान्त एवं विशेषताएँ
- शिक्षा व्यवस्था
- समीक्षा
- पुनरावृत्ति
- मूल्यांकन कार्य

Downloaded From **www.dietmathura.org**

प्रारम्भिक शिक्षा की पृष्ठभूमि

भूमिका

हम आप सभी ने बड़े–बुर्जुगों को यह कहते हुए अवश्य सुना होगा कि **''आज का बालक कल के भविष्य का निर्माता होता है।''** इससे स्पष्ट है बालक के सर्वतोमुखी विकास के लिए जीवन के प्रारम्भिक वर्षो का विशेष महत्व है। 06 से 12 वर्ष की अवस्था में बालक अपने भावी जीवन का शिलान्यास करता है, और इसमें सबसे महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है **शिक्षा**– जो प्रत्येक राष्ट्र का सबसे पवित्र एवं राष्ट्रीय दायित्व है। कक्षा 1 से 8 तक की शिक्षा को प्राथमिक शिक्षा कहा जाता है। प्रत्येक देश आदि काल से ही अपने नौनिहालों के सर्वोत्तम विकास के लिए शिक्षा की व्यवस्था करता रहा है और हमारा देश भारत तो अनन्य सुभाषित वाक्यों से सदा अनुप्रेरित रहा है और आज भी सतत इसी ओर अग्रसर है।

सूक्तियाँ

- विद्या ददाति विनयं
- विद्याविहीनं पशुभिःसमानाः
- विद्या कल्पलतेव
- ज्ञानं मनुजस्य तृतीय नेत्रं

वैदिकालीन शिक्षा

भारत में शिक्षा का जो स्वरूप प्रचलित था, उसे वैदिक कालीन शिक्षा या गुरुकुल शिक्षा व्यवस्था कहा जाता है। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है **वेद पर आधारित शिक्षा या गुरु के घर या कुल में प्राप्त की जाने वाली शिक्षा।**

वेद पर आधारित शिक्षा का अर्थ है ऐसी शिक्षा व्यवस्था जिसका स्रोत वेद है। भारतीय साहित्य में चार प्रकार के वेद माने जाते हैं– ऋग्वेद, यर्जुवेद, सामवेद, अथर्ववेद।

वैदिक कालीन शिक्षा का अर्थ स्पष्ट करते हुए ***अल्तेकर महोदय*** ने लिखा है– वैदिक युग से भारत में शिक्षा का ***तात्पर्य*** प्रकाश का वह स्रोत जो जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में हमारा सच्चा पथ–प्रदर्शन करती है। इस प्रकार शिक्षा एक प्रकाश है किन्तु यह पुस्तकीय ज्ञान का पर्याय नहीं है, क्योंकि प्राचीन भारतीय गुरुओं का यह दृढ़ विश्वास था कि मनुष्य ने भले ही विभिन्न शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त कर लिया हो पर यदि उसमें अन्तर्दृष्टि का विकास नहीं हुआ और उसे अपने अध्ययन के फलस्वरूप अन्तर्ज्योति नहीं प्राप्त हुई है, तो वह मूर्ख है। केवल क्रियाशील मनुष्य ही वास्तव में शिक्षित है। वास्तव में वैदिक शिक्षा का तात्पर्य अन्तर्ज्योति और शक्ति से था, जिससे मानव की शारीरिक, मानसिक, चारित्रिक शक्तियों का सन्तुलित विकास हो।

उद्देश्य

वैदिक शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य था ***मनुर्भव*** पहले वह इंसान बने फिर भारतीय। **ऋग्वेद** में कहा गया है कि आँख, कान, नाक आदि में सभी मनुष्य समान हैं, पर जो ज्ञानवान् हो जाते हैं वे अन्यों से श्रेष्ठ हो जाते हैं। स्पष्ट है वैदिक कालीन शिक्षा का मकसद व्यक्ति को ज्ञान में प्रवीण करना था। ऐसा ज्ञान जो उसे जीवन, संसार के मोह से मुक्ति प्राप्त करने में समर्थ बना सके– **''सा विद्या या विमुक्तये''**

Downloaded From www.dietmathura.org

- वैदिक कालीन शिक्षा का केन्द्र बिन्दु धर्म था। (धर्म अर्थात् ध्रियते अनेन इति धर्मः) अतएव धार्मिक भावना का विकास ही शिक्षा का लक्ष्य था। सब कुछ ईश्वर का है संसार मिथ्या है– ''सत्यं ब्रह्म जगन्मिथ्या'' शिष्य को इस तथ्य से अवगत कराया जाये कि वह संसारिकता को छोड़कर अध्यात्मिकता की ओर अग्रसर हो सके। ईश्वर भक्ति में अपना जीवन समर्पित कर दे।
- वैदिक कालीन शिक्षा में यह स्थापित तथ्य था कि ईश भक्ति और ज्ञानवान वही व्यक्ति हो सकता है जो चरित्रवान भी हो। मनुस्मृति में भी कहा गया– मात्र गायत्री मन्त्र का ज्ञान रखने वाला सुचरित ब्राहम्ण वेदों के ज्ञाता चरित्रहीन ब्राह्म्ण से कहीं ज्यादा श्रेष्ठ हैं। अतएव कहा भी गया है– ''वृतं यत्नेन संरक्षेत''
- शिक्षा न केवल बालक को चरित्रवान बनाए बल्कि उसका शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक विकास भी करे ताकि वह देश का सुयोग्य नागरिक बन सके। जैसा कि फ्रांसीसी विद्वान ने कहा भी है– **यदि शिक्षा के द्वारा छात्र का मस्तिष्क अधिक प्रवण नहीं बना उसमें विवेक उत्पन्न नहीं हुआ तो अच्छा होता कि वह पढ़ने के बजाय टेनिस खेलता।**
- वैदिक युगीन शिक्षा का सार ये था कि शिष्य जब गुरूकुल से शिक्षा ग्रहण करके वापस समाज में प्रवेश करे तो वह एक संतुलित सामाजिक प्राणी के रूप में स्थापित हो। इसलिए उन्हें सामाजिक कौशलों की शिक्षा दी जाती थी।

एजुकेशन–इन एनशियंटइंडिया अल्तेकर महोदय की रचना है।

- राष्ट्रीय संस्कृति का संरक्षण व प्रसार करना वैदिक शिक्षा प्रणाली का महत्वपूर्ण लक्ष्य था। शिक्षा ही वह माध्यम है जिसके द्वारा भारतीय परम्परा के सत्त प्रवाह को संरक्षित किया जा सकता है। अतएव वैदिक शिक्षा व्यवस्था में ऐसे विषयों, प्रणालियों का समावेश था जो बालकों को भारतीयता के प्रति जागरूक बनाते थे।

बोध प्रश्न– *प्राचीन कालीन भारतीय शिक्षा प्रणाली को गुरुकुल शिक्षा क्यों कहा जाता है.....*

सिद्धान्त एवं विशेषताएं

- वैदिक युग में प्रचलित शिक्षा की सबसे अहम बात थी शिक्षा पूरी तरह से राज्य के नियन्त्रण से मुक्त थी। यह लोगों का निजी कार्य था जिसका प्रबन्ध तंत्र ब्राहम्णों के अधीन था, राजा या धनी वर्ग स्वेच्छा से इन संस्थाओं को अनुदान देते थे परन्तु ये संस्थायें इनके द्वारा बनाये गये नियम–कानूनों से स्वतन्त्र थीं।
- **सार्वजनिक व निःशुल्क शिक्षा–** इस काल में शिक्षा देना एक पवित्र कर्तव्य समझा जाता था। छात्रों से कोई फीस नहीं ली जाती थी शिक्षा के द्वार सभी वर्ग, लिंग के लिए खुले थे हालांकि उत्तर वैदिक काल में वर्णाश्रम व्यवस्था से शिक्षा कुछ वर्गों के लिए सुगम्य नहीं थी फिर भी पठन–पाठन ब्राहम्ण वर्ग का धर्म माना जाता था। **इस काल की शिक्षा को वर्तमान युग में अधिनियमित शिक्षा के अधिकार 2009 की पृष्ठभूमि कहा जा सकता है।**
- शिक्षा का स्वरूप मुख्यतया वैयक्तिक था बच्चा गुरु के पास शिक्षा ग्रहण करने जाता था, गुरु वैयक्तिक भिन्नता के आधार पर प्रत्येक शिष्य को ज्ञान व प्रशिक्षण देता था उसकी बौद्धिक व मानसिक क्षमताओं कुशलताओं का संवर्धन करता था।
- शिक्षा पुस्तकीय न होकर व्यावहारिक थी। बालक गुरु के पास केवल विषयगत ज्ञान ही नहीं प्राप्त करता था बल्कि उसे भावी व्यस्क जीवन में प्रवेश करने से पूर्व की पूरी तैयारी करवाता था। समस्त दैनिक क्रियाओं, व्यवसायिक कौशलों को करके सीखता था।

Downloaded From www.dietmathura.org

- शिक्षा सावासीय थी। बच्चा अपना घर–परिवार छोड़कर विद्याध्ययन हेतु गुरु के घर पर जाता था और एक नियत अवधि तक वहाँ रुककर अपनी शिक्षा पूर्ण करता था। उसे आवासीय सुविधा के लिए कोई शुल्क नहीं देना पड़ता था, लेकिन प्रत्येक छात्र अपनी दैनिक कार्यों को गुरु के निर्देशन में करता था इससे उसमें आत्म विश्वास आता था और वह समाज का अच्छा नागरिक बनता था।

शिक्षा प्रणाली गुरु के नियंत्रण से प्रभावित थी। गुरु के नियम–निर्देश ही अनुपालित होते थे। गुरु ही शिक्षण का विषय, विधि, कार्य निश्चित करते थे बालक उनका अनुसरण करता था शिक्षा एक मार्गी थी बच्चों की सहभागिता कम थी।

इन्हें भी जाने–

- एक वेद के ज्ञाता को **स्नातक** कहते थे।
- दो वेद के ज्ञाता को **वसु** कहते थे।
- तीन वेद के ज्ञाता को **रूद्र** कहते थे।
- चौथे वेद के ज्ञाता को **आदित्य** कहते थे।

शिक्षा व्यवस्था प्रकृति के सानिध्य में सुचारू रूप से सम्पन्न होती थी। नैसर्गिक सौन्दर्य, जनपद के कोलाहल से दूर, आश्रम में शिक्षा प्राप्त करने के लिए छात्र प्रवेश लेते थे। इस प्रकार वैदिक युगीन शिक्षा प्रणाली वातावरण से समायोजन की शिक्षा थी।

शिक्षा व्यवस्था

वैदिक कालीन शिक्षा व्यवस्था अत्यन्त ही सुव्यवस्थित एवं समेकित थी। उस समय की शिक्षा प्रणाली में प्राथमिक माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा ऐसा कोई विभाजन नहीं था। अनौपचारिक शिक्षा बच्चे के जन्म से ही आरम्भ हो जाती थी।

वैदिक शिक्षा में संस्कारों एवं मन्त्रों का विशेष महत्व था। बालक **पाँच वर्ष की अवस्था पूर्ण** कर लेने के बाद ही गरुकुल में प्रवेश कर सकता था। पाँच वर्ष की अवस्था में **चूड़ा कर्म संस्कार** किया जाता था जिसे विद्यारम्भ संस्कार कहते थे। इस संस्कार के बाद बच्चे की गृह शिक्षा शुरू होती थी। प्रायः प्रारम्भिक शिक्षा घर में माता–पिता बुजुर्गो के बीच ही सम्पन्न होती थी। परिवार में मन्त्रों का उच्चारण अभ्यास, पठन, प्रारम्भिक गणित, कथा–कहानी आदि का ज्ञान कराया जाता था।

उसके बाद गुरुकुल में प्रवेश के लिए भेजा जाता था। वहाँ उसका उपनयन संस्कार कराया जाता था। उपनयन का शाब्दिक अर्थ है– पास ले जाना अर्थात गुरु के पास ले जाना। उपनयन संस्कार के बाद गुरु सावित्री मंत्र का उपदेश देकर शिक्षा शुरू करता था। उपनयन संस्कार को मौञ्जी संस्कार भी कहते थे। इस धार्मिक संस्कार के बाद छात्र भौतिक शरीर से अध्यात्मिक शरीर प्राप्त करता था और द्विज कहलाने लगता था।

इन्हें भी जाने

उपनयन की आयु

Downloaded From www.dietmathura.org

- ब्राहम्ण छात्र के लिए 8 वर्ष
- क्षत्रिय छात्र के लिए 11वर्ष
- वैश्य छात्र के लिए 12 वर्ष

अध्ययन काल

सामान्यतया 12 वर्ष का होता था स्पष्ट है कि बालक की 5 वर्ष तक की शिक्षा घर में सम्पन्न होती थी और उसके आगे की शिक्षा वह आश्रम में रहकर प्राप्त करता था।

शिक्षा सत्र व समय

सामान्यतया शिक्षा सत्र की अवधि एक वर्ष में साढ़े चार या पाँच मास की होती थी। विद्याध्ययन का कार्यक्रम श्रावणमास की पूर्णिमा को **उपाकर्म समारोह से शुरू होता** था और पौष मास की पूर्णिमा को छन्दमास उत्सर्जनम् समारोह से समाप्त होता था शिक्षण कार्य–पठन–पाठन प्रातः काल से मध्यान्ह तक फिर कुछ विश्राम तथा भोजनोपरान्त सायंकाल तक चलता था।

गुरूकुलों में अवकाश भी रहता था, प्रत्येक माह चार दिन का प्रतिपदा, पूर्णिमा, प्रत्येक पखवाड़े की अष्टमी को अवकाश रहता था। बच्चों को छुट्टियाँ ज्यादा मिलती थीं।

शिक्षा केन्द्र

प्राचीन काल में आज जैसे बड़े–बड़े भवन के भीतर शिक्षण कार्य नहीं होता था शिक्षा प्रकृति के स्वाभाविक वातावरण में और खुले माहौल में होती थी। ये स्थान सामान्यतः गुरूजनों के आश्रम या घर हुआ करते थे जो कोलाहल से दूर होते थे। यहाँ रहकर छात्र आचार–व्यवहार के नियम भी सीखते थे।

वेशभूषा निर्धारित थी ब्राहम्ण की मेखला **मूंज की,** क्षत्रिया की तांत की और वैश्य की ऊन की बनी हुई होती थी। अपने शरीर के अधोभाग को ढ़कने के लिए छात्र सन, रेशम, ऊन के वस्त्रों का प्रयोग करते थे। चूंकि छात्र की दिनचर्या में भिक्षाटन भी था इसलिए वे छड़ी का प्रयोग करते थे।

पाठ्यक्रम

वैदिक शिक्षा पूर्णतया अध्यात्मिक व व्यावहारिक लक्ष्यों के प्रति समर्पित थी इसलिए पाठ्यक्रम अत्यन्त व्यापक था। बालकों को वेद, उपनिषद, पुराण, नीतिशास्त्र, इतिहास, गणित, भाषा, कला, विज्ञान, शिल्प, कृषि, पशुपालन, अर्थशास्त्र एवं सैन्य विज्ञान का ज्ञान आवश्यक था। शिक्षण का माध्यम संस्कृत था।

शिक्षण विधि

शिक्षण विधि मौखिक थी। छात्र आचार्य द्वारा कही गई बातों को कठंस्थ करता था। इस काल की प्रमुख तीन विधियाँ थी **श्रवण, मनन, निदिध्यासन,** सर्वप्रथम छात्र गुरु की कही गई बातों को सुनता था, फिर जो कुछ सुना उसका मन से चिन्तन करता था और उसे अपने व्यवहार में उतारता था, कोई

Downloaded From www.dietmathura.org

शंका होने पर उसका समाधान करता था इस प्रकार ज्ञान स्थायी हो जाता था। इसके अलावा व्याख्यान तथा प्रश्नोत्तर विधि, वाद–विवाद, शास्त्रार्थ प्रणाली भी अपनाई जाती थी। आगमन, निगमन एवं उदाहरण विधि द्वारा विषयवस्तु को स्पष्ट करते थे। साहित्य पाठन में कथा विधि प्रयुक्त की जाती थी। छात्र संख्या बढ़ने पर कक्षा मानीटर पद्धति का भी प्रयोग होता था इस पद्धति में उच्च कक्षा के छात्र निम्न कक्षा के छात्रों को पढ़ाते थे, और गुरु का सहयोग करते थे।

गुरु– शिष्य सम्बन्ध –वैदिक युग में शिक्षक व छात्र का सम्बन्ध पिता–पुत्रवत् होता था। गुरु छात्र का मानस पिता माना जाता था वह उसे ज्ञान देने के साथ उसके चारित्रिक गुणों का सदैव ध्यान रखता था। उनमें अच्छी आदतों का विकास करता था ताकि वे अच्छी नागरिक बन सकें और समाज में समायोजित हो सकें। छात्र भी गुरु को अपना पिता मानकर पुत्रवत् उनकी सेवा करता था उनके निर्देशन में ज्ञानार्जन के साथ–साथ व्यावहारिक कौशलों को भी सीखता था। गुरु देव तुल्य था (आचार्य देवो भव) शिष्य गुरु से नीचे आसन पर बैठते थे, उनकी हर आज्ञा का पालन करते थे। ***किन्तु आज गुरु साक्षात् पर ब्रहम तस्मै श्री गुरवे नमः की परम्परा धूमिल होती जा रही है। कौन उत्तरदायी है? हम या आप ? सर्वेक्षण करे एवं वीडियोंक्लिप तैयार करें।***

अनुशासन व दण्ड– वैदिक युगीन शिक्षा व्यवस्था निष्पक्ष थी गुरुजन छात्रों के साथ एक समान व्यवहार करते थे नियम तोड़ने पर प्रत्येक उदण्ड छात्र को सजा मिलती थी। गुरु स्वयं उच्च चरित्र का उदाहरण छात्रों के समक्ष प्रस्तुत करते थे। दण्ड का स्वरूप शारीरिक कम, अध्यात्मिक ज्यादा था– जैसे उपवास का आदेश देना, झिड़कना, समझाना, अपनी उपस्थिति से दूर हटा देना। आपस्तम्ब ने लिखा भी ''गुरु हठी छात्र को अपनी उपस्थिति से दूर भेज दे या उनसे उपवास करवाये।'' दण्ड के सम्बन्ध में यह कहा जाता था कि ***प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रे मित्रवदाचरत्।***

प्रो0 वेदमित्र– कक्षा नायकीय पद्धति बुद्धिमान छात्रों को शिक्षण कला सीखने का अवसर प्रदान करती थी। इस प्रकार अप्रत्यक्ष रूप से उसी कार्य को करती थी जिसे आधुनिक शिक्षक प्रशिक्षण कॉलेज सम्पन्न करते है।

परीक्षा प्रणाली

वैदिक युगीन शिक्षा प्रणाली परीक्षा विहीन थी। गुरु नया पाठ तब पढ़ाता था जब छात्र पहले पढ़ाए गए पाठ को पूरी तरह से तैयार कर लेते थे तथा वह छात्रों की तैयारी से संतुष्ट हो जाता था। शिक्षा समाप्ति पर विद्यार्थी को स्थानीय विद्वानों की सभा में उपस्थित किया जाता था जहाँ पर पूछे गये प्रश्नों का वह उत्तर देता था। परीक्षाा व्यवस्था न होने से कोई प्रमाण पत्र तथा उपाधियाँ नही दी जाती थी, मुख्य लक्ष्य ज्ञानार्जन ही था।

विद्यार्थी जीवन की समाप्ति और गृह जीवन में पुनः लौटने के समय समावर्तन संस्कार होता था। गुरु शिष्य को नया वस्त्र आभूषण, जूता पगड़ी, अंजन, छाता आदि देकर विदा करता था। होमादि क्रिया, मधुपर्क के बाद शिष्य विद्यादान का व्रत लेता था अन्त में शिष्य अपनी सामर्थ्य से गुरु को दक्षिणा देता था।

Downloaded From www.dietmathura.org

समीक्षा

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि वैदिक शिक्षा का मुख्य लक्ष्य बालक का बहुमुखी विकास करना था उसे इस लोक में रहते हुए भी अध्यात्मिकता से जोड़े रखना था ताकि वह पथभ्रष्ट न हो सकें। वैदिक शिक्षा अपने लक्ष्य के अनुसरण में पूर्ण कही जा सकती है किन्तु आज शिक्षा–शिक्षण का जो स्वरूप बदल रहा उस परिप्रेक्ष्य में वैदिक शिक्षा अधिकारिक कही जा सकती है, उसमें कुछ **कमियाँ** थी जिसका उल्लेख करना विषयवस्तु की माँग है–

- वैदिक शिक्षा प्रणाली में बाल मनोविज्ञान का समावेश नहीं था।
- वैदिक शिक्षा बाल केन्द्रित न होकर एकमार्गी थी।
- प्रायः प्रत्येक विषय प्रत्येक बच्चे के लिए अनिवार्य थे।
- धार्मिकता, सत्य, ब्रहम आदि विषयों का ही प्रधान्य था।
- माध्यम संस्कृत था, अन्य भाषाओं पर जोर नहीं दिया जाता था।
- स्त्री शिक्षा का व्यापक प्रचार न था।
- शिक्षा पद्धति मौखिक थी। लेखन अभ्यास पर जोर नहीं दिया जाता था।

प्रशिक्षु, छात्रों के सहयोग से चर्चा द्वारा पुनरावृत्ति कार्य करें–

- वैदिक शिक्षा को सूत्र उपनिषद कालीन शिक्षा भी कहते थे।
- शिक्षा का अर्थ अन्तज्योति, प्रकाश से था।
- प्राकृतिक वातावरण में शिक्षा प्राचीन भारतीय शिक्षा की महत्वपूर्ण विशेषता थी।
- शिक्षा परा, अपरा दो प्रकार की होती थी।
- निःशुल्क व सार्वभौम शिक्षा का प्रचलन भारत में आदि काल से ही हो गया था।
- कक्षा में छात्र संख्या बढ़ जाने पर कक्षा नायकीय पद्धति द्वारा शिक्षण कार्य किया जाता था।

Downloaded From **www.dietmathura.org**

अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न दिए गए विकल्पों में से सही का चुनाव करिएं।

1. वैदिक कालीन शिक्षा व्यवस्था में–

(क) शिक्षा सशुल्क थी।

(ख) शिक्षा बड़े–बड़े भवनों में होती थी।

(ग) शिक्षा पर राजा का नियन्त्रण था।

(घ) शिक्षा पूर्ण रूप से निःशुल्क थी।

2. प्राचीन शिक्षण पद्धति में विधियां थी–

(क) श्रवण, मनन, निदिध्यासन

(ख) खेल विधि

(ग) प्रोजेक्ट विधि

(घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं

अतिलघुत्तरीय प्रश्न

(क) चूडाकर्म संस्कार कब होता था ?

(ख) 'उपनयन' का शाब्दिक अर्थ क्या था ?

(ग) वैदिक शिक्षा को गुरूकुल प्रणाली क्यों कहा जाता है ?

लद्युत्तरीय प्रश्न

(क) वैदिक शिक्षा प्रणाली के कोई तीन उद्देश्य बताइये ?

(ख) गुरूकुल प्रणाली के पाठ्यक्रम में कौन–कौन से विषय शामिल थे।

दीर्घउत्तरीय प्रश्न

वैदिक शिक्षा प्रणाली की उन विशेषतों का विवेचना करिये जिन्हें आज की शिक्षा प्रणाली में शामिल करके शिक्षा समस्याओं को दूर किया जा सकता है ?

- गतिविधि (अब करने की बारी)
- अपने आस–पास के बच्चों को एकत्रित करके पेड़ों की छाया में शिक्षण कार्य करें अपने अनुभव बतायें कि आज के माहौल से किस प्रकार भिन्न हैं ?

Downloaded From www.dietmathura.org

बौद्ध कालीन शिक्षा

- ❖ अर्थ
- ❖ उद्देश्य
- ❖ सिद्धान्त एवं विशेषताएं
- ❖ शिक्षा व्यवस्था
- ❖ समालोचना
- ❖ वैदिक एवं बौद्धकालीन शिक्षा का तुलनात्मक अध्ययन
- ❖ मूल्यांकन कार्य

Downloaded From **www.dietmathura.org**

शिक्षा चूँकि जीवन पर्यन्त चलने वाली एक सतत प्रक्रिया है इसलिए इसमें समय स्थान के साथ परिवर्तन होना एक स्वाभाविक घटना है। समय के साथ वैदिक शिक्षा प्रणाली में जो संकीर्णता आ गई थी उसने ही एक नई शिक्षा प्रणाली के लिए द्वार खोले जिसे बौद्ध शिक्षा प्रणाली कहते हैं। डॉ0 आर0के0मुखर्जी के मत में **बौद्ध शिक्षा प्राचीन ब्राह्मणीय शिक्षा प्रणाली का एक परिवर्तित रूप था।**

अर्थ

बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए विकसित की गई शिक्षा प्रणाली बौद्ध शिक्षा प्रणाली कहलाती थी। महात्मा बुद्ध (प्राचीन नाम सिद्धार्थ) बौद्ध धर्म के प्रवर्तक थे,

उद्देश्य

बौद्ध धर्म मध्यम मार्गीय का पक्षधर था, इसलिए उसमें जो शिक्षा व्यवस्था थी उसका मकसद शिक्षा समाज के हर वर्ग तक पहुँचे उसमें जाति, धर्म, वर्ग, लिंग का भेदभाव नहीं था।

- बौद्ध कालीन शिक्षा बालक के शुद्ध चरित्र निर्माण पर जोर दिया जाता था। सात्विक जीवन से ही जीवन में सादा जीवन, उच्च विचार का उद्देश्य पूरा हो सकता है।
- बौद्ध कालीन शिक्षा बालक में सामाजिक कुशलता के विकास पर जोर देती थी ताकि वह समान का योग्य नागरिक बन सके।
- बौद्ध धर्म केवल भारत में नहीं विदेशों में भी फैला, इसलिए इस युग की शिक्षा का एक लक्ष्य राष्ट्रीय संस्कृति का प्रचार–प्रसार एवं संरक्षण करना था।
- बौद्ध एक धर्म था और धर्म का अध्यात्मिकता से निकट सम्बन्ध होता है, अतएव बौद्ध धर्म का अन्तिम व प्रमुख लक्ष्य सत्य की खोज या निर्वाण की प्राप्ति था। बौद्ध युगीन शिक्षा में इस लोक की तैयारी के साथ परलोक की चिन्ता को भी स्थान दिया गया। महात्मा बुद्ध ने कहा यह संसार दुःखमय व क्षणिक है इसके विपरीत परमतत्व ईश्वर सत्य है उसी की प्राप्ति के लिए मनुष्य को सदैव तत्पर रहना चाहिए।

विशेषताएं

- बौद्ध युग में प्रारम्भिक शिक्षा की कुछ मूलभूत बातें थी जिनका उल्लेख निम्नवत् है–
- शिक्षा सार्वभौमिक थी जाति, धर्म का कोई बन्धन नहीं था।
- प्राथमिक शिक्षा पूर्णतया निःशुल्क थी।
- शिक्षा व्यवस्था का मूल केन्द्र संघ होता था। जिसका प्रशासन व प्रबन्ध योग्य अनुभवी व्यक्ति करता था। शिक्षा को राजा का संरक्षण प्राप्त था किन्तु नियंत्रण नहीं था। संघ के अपने नियम–कानून थे।
- शिक्षा का माध्यम जनभाषा था, यही इस शिक्षा प्रणाली की लोकप्रियता का मुख्य कारण भी था।
- शिक्षा प्रणाली जनतान्त्रिक सिद्धान्तों पर आधारित थी। निर्णय मतदान के आधार पर लिये जाते थे।
- बौद्ध शिक्षा में भी संस्कारों को महत्व दिया जाता था। धम्म–संघ–गुरु की महत्ता को स्वीकार किया जाता था।
- बौद्ध शिक्षा पद्वति की एक विशेषता यह थी– शास्त्रीय विवाद। छात्र समय–समय पर एकत्र होकर विभिन्न विषयों पर विचार विमर्श करते थे और ज्ञान का संवर्द्धन करते थे। **मिरडेल का**

Downloaded From www.dietmathura.org

कथन है– 'शास्त्रीय विवादों को प्रोत्साहन दिया जाता था इस प्रकार की विज्ञ मंडलियाँ बौद्ध उच्च शिक्षा की एक अनोखी विशेषता थी।'

शिक्षा व्यवस्था

बौद्ध युगीन शिक्षा का प्रारम्भ 6 या 8 वर्ष से माना जाता था। शिक्षा का मूल केन्द्र मठ हुआ करता था उसमें प्रवेश करने से पहले बच्चे का **प्रवज्जा संस्कार** किया जाता था। वह अपने सिर के बाल मुँडाता था, पीले वस्त्र धारण करके शिष्य के रूप में स्वीकार किये जाने के लिए गुरु से प्रार्थना करता था। प्रार्थना स्वीकार हो जाने के बाद वह शरणत्रयी का अनुसरण करता था–

बुद्धं शरणं गच्छामि

धम्मं शरणं गच्छामि

संघं शरणं गच्छामि

प्रवज्जा संस्कार के बाद छात्र श्रवण, सामनेर या सिद्ध विहारक कहा जाता था। छात्रों को छः माह तक सिद्धिरस्तु नामक बालपोथी पढ़नी पड़ती थी जिसमें वर्णमाला के 49 अक्षर थे। इसको समाप्त करने के बाद बालक पाँच विधाओं का ज्ञान प्राप्त करता था। **शब्द विद्या, शिल्प स्थान विद्या, चिकित्सा विद्या, हेतु विद्या अध्यात्म विद्या।**

प्राथमिक शिक्षा 12 वर्ष तक चलती थी। 12 वर्ष के बाद 20 वर्ष की आयु में उपसम्पदा संस्कार होता था। नवभिक्षु 10 नियमों के पालन का संकल्प लेता था–

- जीव हत्या न करना।
- चोरी न करना।
- शुद्ध रहना।
- असत्य न बोलना।
- मादक पदार्थों का प्रयोग न करना।
- समय पर भोजन करना।
- नृत्य संगीत, तमांशा से दूर रहना।
- श्रृंगार की वस्तुओं का प्रयोग न करना।
- भूमि शयन करना।
- स्वर्ण, चाँदी दान न लेना।

12 मास का एक शिक्षण सत्र होता था। पठन–पाठन प्रातः काल से मध्यान्ह और पुनः भोजनादि क्रिया के बाद सांयकाल से पूर्व तक चलता था। अवसर के अनुसर अवकाश भी हुआ करते थे।

शिक्षण कार्य मठो में किया जाता था जो बड़े–बड़े भवन हुआ करते थे जिसमें हजारों बौद्ध भिक्षुओं के रहने की व्यवस्था थी गुरु–शिष्य रहा करते थे **भारत के इतिहास में** बौद्ध विहार सर्वप्रथम संगठित संस्था थी। इनमें खाने–पीने रहने की व्यवस्था थी बौद्ध काल के उतरार्द्ध कुछ विहार/मठ

Downloaded From **www.dietmathura.org**

सामान्य विद्यालयों की तरह कार्य करने लगे जिनमें विद्यार्थी अपने घर पर रहकर शिक्षा प्राप्त कर सकता था।

बौद्ध कालीन शिक्षा केन्द्र तक्षशिला, नालन्दा, बल्लभी, विक्रमशिला, ओदन्तपुरी, काशी, मिथिला एवं जगदला

मठो या शिक्षा संस्थाओं में योग्यतानुसार छात्रों को अलग–अलग कक्षाओं में रखा जाता था सबसे छोटी कक्षा में छात्र **सुतन्त** की पुनरावृत्रि करते थे अगली कक्षा **विनय** के लिए होती थी छात्र परस्पर तर्क विर्तक द्वारा निपुणता हासिल करते थे।

पाठ्यक्रम इस शिक्षा प्रणाली का पाठ्यक्रम सैद्धान्तिक व व्यावहारिक था। धार्मिक पाठ्यक्रम में बौद्ध साहित्य का अध्ययन और लौकिक पाठ्यक्रम के अन्तर्गत लेखन, गणित, कृषि, पशुपालन, चिकित्सा, मल्ल विधा, शिल्प कला आदि विषय पढ़ाए जाते थे।

बौद्ध शिक्षा मूलतः तो धार्मिक थी किन्तु सामान्य व्यवसायों कताई–बुनाई सिलाई, शिल्प, निर्माण कला की भी शिक्षा दी जाती थी।

इन्हें भी जाने
निम्नलिखित लोगों को शिक्षा ग्रहण के योग्य नहीं माना जाता था–

- चाण्डाल
- कोढी
- सरकारी नौकर
- डाकू, कैदी। माता–पिता ने आज्ञा न दी हो।

शिक्षण विधि

मौखिक थी। शिक्षण का माध्यम जनभाषाएं व पाली थी ***बुद्ध ने कहा भी ओ शिक्षुओं मैं तुममें से प्रत्येक को बुद्ध के उपेदशों को अपनी स्वयं की भाषा में सीखने की आज्ञा देता हूँ।*** ''रटने पर ज्यादा जोर था। व्याख्यान, प्रश्नोत्तर, वाद विवाद विधियों का महत्वपूर्ण स्थान था। यथोचित अवसरो पर देशाटन, विशेषज्ञ वार्ता, सम्मेलन व प्रकृति निरीक्षण का प्रयोग होता था। कला कौशल की शिक्षा कारीगरों के साथ रहकर छात्र सीखते है।

आप चर्चा करें *कि ये शिक्षण विधियाँ आज के सन्दर्भ में कितनी उपयोगी हैं ?*

गुरु शिष्य सम्बन्ध

गुरु–शिष्य सम्बन्ध स्नेहपूर्ण था शिष्य का पवित्र कर्तव्य था वह गुरु की सेवा करें, उनकी दिनचर्या का ख्याल रखे, साफ–सफाई, भिक्षा द्वारा भोजन व्यवस्था करें और गुरु की आज्ञा का पालन करें। गुरु भी छात्र के प्रति पितृवत दायित्व निभाता था उसके शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक क्षमताओं के विकास के लिए ज्ञान देता, समाज में रहने योग्य बनाता था। गुरु का कर्तव्य था कि वह उच्च आदर्श प्रस्तुत करें और सादा जीवन व्यतीत करें।

स्त्री शिक्षा

बौद्ध धर्म में स्त्री शिक्षा को प्रोत्साहन मिला। संघ में प्रशिक्षु के रूप में प्रवेश लेने वाली महिला बुद्ध की विमाता प्रजापति गौतमी थी। मठ/बिहार में महिलाओं को भिक्षुणी के रूप में रहना पड़ता था। उन्हें भी भिक्षुओं के समान शिक्षा दी जाती थी।

Downloaded From www.dietmathura.org

व्यवसायिक शिक्षा भी बौद्ध युगीन शिक्षा प्रणाली का अभिन्न अंग थी। बौद्ध साहित्य **महावग्गा** में भिक्षुओं के लिए कताई–बुनाई, सिलाई का प्रशिक्षण गृहस्थ जीवन व्यतीत करने वाले अनुनायियों का वर्णन है। जीविकोपार्जन की शिक्षा दी जाती थी।

समालोचना

गुण

- बौद्ध शिक्षा केन्द्र अत्यधिक सुव्यवस्थित थे।
- बौद्ध शिक्षा केन्द्र सम्प्रदायिक सौहार्द को प्रोत्साहन देती थी।
- बौद्ध शिक्षा केन्द्र पुसतकालय में प्रत्येक भाषा, विषय का अनूठा संग्रह उपलब्ध था।
- जनभाषा का शिक्षा में प्रयोग लोकप्रियता का कारण था।
- मध्यम मार्ग सुलभ था शिक्षुकगण।

दोष

- स्त्री शिक्षा का सार्वभौमिकरण न हो पाया था, कुलीन स्त्रियाँ ही शिक्षा ग्रहण करती थी।
- लौकिक विषयों की उपेक्षा।
- आजीवन ब्रह्मचर्य ने भिक्षुओं को विलासिता की ओर ढकेलना शुरु किया तथा मठों/विहारों में उनमुक्ता ने अवांछित तत्वों को आकर्षित किया।

बौद्ध शिक्षा	**वैदिक शिक्षा**
समानता– • लक्ष्य निर्वाण प्राप्ति	• • लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति
• शिक्षा प्रारम्भ की आयु 8 वर्ष	• 8वर्ष
• शिक्षा का प्रारम्भ संस्कार से	• शिक्षा का प्रारम्भ संस्कार से
• भिक्षाटन (शिष्य की दिनचर्या)	• भिक्षाटन (शिष्य की दिनचर्या)

असमानता– • बौद्ध धर्म का प्रचार मकसद था	• • ब्राह्म्ण धर्म का प्रचार मकसद नहीं था।
• संघ का वर्चस्व था	• गुरु का वर्चस्व था
• शिक्षा समुदाय प्रधान थी	• शिक्षा परिवार प्रधान थी
• कालान्तर में विलासिता की ओर अग्रसर	• जीवन सादगी पूर्ण था
• उपसम्पदा संस्कार के बाद आजीवन ब्रह्मचर्य	• समावर्तन संस्कार के बाद गृहस्थ जीवन में प्रवेश

Downloaded From **www.dietmathura.org**

• संघ में पुरुष या स्त्री साथ रहते थे	• गुरुकुल में साथ रहना अनुमेय नही था।
• माध्यम पाली या जनभाषा था	• माध्यम संस्कृत थी
• जाति धर्म से परे	• जाति पर आधारित
• संघ का विद्यालय पर नियंत्रण	• गुरुकुल नियन्त्रण से मुक्त

अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न

संघ में प्रवेश के बाद छात्र कहलाता था।

(क) श्रमण (ख) नवभिक्षु (ग) सामनेर (घ) उपर्युक्त सभा।

2. बौद्ध शिक्षा का प्रमुख केन्द्र था ?

(क) नालन्दा (ख) गया (ग) गुजरात (घ) बंगाल ।

अतिलघु प्रश्न

1. सिद्ध विहारिक किसे कहा जाता था ?

2.बौद्ध शिक्षा का प्रारम्भ किस आयु में होता था ?

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. बौद्ध शिक्षा की शिक्षण विधि क्या थी।

2. प्रवज्जा और उप सम्पदा संस्कार से आप क्या समझते हैं।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. बौद्ध कालीन शिक्षा किन बिन्दुओं पर वैदिक कालीन शिक्षा से अलग थी।

प्रॉजेक्ट वर्क

- भारत में एक बौद्ध संघ/मठ का भ्रमण करें और वहाँ की शिक्षण व्यवस्था का अवलोकन करके अपने अनुभव लिखें।

Downloaded From www.dietmathura.org

मध्यकालीन कालीन शिक्षा व्यवस्था

- भूमिका
- अर्थ
- उद्‌देश्य
- विशेषताएं
- शिक्षा व्यवस्था
- मूल्यांकन कार्य

Downloaded From **www.dietmathura.org**

मुस्लिम कालीन शिक्षा

भारतीय सभ्यता, संस्कृति और यहाँ की समृद्धि हमेशा से ही विदेशी आक्रान्ताओं के लिए आकर्षण का केन्द्र रही है। **ईसा की आठवीं सदी इस्लाम आक्रमण की सदी कही जा सकती है।** इन विदेशी शासकों के साथ उनकी परम्परा व संस्कृति का भी आगमन हुआ जिससे तत्कालीन शिक्षा व्यवस्था भी प्रभावित हुई। भारतीय शिक्षा प्रणाली की भाँति इस्लामी शिक्षा का आधार भी धर्म था।

सभी धर्मो की तरह इस्लाम धर्म में शिक्षा का विशेष महत्व था। **मुहम्मद साहब कहा करते थे–** ''दान में सोना देने की अपेक्षा अपने बच्चे को शिक्षा देना श्रेष्ठ है।'' मुहम्मद गोरी, कुतुबुद्दीन ऐबक, इल्तुतमिश, रजिया अलाउद्दीन खिलजी आदि प्रारम्भिक शासकों ने यदा–कदा मकतब मदरसों का निर्माण कराकर शिक्षा को प्रोत्साहन दिया।

तेरहवीं सदी में तुगलक वंशीय शासकों ने शिक्षा के विकास में अभूतपूर्व योगदान दिया मुहम्मद तुगलक फिरोज तुगलक के राज्याश्रय में कई विद्वानों ने साहित्य का विकास किया प्रत्येक मस्जिद के साथ मकतब बनाये गये, अन्य भाषा साहित्य का फारसी में अनुवाद किया गया। सभा जाति सम्प्रदाय के लोगों को शिक्षा के अवसर दिये जाने लगे। उसके बाद लोदी वंश के शासकों ने अपने विद्या प्रेमी होने का प्रमाण दिया।

लेकिन मुगलों की भारतीय विजय ने शिक्षा में आये ठहराव को गति दी **बाबर से लेकर औरंगजेब तक देश के कोने–कोन में शिक्षा का प्रकाश पहुँचा**। सुदृढ़ शिक्षा नीति का निर्माण हुआ बाबर ने अरबी, फारसी, तुर्की भाषा के विकास में योगदान दिया उसने शोहरते आम विभाग की स्थापना की। हुमायूँ को पुसतकालय से विशेष प्रेम था, हुमायूँ के मकबरे से सम्वद्ध एक मदरसा भी था। अकबर के सिंहासनारूढ़ के साथ ही शिक्षा ने एक नवीन युग में प्रवेश किया उसने आगरा को शिक्षा का मुख्य केन्द्र बनाया। उसने आवास सहित मदरसों का निर्माण करवाया उसमें गठित, नक्षत्र विद्या, कृषि, प्रशासन नीतिशास्त्र व्याकरण भौतिक का ज्ञान दिया जाता था। अकबर की धार्मिक सहिष्णुता ने हिन्दू व मुसलमान को एक साथ पढ़ने की व्यवस्था की, उसने कारखानों की व्यवस्था की जहाँ प्राविधिक/व्यवसायिक प्रशिक्षण दिया जाता था।

इन्हें भी जाने–मुस्लिम शिक्षा के केन्द्र आगरा, दिल्ली, जौनपुर, बीदर, लाहौर, अजमेर, लखनऊ, बीजापुर, गोलकुण्ड, मालवा, जालन्धर, मुल्तान आदि थे।

शिक्षा का अर्थ

मुस्लिम सभ्यता संस्कृति के अनुसार दी जाने वाली शिक्षा को ही मुस्लिम शिक्षा कहते हैं।

उद्देश्य

मध्यकालीन शिक्षा का प्रमुख लक्ष्य इस्लाम धर्म व संस्कृति का प्रचार करना था। वे अपने धर्म के प्रचार को सवाब मानते थे और उनका विश्वास था कि धर्म का प्रचार करने वाला ही गाजी होता है मुस्लिम शासकों ने शिक्षा को धर्म प्रचार का साधन माना ताकि सामान्य जनता मुस्लिम कानूनों, सिद्धान्तों, प्रथाओं के बारे में जान सके।

Downloaded From www.dietmathura.org

- संसारिक या भौतिक ऐश्वर्य की प्राप्ति थी। इन लोगों का मानना था जीवन में सुख–सुविधा प्राप्त करने के लिए पढ़ना–लिखना बेहद जरूरी है। इस्लामी शिक्षा में रूचि उत्पन्न करने के लिए उन्हें उच्च पद, सम्मान तथा अन्य प्रलोभन दिये जाते थे। जो व्यक्ति शिक्षित होते थे, उन्हें मुसलमान शासक सिपहसालार, काज़ी या वजीर इत्यादि के पद पर नियुक्त कर देते थे। इस लोभ के वशीभूत होकर मुसलमानों के अतिरिक्त हिन्दुओं ने भी मुस्लिम शिक्षा ग्रहण करना प्रारम्भ कर दिया।
- मुस्लिम या मध्यकालीन शिक्षा का एक अन्य उद्देश्य इस्लाम के अनुयायियों में ज्ञान के प्रकाश का विस्तार करना था। पैगम्बर साहब ने ज्ञान को अमृत बताया और प्रत्येक मुसलमान बच्चे से ज्ञानार्जन करने की इच्छा व्यक्त की।
- इस्लाम धर्म के भारत आगमन का प्रारम्भिक कारण तो आर्थिक था किन्तु बाद में सम्राज्यवादी हो गया। शासन के सुदृढ़ बनाने के लिए योग्य व कुशलतम लोगों की आवश्यकता थी और शिक्षा के प्रचार व प्रसार द्वारा ही इस राजनैतिक उद्देश्य की पूर्ति हो सकती थी। मुहम्मद तुगलक एवं अकबर के द्वारा किये गये शैक्षिक प्रयास राजनैतिक व सामाजिक उद्देश्यों से प्रेरित थे।

विशेषताएँ

- शिक्षा मौखिक एवं व्यक्तिगत थी।
- शिक्षा निःशुल्क थी।
- शिक्षा व्यवस्था राज्य के संरक्षण में की जाती थी।
- प्रारम्भिक शिक्षा आयु वर्ग के अनुरूप थी।
- शिक्षण कार्य परम्परागत विधियों के आधार पर किया जाता था।
- शिक्षा का माध्यम अरबी भाषा थी उच्च स्तर पर फारसी भाषा का प्रयोग होने लगा।
- शिक्षा में अध्यात्मिक मूल्यों के स्थान पर मानवीय मूल्यों को महत्व दिया जाता था।

मुस्लिम कालीन शिक्षा की एक प्रमुख विशेषता **विशिष्ट शिक्षा** का आयोजन था जिसका सरल शब्दों में विवेचन इस प्रकार है–

स्त्री शिक्षा

इस्लाम धर्म में स्त्री शिक्षा का दायरा अत्यन्त व्यापक न था। महिलाओं के लिए शिक्षा के दरवाजे जनसाधारण तक तो कम थे केवल शाही घराने व कुलीन वर्गों की बालिकाएं शिक्षा सुविधा का लाभ उठा पाती थी। वे सभी प्रारम्भिक शिक्षा मकतब में प्राप्त करती थी। मुस्लिम शासक अपने यहां हरम में बालिका शिक्षा को व्यवस्था करते थे। तुर्क अफगान काल में शहजादियों को व्यक्तिगत रूप से शिक्षा देने का प्रबन्ध था व्यक्तिगत शिक्षा का ही परिणाम था कि भारतीय इतिहास को रजिया, गुलबदन बेगम, जहाँआरा, जैबुन्विका जैसी विदुषी महिलाएं प्राप्त हो सकी।

> बाबर की पुत्री गुलबदन बेगम ने ''हुमायूँनामा'' लिखा जो एक श्रेष्ठ ऐतिहासिक ग्रन्थ कहा जाता है।

Downloaded From www.dietmathura.org

फरिश्ता के मत में मदरसों/मकतब में स्त्रियाँ के लिए नृत्य संगीत, सीना बुनना, मखमल, बढई, सुनार, लुहार का कार्य तथा युद्ध कला की शिक्षा दी जाती थी।

व्यवसायिक शिक्षा

मुस्लिम काल में शिक्षा को उत्पादक समझा गया इसी दृष्टिकोण से छात्रोंको ललित, हस्तकला, चित्रकला आभूषण/रथ बनाने का काम आदि को पाठ्यक्रम का अभिन्न अंग बनाया गया।

ललित कलाओं की शिक्षा

मुस्लिम शासकों को कला से बेहद लगाव था, उन्होंने संगीत, चित्रकला एवं स्थापत्य कला पर अन्य विषयों की अपेक्षा ज्यादा ध्यान दिया उनके संरक्षण में निर्मित इमारतें आज भी भारत वर्ष के लिए गौरव की बात है। ललित कलाओं का शिक्षण व्यक्तिगत ढंग से तथा उच्चस्तर पर दिया जाता था। प्राथमिक स्तर पर कला के बारे में समान्य कौशलों की जानकारी दी जाती थी।

सैनिक शिक्षा

इस युग में चूंकि शिक्षा का अन्य लक्ष्य शासन का सुदृढ़ीकरण करना था इसलिए छात्रों को अश्वारोहण भाला, तीर, तलवार चलाना दुर्ग का डेरा डालना आदि विषय सैनिक शिक्षा के पाठ्यक्रम में शामिल थे।

आप स्वयं सोचे–
इस्लामी शिक्षा में विशिष्ट शिक्षा ने प्रशासन को मजबूत बनाने में क्या भूमिका निभायी?

शिक्षा व्यवस्था

प्रत्येक समय की शिक्षा व्यवस्था अपने उद्देश्यों की पूर्ति से सम्बद्ध होती है। मध्यकालीन शिक्षा भी इस्लाम धर्म के अनुसार संगठित थी जिसका वर्णन निम्नवत् है–

मकतब शब्द **'कुतुब'** से बना है जिसका अर्थ है 'उसने लिखा'।

- शिक्षा का स्थान इस समय शिक्षा मकतब एवं मदरसे स्थान में सम्पन्न होती थी। मकतब प्राथमिक शिक्षा के केन्द्र थे। जहाँ लिखना सिखाया जाता था। मकतब किसी न किसी मस्जिद से सम्बद्ध होते है। मदरसे उच्च शिक्षा से सम्बन्ध थे।

प्रवेश की आयु

मकतब में प्रवेश की आयु 4–5 वर्ष के मध्य की होती थी। इसमें प्रवेश करने से पहले प्रत्येक छात्र का उपनयन संस्कार की तरह विसमिल्लाह संस्कार किया जाता था। इसमें बालक चार वर्ष चार माह चार दिन का होता था। कुरान की भूमिका तथा 55 वां 51 वां अध्याय सामने रखकर कुछ आयतों का पाठ किया जाता था। बालक उनको दोहराता था। यदि वह ठीक से नहीं दोहरा पाता था। तो 'विस्मिल्लाह' कह देना ही पर्याप्त समझा जाता था।

Downloaded From www.dietmathura.org

मकतबों में पड़ोसी क्षेत्रों से जो छात्र अध्ययन करने के लिए आते थे उनके रहने खाने–पीने की व्यवस्था मदरसों से सम्बद्ध छात्रावासों में की जाती थी। वहाँ सामर्थ्य के अनुसार निःशुल्क पाठ्यसामग्री भी वितरित की जाती थी।

प्रशिक्षु चर्चा करे इस्लामी शिक्षा व्यवस्था वैदिक शिक्षा व्यवस्था से साम्य रखती थी। यदि हाँ तो कौन–कौन सी बातें सामान थी?

पाठ्यक्रम

मकबतों में दी जाने वाली शिक्षा का पाठ्यक्रम बच्चों के आयु वर्ग के अनुसार था। प्रारम्भ में बच्चों को तब लिखना, पढ़ना, गणना करना सिखाया जाता था। साहित्य में धार्मिक ग्रन्थ कुरान का अध्ययन करना सीखाया जाता था। नैतिक शिक्षा देने के लिए गुलिस्ताँ एवं बोस्ताँ समझाकर पढ़ाये जाते थे। इसके अतिरिक्त पैगम्बरों की कथायें मुस्लिम फकीरों की कहानियाँ तथा फारसी कवियों की कविताओं का ज्ञान कराया जाता था। साथ ही व्यावहारिक जीवन के लिए उपयोगी बातों का ज्ञान भी कराया जाता था। **शिक्षा अरबी भाषा में होती थी।**

शिक्षण विधि

प्राथमिक शिक्षा मौखिक दी जाती थी। रटने की विधा पर जोर दिया जाता था शिक्षक व्याख्यान विधि से शिक्षण करते थे। बालक कलमा को सुनकर रटते थे और कुरान की आयतों/सुरा को कंठस्थ करते थे। बोल–बोलकर पहाड़ा याद करते थे।

शिक्षण समय व सत्र

मकतबों में प्रातः काल से अपराह्न के समय शिक्षा का कार्यक्रम चलता था। उच्च स्तर पर शिक्षण काल सांयकाल तक निर्धारित था।

परीक्षा प्रणाली

मुस्लिम कालीन शिक्षा में भी वैदिक शिक्षा प्रणाली की ही भाँति परीक्षा की कोई विकसित नहीं हुई थी। शिक्षक अपने संतोष के आधार पर छात्रों को एक कक्षा से दूसरी कक्षा में प्रोन्नत करते थे। शिक्षा की समाप्ति पर भी किसी प्रकार का प्रमाण पत्र नहीं दिया जाता था।

गुरु शिष्य सम्बन्ध

इस्लामी संस्कृति में भी यह माना जाता था कि उस्ताद की मेहरबानी के बिना सच्चा ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता है। छात्र शिक्षक का आदर– सम्मान करते थे तथा उनकी आज्ञा का पालन करते थे। गुरु शिष्य को पुत्रावत् व्यवहार करते थे। व्यवसायिक शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रों का अपने गुरु से और भी निकट सम्बन्ध होता था क्योंकि अपने शिल्प में क्षमता प्राप्त करने के लिए गुरु के पास निरन्तर रहना आवश्यक था। हालांकि मुगलकाल के उतरार्द्ध में गुरु–शिष्य सम्बन्धों की आदर्श परम्परा का ह्रास होने लगा था।

औरंगजेब ने अपने गुरु मुल्लाशाह सालेह को अज्ञातवास की आज्ञा दी थी।

Downloaded From www.dietmathura.org

अनुशासन एवं दण्ड

नैतिक शिक्षा मुस्लिम कालीन शिक्षा का अभिन्न अंग थी अतएव छात्र अनुशासित होते थे। छात्रों के लिए शिक्षकगण श्रद्धा के पात्र थे। अतएव उनमें स्वाभाविक रूप से विनयशीलता तथा आत्म अनुशासन की भावना जागृत होती थी। उद्दण्ड बच्चों के प्रति ही सख्ती बरती जाती थी। शिक्षक गण भी अपने कार्यों से छात्रों के समक्ष आदर्श कायम करते थे। जिसका अनुसरण करके छात्र चरित्रवान एवं आदर्श नागरिक बन सकें।

समीक्षा

इस प्रकार स्पष्ट है कि इस्लामी शिक्षा गहन धार्मिक सिद्धान्तों पर आधारित थी, जिसमें व्यक्तित्व के सर्व तो मुखी विकास पर बल दिया जाता था।

अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न दिए गए विकल्पों में से सही का चुनाव करिये।

1. मुस्लिम कालीन शिक्षा का उद्देश्य था–

(क) इस्लाम धर्म का प्रचार (ख) भौतिक एश्वर्य की प्राप्ति

(ग) ज्ञान की प्राप्ति (घ) उपर्युक्त सभी

2. विस्मिल्लाह संस्कार होता था–

(क) 4 माह 2 दिन पर (ख) 3 माह 3 दिन पर (ग) प्र4 माह 4 दिन पर (घ) 1 माह 2 दिन पर

अतिलघुत्तरीय प्रश्न

(क) मकतब शब्द किस भाषा के शब्द से बना है। और उसका अर्थ क्या हैं ?

(ख) 'मुस्लिम शिक्षा के दो प्रमुख केन्द्रों के नाम बताइये ?

लद्युत्तरीय प्रश्न

(क) मुस्लिम कालीन शिक्षा में गुरू–शिष्य सम्बन्ध कैसे थे ?

(ख) मुस्लिम युग में विशिष्ट शिक्षा से क्या आशय था?

दीर्घउत्तरीय प्रश्न

वैदिक कालीन शिक्षा एवं मुस्लिम युगीन शिक्षा में क्या–क्या समानताएं थी और भिन्नता किन बिन्दुओं पर थी चर्चा करें।

प्रॉजेक्ट कार्य

आप आस–पास के किसी मकतब का भ्रमण करें और वहाँ के शिक्षण कार्य के बारे में एक विडियोक्लिप तैयार करें और कक्षा में प्रदर्शित करें।

Downloaded From www.dietmathura.org

आधुनिक कालीन शिक्षा

- स्वतन्त्रता के पूर्व
- ईसाई निशनरी के प्रयास
- 1813 का आज्ञा–पत्र
- 1833 का आज्ञा–पत्र
- आकलैण्ड का घोषणा पत्र
- वुड का घोषणा पत्र
- हण्टर कमीशन, हर्टाग समिति, बेसिक शिक्षा – मूल्यांकन
- स्वतन्त्रता के पश्चात्
- विश्वविद्यालय आयोग
- मुदालियर कमीशन
- कोठारी कमीशन
- नई शिक्षा नीति 1986
- कार्य योजना– 1992
- वर्तमान योजनाओं का संक्षिप्त अवलोकन
- मूल्यांकन एवं सुझाव

Downloaded From **www.dietmathura.org**

शिक्षा चूंकि सामाजिक प्रक्रिया है, समाज में होने वाले परिवर्तनों से शिक्षा का अप्रभावित रहना असंभव है, अठारहवी सदी में भारत में विभिन्न संस्कृतियों के लोगों का आगमन हुआ जिन्होंने अपने–अपने ढंग से शिक्षा के विकास क्रम को आगे बढ़ाया। 15 वीं से 18 वीं सदी के दौरान पुर्तगाली फ्रांसीसी, अँग्रेजों आदि यूरोपवासियों आने का मुख्य मकसद व्यापार करना एवं इसाई धर्म का प्रचार था, अपने इस लक्ष्य को पूरा करने के लिये उन लोगों ने शिक्षा को ही माध्यम बनाया।

सर्वप्रथम ईसाई मिशनरियों ने मिशनरी स्कूल खोलकर भारत में आधुनिक शिक्षा का सूत्रपात किया। उसके बाद ईस्टइण्डिया कम्पनी के अधिकारियों ने महारानी के आज्ञापत्र से तंजौर, कलकत्ता, कानपुर, मद्रास बम्बई में दानाश्रित विद्यालय खोले जहाँ निर्धन वर्गों को निःशुल्क शिक्षा दी जाती थी।

इन्हें भी जाने

- **वारेनहेस्टिग्स ने कलकत्ता में मदरसा तथा लार्ड वेलेजली ने फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना करवायी।**
- **चार्ल्स ग्रांट को आधुनिक शिक्षा का जन्मदाता माना जाता है।**
- **पहली विचार धारा के समर्थक लार्ड मैकाले तथा दूसरी के लार्ड हेस्टिंग्जव मिन्टो, प्रिसेप मुनरो, एलफिन्सटन।**

1813 के आज्ञापत्र ने भारत में शैक्षिक विकास का नवीन दिशा दी जिसकी **मुख्य बातें** इस प्रकार हैं–

भारतीय साहित्य एवं विज्ञान की प्रभावित के लिए प्रतिवर्ष एक लाख रु0 की धनराशि व्यय के लिए निर्धारित की। 1813 के आज्ञापत्र के तहत दी गई धनराशि के व्यय को लेकर दो विचार धाराएं सामने आयीं–

एक पाशचात्यवादी विचार धारा के अनुसार भारत में यूरोपीय ज्ञान व सभ्यता का प्रचार अँग्रेजी माध्यम से किया जाय। दूसरी प्राच्यवादी विचारधारा के अनुसार भारतीय साहित्य को मातृभाषा/क्षेत्रीय भाषाओं में पढ़ाया जाय।

विचार धाराओं से उपजा विवाद प्राच्य –पाशचात्य विवाद कहलाया। उनके अपने–अपने तर्क थे। प्राच्यवादी कहा करते थे कि भारतीय संस्कृति, दर्शन, धर्म भारतीय भाषाओं में सुरक्षित हैं अतएवं भारत में अपना सम्राज्य सुरक्षित खोज में विरोध कोई खतरा नहीं होगा।

पाशचात्य वादी का कहना था कि भारतीयों का उद्धार पाशचात्य संस्कृति द्वारा ही सम्भव है इसके द्वारा हम ऐसे लोगों का वर्ग तैयार कर लेगें। जो मन से अंग्रेज तथा तन से भारतीय होगें और साम्राज्य विस्तार में मदद मिलेगा।

लार्ड मैकाले ने निस्यन्दन सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। उसका कथन था– जनसमूह में शिक्षा उच्च वर्ग से छनकर पहुँच। बूँद–बूँद करके लाभदायक शिक्षा नीचे की ओर बहे जिससे कि वह कुछ समय में चौड़ी व विशाल धारा में बदल कर सूखे क्षेत्रों का सिंचन करें।

Downloaded From **www.dietmathura.org**

1833 का आज्ञापत्र– मुख्य बातें इस प्रकार है

- शिक्षा अनुदान एक लाख से बढ़ाकर 10 लाख कर दिया गया।
- कोई भी भारतवासी तथा सम्राट का कोई भी स्वाभाविक प्रजाजन अपने धर्म, जन्म स्थान, वर्ग तथा वर्ण के आधार पर किसी भी स्थान तथा पद को प्राप्त करने से न रोका जाये।
- गवर्नर जनरल की काउसिल में एक कानूनी सदस्य बढ़ा दिया गया। लार्ड मैकाले प्रथम कानूनी सदस्य बना।

मैकाले के आगमन से प्राच्य पाशचात्य विवाद ने और गम्भीर रूप धारण कर लिया। उसके द्वारा प्रस्तुत घोषणा पत्र की मुख्य बातें इस प्रकार थी। उसका मकसद ऐसे नागरिकों का निर्माण करना चाहता था जो कि रक्त तथा वर्ण में भारतीय हो, किन्तु रुचि विचार नैतिकता तथा मानसिक रूप में अंग्रेज हों।

इन्हें भी जानें– मैकाले ने अंग्रेजी की श्रेष्ठता बताते हुए कहा– एक अच्छे यूरोपीय प्रस्तकालय की केवल एक अलमारी भारत तथा अरब के सम्पूर्ण साहित्य के बराबर होगी।

- उसके मत में साहित्य शब्द का अर्थ अंग्रेजी साहित्य से है न कि संस्कृत, अरबी, फारसी के साहित्य से।
- और भारतीय विद्वान का मतलब ऐसे विद्वान से था जो लॉक के दर्शन एवं मिल्टन की कविता से परिचित हो।
- देशी भाषाएं शिक्षा के माध्यम के रूप में उपयुक्त नहीं है उसने लिखा कि भारत में प्रचलित देशी भाषाओं में साहित्यिक एवं वैज्ञानिक ज्ञान कोब का अभाव है वे अविकसित एवं गँवारू हैं।
- केवल कानूनों की जानकारी के लिए संस्कृत अरबी, फारसी के शिक्षालयों पर धन व्यय करना मूर्खता है।
- प्रगतिशील सुधारक एवं अंग्रेजी भाषा के समर्थक लार्ड विलियम बेंटिक ने मैकाले घोषणापत्र को स्वीकृति प्रदान की। उसके मत में शिक्षा इस प्रकार होनी चाहिए।
- प्राच्य शिक्षालयों का उन्मूलन नहीं किया जायेगा।
- यूरोपीय साहित्य एवं विज्ञान का प्रचार करने के लिए शिक्षा सम्बन्धी धनराशि व्यय की जायेगी।
- भविष्य में प्राच्य विद्या सम्बन्धी पुस्तकों का मुद्रण तथा प्रकाशन नहीं होगा।
- प्रशिक्षु चर्चा करें– मैकाले की शिक्षा नीति ने भारतीय भाषाओं को किस हद तक प्रभावित किया?

आकलैण्ड का घोषणा पत्र 1839

- उसने प्राच्य–पाशचात्य विवाद को समाप्त कर दिया ।
- उसने प्राच्यवादियों को शिक्षा पर व्यय हेतु धनराशि में वृद्धि कर दी।
- योग्य अध्यापकों को उचित वेतन दिया जाये।
- संस्कृत व अरबी भाषा पर व्यय होने के बाद जो धनराशि बचे वह अँग्रेजी पर खर्च की जाये।

Downloaded From www.dietmathura.org

वुड का षोषणापत्र

सन् 1854 में बोर्ड आफ कन्ट्रोल के प्रधान के रूप में चार्ल्स वुड ने भारतीयों की शिक्षा शैक्षिक आवश्यकताओं को ध्यान रखकर शिक्षा नीति को बनाया। अपनी नवीन लक्ष्यों के कारण इसे **शिक्षा का मैग्नाकार्टा** कहा जाता है।

मुख्य बाते

- शिक्षा का मकसद अंग्रेजी साहित्य एवं पाशचात्य ज्ञान का प्रसार करना था।
- शिक्षा अंग्रेजी एवं देशी भाषाओं के माध्यम से दी जानी चाहिए।
- पाठ्यक्रम में भारतीय साहित्य तथा संस्कृति का भी आवश्यक स्थान दिया जाय।
- शिक्षकों के लिए प्रशिक्षण की व्यवस्था हो।
- विद्यालयी प्रबन्ध के लिए सहायता अनुदान मिलना चाहिए।
- उच्च शिक्षा के लिए विश्वविद्यालय स्थापित हों।
- व्यवसायिक, स्त्री शिक्षा को प्रोत्साहन दिया जाय।
- जन शिक्षा विभाग की स्थापना की जाय।

प्रशिक्षु चर्चा करें कि शिक्षा के वुड डिस्पैच में नवीन बातें क्या थी ?

हण्टर कमीशन

लार्ड रिपन ने शैक्षिक सुधारों के मूल्यांकन के लिए प्रथम भारतीय शिक्षा आयोग की नियुक्ति की। इसे प्राथमिक शिक्षा पर प्रथम आयोग भी कहा जाता है, इसके अध्यक्ष विलियम हण्टर थे।

मुख्य बातें

- प्राथमिक शिक्षा व्यवहारिक हो।
- प्राथमिक शिक्षा देशी भाषा में हो।
- शैक्षिक रूप से पिछड़े इलाकों में शिक्षा विभाग स्थापित हो।

हण्टर का मत था–देशी पाठशालाएँ राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली में महत्वपूर्ण स्थान ग्रहण कर सकती हैं।

- धार्मिक शिक्षा को प्रोत्साहन न दिया जाय।
- बालिकाओं के लिए सरल पाठ्यक्रम व निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था हो।
- अनुदान सहायता छात्र–शिक्षक की संख्या व आवश्यकता के अनुपात में दिया जाय।
- देशी शिक्षा के पाठ्यक्रम में परिवर्तन न करके पूर्ववत चलने दिया जाय।

गोखले विधेयक 1911

✯ राष्ट्रीय शिक्षा के प्रति सरकार की निष्क्रियता को देखते हुए सर्वश्री गोपाल कृष्ण गोखले ने 1911 में एक ऐतिहासिक विधेयक प्रस्तुत किया।

Downloaded From www.dietmathura.org

मुख्य विशेषताएँ

- प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य की जाय।
- कम मासिक आय वाले माता–पिता के बच्चों से शुल्क न लिया जाये।
- स्थानीय संस्थाएं ही प्राथमिक शिक्षा का कुशलतापूर्वक संचालन कर सकती है।
- स्थानीय संस्थाएं प्राथमिक शिक्षा के व्यय के लिए 'कर' लगा सकती हैं।
- इस प्रकार की शिक्षा व्यवस्था क्रमशः बालकों फिर बलिकाओं के लिए हो।
- सरकार गोखले के विचार को समय से पहले मानती थी इसीलिए इस विधेयक को अस्वीकृत कर दिया गा।

अब करने की बारी

- प्रशिक्षु चर्चा करें– क्या गोखले विधेयक वर्तमान अनिवार्य व निःशुल्क शिक्षा अधिकार अधिनियम का बीजारोपण किया या नही।

हर्टाग समिति 1929– इसके अध्यक्ष सर फिलिप हर्टाग थे। उन्होंने निम्नलिखित बातों की अनुशंसा की–

- देश में प्राथमिक शिक्षा पर कार्य तो हुआ पर प्रगति को सन्तोष जनक नहीं कहा जा सका।
- अपव्यय व अवरोधन प्राथमिक शिक्षा की प्रमुख समस्या है।
- प्राथमिक शिक्षा कम से कम चार वर्ष की हो।
- पाठ्यक्रम को जीवनोपयोगी बनाया जाय।
- विद्यालय सत्र व अवकाश स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप हो।
- शिक्षकों के वेतन तथा योग्यताओं में सुधार की जरूरत हो।
- माध्यमिक व उच्च शिक्षा गुणात्मक हो।
- उच्चस्तर पर पुस्तकालय व व्यवसायिक शिक्षा की समुचित व्यवस्था हो।

बेसिक शिक्षा

महात्मा गाँधी ने भारतीय सभ्यता एवं मानव की मूलभूत आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर जिस योजना का प्रारूप तैयार किया। उसे बेसिक शिक्षा या बुनियादी शिक्षा कहा जाता है 22 अक्टूबर, 1937 को वर्धा शिक्षा सम्मेलन में बेसिक शिक्षा की आधार शिला रखी गई जिसकी मुख्य बातें इस प्रकार थी–

- शिक्षा 7 से 14 वर्ष के बच्चों के लिए अनिवार्य एवं निःशुल्क हो।

इन्हें भी जाने–सैडलर कमीशन, सार्जेण्ट योजना तथा 1902 का विश्वविद्यालय आयोग का सम्बन्ध उच्च शिक्षा से था।

- शिक्षा मातृभाषा में दी जाय।
- शिक्षा का जीवन से सम्बन्ध हो।
- शिक्षा हस्तकला पर आधारित हो ताकि बच्चों में श्रम के प्रति आदर भाव जागृत हो।

Downloaded From www.dietmathura.org

- पाठ्यक्रम में गठित, सामाजिक विषय, कृषि, कताई–बुनाई विज्ञान व भारतीय भाषा व कला शामिल हो।
- शिक्षण क्रियात्मक एवं सह–सम्बन्ध विधि पर आधारित हो।

महात्मा गाँधी– यदि मुझसे कोई पूछे कि शिक्षा का उद्‌देश्य क्या है तो मैं उत्तर दूँगा कि चरित्र का विकास।

प्रशिक्षु– चर्चा करेंकि बेसिक शिक्षा को बेसिक या बुनियादी शिक्षा क्यों कहा गया–

मूल्यांकन– उपर्युक्त चर्चा से हमने जाना कि ब्रिटिश प्रशासन में शिक्षा की जिस रूप में प्रगति हुई उससे निःसन्देह भारतीय समाज की संकीर्णता दूर हुई। भारतीय जन पाश्चात्य ज्ञान व संस्कृति से परिचित हुए।

- साथ ही विदेशी वर्ग भी भारतीय साहित्य व संस्कृति के अध्ययन एवं अनुकरण की ओर अग्रसर हुआ।
- अंग्रेजो के आगमन से भारतीय भाषाओं के विकास को गति मिली।
- अंग्रेजो ने प्रेस, चलचित्र व रेडियों, रेलयान के विकास पर ध्यान दिया जिससे शैक्षिक प्रसार को गति मिली।
- राष्ट्रीय एवं लोकतंत्र की भावना का जागरण हुआ।

Downloaded From www.dietmathura.org

अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. भारत में आधुनिक शिक्षा का जन्मदाता कहा जाता है।

(क) क्लाइव (ख) बेंटिक (ग) कार्नवालिस (घ) कोई नहीं।

2. छनाई का सिद्धान्त प्रतिपादित किया था।

(क) आकलैण्ड (ख) एडमस्मिथ (ग) मैकाले (घ)न्यूटन

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

1. आधुनिक शिक्षा का अधिकार पत्र किसे कहा जाता है?

2. प्राच्यवादी विचार धारा के समर्थकों के नाम क्या थे ?

लघु उत्तरीय

1. वुड का घोषणापत्र की मुख्य बातें क्या थी ?

2. हण्टर कमीशन की सिफारिशों ने भारतीय शिक्षा को किस प्रकार प्रभावित किया ?

दीर्घ उत्तरीय

ब्रिटिश कालीन शिक्षा में भारतीय शिक्षा के विकास पर सकारात्मक व नकारात्मक प्रभावों की विवेचना करिए ?

सत्रीय कार्य

शिक्षा का छनाई सिद्धान्त का वर्तमान में प्रशासनिक सेवाओं में आंग्ल भाषा की अनिवार्यता में कोई सम्बन्ध है या नहीं प्रशिक्षु उपर्युक्त विषय पर प्रतियोगी छात्रों का साक्षात्कार करें और वीडियोक्लिप तैयार करें।

Downloaded From www.dietmathura.org

स्वतन्त्रता पश्चात प्रारम्भिक शिक्षा के प्रयास

- ❖ भूमिका
- ❖ संवैधानिक प्रावधान
- ❖ भारतीय शिक्षा आयोग
- ❖ राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968
- ❖ ड्राफ्ट राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1979
- ❖ राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986
- ❖ समीक्षा समिति 1990
- ❖ कार्यान्वयन कार्यक्रम 1992
- ❖ वर्तमान योजनाएँ
- ❖ मूल्यांकन कार्य

Downloaded From www.dietmathura.org

स्वतन्त्रता पश्चात शिक्षा के प्रयास

200 वर्षों का लम्बा अन्तराल किसी भी व्यवस्था के अस्तित्व को धूमिल कर देता है, हमारे देश भारत ने अपनी सभ्यता व संस्कृति को जिस माध्यम से सुरक्षित रखा वह थी शिक्षा। स्वतन्त्रता के बाद नवीन सरकार के समक्ष यह चुनौती थी कि शिक्षा का राष्ट्रीय स्वरूप कैसे पुनर्जीवित किया जाये।

शिक्षा के राष्ट्रीयकरण की तरफ कदम बढ़ाते हुए हमारी सरकार ने जहाँ एक ओर पंचवर्षीय योजनाओं में शिक्षा के महत्व को स्वीकारा, वहीं दूसरी तरफ भारतीय संविधान के भाग तीन में मौलिक अधिकार के रूप में तथा राज्य के नीति–निर्देशक तत्व के रूप में कतिपय प्रावधानों को शामिल करके शिक्षा को न केवल सर्वजन सुलभ बनाया वरन् उसके उल्लंघन के प्रति संरक्षण भी प्रदान किया है, जिनका वर्णन निम्नवत् है–

अनुच्छेद 21–किसी व्यक्ति को उसके प्राण या दैहिक स्वतन्त्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही वंचित किया जाएगा अन्यथा नहीं इस अनुच्छेद में मानव गरिमा के अन्तर्गत शिक्षा का अधिकार शामिल किया गया, जिसे अभी हाल में 86 वें संशोधन (2002) के द्वारा 21 क जोड़कर पूरी तरह से स्पष्ट कर दिया गया है कि –

- 6 से 14 वर्ष के आयु वर्ग के बच्चों को अनिवार्य व निःशुल्क शिक्षा का मौलिक अधिकार प्राप्त है।
- इसका उद्देश्य विशेषकर उन बच्चों को शिक्षा की मुख्य धारा से जोड़ना जो विद्यालय कभी नही गये / पढ़ाई बीच में छोड दी।
- अनुच्छेद 32 में रिट याचिकाओं के माध्यम से भाग–3 में प्रत्याभूत अधिकार के उल्लंघन हेतु न्याय की माँग का प्रावधान किया गया है।
- अनुच्छेद 28 में राज्य निधि से पूर्णतः पोषित किसी संस्था में कोई धार्मिक शिक्षा नहीं दी जाएगी।
- अनुच्छेद 29 में राज्य निधि द्वारा पोषित शैक्षिक संस्थानों में प्रवेश पर भदेभाव नहीं किया जायेगा।
- अनुच्छेद 30 अल्पसंख्यकों को अपने शैक्षिक संस्थाएं स्थापित करने प्रशासन की पूरी आजादी है।
- प्रशिक्षु चर्चा करें कि शिक्षा का अधिकार धर्मनिरपेक्षता को किस प्रकार बढ़ावा देता है ?

संवैधानिक प्रावधानों को मूर्त रूप देने के लिए सरकार ने कुछ आयोगों, समितियों की नियुक्ति की जिनका वर्णन इस प्रकार है–

भारतीय शिक्षा आयोग– इस आयोग की नियुक्ति सन् 1964 में की गई थी, इसके अध्यक्ष श्री दौलत सिंह कोठारी थे, इसलिए इसे कोठारी आयोग भी कहा जाता है, यही सर्वप्रथम आयोग था जिसने तत्कालीन शिक्षा व्यवस्था का समग्र अवलोकन किया और प्राथमिक, माध्यमिक व उच्च शिक्षा के सम्बन्ध में अपनी सिफारिशें प्रस्तुत कीं।

इस आयोग द्वारा प्राथमिक शिक्षा के उन्नयन के लिए की गई सिफारिशें की मुख्य बातें इस प्रकार हैं–

- शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर शिक्षा का पाँच लक्ष्य अवश्य होना चाहिए–

Downloaded From www.dietmathura.org

1. शिक्षा को उत्पादकता से जोड़ना।

2. शिक्षा का आधार लोकतांत्रिक हो।

3. शिक्षा द्वारा राष्ट्रीय एकता कायम हो।

4. शिक्षा द्वारा सामाजिक व अध्यात्मिक मूल्यों का विकास।

5. शिक्षा द्वारा मानवीय मूल्यों को बढ़ावा दिया जाय।

- सम्पूर्ण देश में एक समान शैक्षिक संरचना हो सामान्य शिक्षा दस वर्षीय हो जिसका वर्गीकरण इस प्रकार हो–
- 1 से 3 वर्ष की पूर्व प्राथमिक शिक्षा
- 4 या 5 वर्ष की निम्न प्राथमिक शिक्षा
- 3 वर्ष की उच्च प्राथमिक शिक्षा
- 2 या 3 वर्ष की माध्यमिक शिक्षा
- 2 वर्ष की उच्चतर माध्यमिक शिक्षा
- शिक्षा का प्राथमिक स्तर की मूल है, अतएव इसमें गुणात्मक प्रगति का ध्यान रखा जाय।
- शिक्षक ही बालक का सच्चा मार्ग दर्शक है, अतएव उसकी सेवा शर्तो व वेतन दशा में समयानुसार परिवर्तन जरूरी है। शिक्षक प्रशिक्षण की व्यवस्था हो।
- शैक्षिक अवसरों की समानता के क्रम में प्राथमिक शिक्षा निःशुल्क हो, निर्धन छात्रों को शिक्षण सामग्री निःशुल्क मिले, पुस्तक बैंको की स्थापना की जाय।
- प्रोत्साहन रूप में छात्रों को छात्रवृतियाँ दी जाएँ।
- विद्यालयी स्तर पर अपव्यय अवरोधन को रोकने के लिए प्रयास हो।
- निम्न स्तर पर पाठ्यक्रम सरल व औपचारिक हो उच्च प्राथमिक स्तर पर दो भाषाएँ, गणित, विज्ञान, सामाजिक अध्ययन तथा कला मुख्य विषय होने चाहिए।
- विद्यालय प्रबन्ध प्रणाली का विकेन्द्रीकरण हो।
- बालकों को रूचि, योग्यता को ध्यान में रखकर शिक्षण विधियाँ अपनाई जाएं।
- शिक्षा के माध्यम के रूप में त्रिभाषा सूत्र को लागू किया जाए।
- उपर्युक्त वर्णन से हमने जाना कि कोठारी आयोग की सिफारिशें देश की आवश्यकताओं एवं आकांक्षाओं के अनुरूप थी।

ध्यान देने योग्य बाते

सन् 1948 में डॉ0 राधाकृष्णन की अध्यक्षता में गठित विश्वविद्यालय आयोग उच्च शिक्षा से, 1952–53 में गठित मुदालियर आयोग माध्यमिक शिक्षा के सुधार से सम्बन्धित था। कोठारी आयोग की अनुशंसा पर तत्कालीन भारत सरकार ने सन् 1968 में भारत की पहली राष्ट्रीय शिक्षा नीति घोषित की जिसमें समावेशित बिन्दु इस प्रकार है–

- निःशुल्क व अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था हो।
- विद्यालय स्तर पर क्षेत्रीय भाषाएं शिक्षा का माध्यम हो।

Downloaded From www.dietmathura.org

- त्रिभाषा सूत्र का अनुपालन सुनिश्चित हो।
- कार्यानुभव शिक्षा का अभिन्न अंग हो।
- समान स्कूल पद्धति का प्रारम्भ किया जाए।
- परीक्षा प्रणाली में विश्वसनीयता व वस्तुनिष्ठता हो।
- समाजोत्पादक कार्य पाठ्यक्रम में अवश्य शामिल हो।

सन् 1979 में पुनः सरकार ने नई शिक्षा नीति ड्राफ्ट की किन्तु वह सत्ता परिवर्तन के कारण मूर्त रूप न ले सकी। सन् 1985 में तत्कालीन सरकार ने ''शिक्षा की चुनौती'' नामक दस्तावेज प्रकाशित करवाया जिस पर विस्तार से शिक्षा के सभी पहलुओं पर चर्चा हुई, ये चर्चा ही नई शिक्षा नीति 1986 का आधार बनी जिसका सार इस प्रकार हैं–

- शिक्षा का आयोजन व प्रबन्ध दीर्घकालीन परिप्रेक्ष्य में तैयार किया जाए उसे देश की विकासात्मक आवश्यकताओं से जोड़ा जाए।
- प्राथमिक शिक्षा बाल–केन्द्रित हो।
- प्रारम्भिक स्तर पर गतिविधियाँ शिक्षा का आधार हो।
- बच्चों को पढ़ाने वाले शिक्षकों एवं शिक्षा संस्थाओं को अधिक सुविधाएं दी जाएं।
- पर्यावरण संरक्षण पाठ्यक्रम में शामिल हो।
- कार्यानुभव अधिगम प्रक्रिया का अनिवार्य घटक बनें।
- छात्रों को किसी भी कक्षा में फेल न किया जाए।
- मूल्यांकन प्रक्रिया में रटने का स्थान न हो अंकों के स्थान पर ग्रेड दिए जाए।
- प्रश्न–पत्र निर्माताओं को प्रशिक्षण दिया जाए राष्ट्रीय मूल्यांकन सेवा शुरू की जाए।
- ग्रामीण, जनजातीय , पर्वतीय एवं पिछड़े इलाके के गरीब बच्चों के लिए गति निर्धारक विद्यालय खोले जाएं।
- अधिगम प्रक्रिया मूल्यों की शिक्षा से युक्त हो।
- बालक राष्ट्रीय सम्पत्ति है, इनके पौष्टिक आहार स्वास्थ्य, देखभाल के लिए पूर्व प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम चलाया जाये।
- आपरेशन ब्लैक बोर्ड के तहत प्रत्येक विद्यालय में दो कमरे, दो शिक्षक अवश्य हों।
- शिक्षकों के स्तरोन्नयन के लिए प्रयास हो जवाबदेही के मानक तैयार किए जाएं।

उपर्युक्त सिफारिशों में राष्ट्रीय आवश्यकता के आधार पर 1990 में कुछ संशोधन किए गये जिसके अध्यक्ष डॉ0 राममूर्ति जी थे जिन्होंने निम्नांकित बिन्दुओं पर विशेष बल दिया–

- सम्पूर्ण देश में + 2 स्तर को स्कूल शिक्षा के अंग के रूप में स्वीकार किया जाए।
- समानता के लिए शिक्षा
- आपरेशन ब्लैक बोर्ड को व्यापक बनाया जाए तीन कमरे एवं तीन अध्यापक की व्यवस्था हो। उच्च प्राथमिक स्तर पर विस्तृत हो।
- विद्यालय में 50 प्रतिशत अध्यापक महिला हो।
- प्राचीन भाषा संस्कृत के प्रसार पर बल हो।
- कम्प्यूटर शिक्षा प्रक्रिया का अंग।

Downloaded From **www.dietmathura.org**

- अनुसूचित जाति/जनजाति के बच्चों के नामांकन दर को बढ़ावा दिया जाये।
- शिक्षा प्राधिकरण की स्थापना हो (शिक्षक समस्याओं के शीघ्र समाधान हेतु)
- शिक्षा व्यय राष्ट्रीय आय का कम से कम 6 प्रतिशत हो।

1990 में यशपाल समिति ने पाठ्यक्रम के भारी–भरकम बोझ को कम करने का सुझाव दिया। राष्ट्रीय स्तर पर एक जैसा पाठ्यक्रम हो तथा पारम्परिक शिक्षा के स्थान पर व्यावसायिक शिक्षा का रूप दिया जाये।

कार्यान्वयन कार्यक्रम 1992 – भारत सरकार ने 23 खण्डों में क्रियान्वयन कार्यक्रम प्रस्तुत किया।

- नारी समानता के लिए शिक्षा
- अनुसूचित जाति/जनजाति तथा अन्य पिछड़े वर्गों की शिक्षा
- अल्पसंख्यकों की शिक्षा
- विकलांगों की शिक्षा
- प्रौढ़ एवं सतत् शिक्षा
- पूर्व बाल्यकाल परिचर्या एवं शिक्षा
- प्रारम्भिक शिक्षा
- माध्यमिक शिक्षा
- नवोदय विद्यालय
- व्यावसायिक शिक्षा
- उच्च शिक्षा
- मुक्त शिक्षा
- उपाधि की रोजगार से विलगता एवं मानव शक्ति नियोजन
- ग्रामीण विश्वविद्यालय एवं संस्थान
- तकनीकी एवं प्रबन्ध शिक्षा
- अनुसंधान एवं विकास
- सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य
- भाषाओं का विकास
- जनंसचार एवं शैक्षिक तकनीकी
- खेल, शारीरिक शिक्षा एवं युवा
- मूल्यांकन प्रक्रिया एवं परीक्षा सुधार
- अध्यापक एवं उनका प्रशिक्षण
- शिक्षा का प्रबन्ध

वर्तमान योजनाएं

मध्यान्ह भोजन योजना– प्राथमिक शिक्षा के लिए पोषण का राष्ट्रीय कार्यक्रम 15 अगस्त 1995 को शुरू किया गया जिसका उद्देश्य पोषण का स्तर सुधारने एवं सर्वसुलभ प्राथमिक शिक्षा को बढ़ावा देना था। इसमें बच्चों को पका भोजन दिया जाता है।

Downloaded From www.dietmathura.org

सर्व शिक्षा अभियान– यह योजना सन् 2001 में प्रारम्भ की गई जिसका लक्ष्य 6–14 वर्ष के बच्चों की प्राथमिक शिक्षा गुणवत्ता सहित पूरा करने को प्रोत्साहित करना।

जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम– यह योजना बालिकाओं अनुसूचित जाति/जनजाति शहरी वंचित बच्चों, विकलांगों के लिए विशेष सहयोग उपलबध कराना है।

नोट– इन समस्त योजनाओं के बारे में आप विस्तार से शिक्षा के नवीन प्रयास वाले अध्याय में अध्ययन करेगे।

जनशाला कार्यक्रम– इसका उद्देश्य अनुसूचित जाति के बच्चों, अल्पसंख्यक, कामकाजी बच्चों तथा विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को प्राथमिक शिक्षा देकर सार्वभौमिक प्रारम्भिक शिक्षा कार्यक्रम को समर्थन प्रदान करना है। प्राथमिक स्तर पर बालिका शिक्षा हेतु राष्ट्रीय कार्यक्रम उन क्षेत्रों में चलाया जा रहा है। जहाँ ग्रामीण बालिका साक्षरता कम है।

शिक्षा कर्मी कार्यक्रम

यह विशेषकर उन क्षेत्रों में प्राथमिक शिक्षा के सर्व भौमीकरण व गुणवत्ता में सुधार करना है जो दूर–दराज, अर्धशुष्क तथा सामानिक रूप से पिछड़े है।

कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय

अनुसूचित जाति, जनजाति, पिछड़े वर्गों व अल्पसंख्यकों की बालिकाओं के लिए दुर्गम क्षेत्रों में आवासीय सुविधा सहित शिक्षा का प्रसार करना है।

मौ0 आजाद एजूकेशन फाउडेशन

इसका मकसद शैक्षिक रूप से पिछड़ेव अल्पसंख्यकों में शिक्षा का प्रसार करना है।

मैट्रिक पूर्व छात्रवृति सन् 1977–78 से निर्धन एवं प्रातिभाशाली छात्रों को प्रोत्साहन हेतु मौट्रिक पूर्व छात्रवृत्तियाँ आंवटित की जा रही है।

देश के दुर्गम क्षेत्रों में शिक्षा की गुणवत्ता सुधार के लिए एडुसैट की भी सहायता ली जा रही है। विभिन्न सरकारों द्वारा प्राथमिक स्तर के उन्नयन के लिए किए गए प्रयासों के फलस्वरूप देश में साक्षरता दर 18.3% से 75% तक पहुँच गई है। विद्यालयों की संख्या 2 लाख से तकरीबन 8 लाख तक हो चुकी है। शिक्षक संख्या में आजादी के बाद से दस गुनी की वृद्धि हो चुकी है, बालिका शिक्षा में भी बढ़ोत्तरी दर्ज की गई है, छात्र संख्या 6 करोड़ के आस–पास है।

इस प्रकार भारत आजादी के बाद से ही शिक्षा के क्षेत्र में सतत प्रगति की ओर अग्रसर है।

Downloaded From **www.dietmathura.org**

अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न दिए गए विकल्पों में से सही का चुनाव करिएं।

1. भारत में पहली राष्ट्रीय शिक्षा नीति की घोषणा की गई–

(क) सन् 1975 में (ख) सन् 1968 में (ग) सन् 1966 में (घ) सन् 1966 में

2. अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा व्यवस्था की गई–

(क) 1968 की नीति में (ख) 1986 की नीति में (ग) दोनों में (घ) दोनों में नहीं।

अतिलघुत्तरीय प्रश्न

(क) भारतीय सवंधिान के किस अनुच्छेद में शिक्षा का अधिकार शामिल किया गया है ?

(ख) सन् 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति की समीक्षा समिति की अध्यक्षता किसने की थी ?

लघुत्तरीय प्रश्न

(क) क्रियान्वयन कार्यक्रम से आप क्या समझते हैं ?

दीर्घउत्तरीय प्रश्न

कोठारी आयोग द्वारा की गई सिफारिशों में कौन से तत्व आज भी शिक्षा व्यवस्था के लिए प्रासंगिक है ?

सत्रीय कार्य

अनिवार्य एवं निःशुल्क अधिकार अधिनियम के तहत शिक्षा प्रक्रिया के क्रियान्वयन में कौन–कौन सी व्यवहारिक कठिनाइयाँ आ रही है? इसका सर्वेक्षण करके अपने अनुभवों को लिखें।

Downloaded From **www.dietmathura.org**

शैक्षिक विचारधाराएँ

आदर्शवाद

दर्शन की सबसे प्राचीनतम विचारधाराओं में आदर्शवाद का प्रमुख स्थान है। आदर्शवाद में विचारों, आदर्शो, मूल्यों, प्रत्ययों पर अत्यधिक बल देने के कारण इसे विचारवाद या प्रत्ययवाद के नाम से भी संज्ञापित किया जाता है। आदर्शवाद Idealism का हिन्दी रूपान्तर है जो दो शब्दों के योग से बना है Idea (विचार) + Ism (वाद) अर्थात् वह दार्शनिक विचारधारा जो विचारों को ही केन्द्रीय तत्व मानती है।

शिक्षण बिन्दु

- अर्थ एवं परिभाषा
- शैक्षिक निहितार्थ
- शिक्षा का अर्थ एवं परिभाषा
    - शिक्षा का उद्देश्य
    - पाठ्यक्रम
    - शिक्षण विधि
    - शिक्षक एवं शिक्षार्थी का सम्प्रत्यय
    - अनुशासन
    - विद्यालय की अवधारणा
    - उपादेयता / प्रांसगिकता

हेन्डरसन के अनुसार–''आदर्शवाद मनुष्य के आध्यात्मिक पक्ष पर बल देता है क्योंकि उनके अनुसार आध्यात्मिक मूल्य मनुष्य जीवन के अत्यन्त महत्वपूर्ण पहलू हैं।'' सीमित मन असीम मन से उत्पन्न होता है और व्यक्ति तथा संसार दोनों ही परम सत् की अभिव्यक्तियाँ है। भौतिक जगत की व्याख्या अध्यात्मिक जगत से ही की जा सकती हैं।''

जे0एस0रास के अनुसार–आदर्शवादी दर्शन के अनेक और विविध रूप है परन्तु सबका आधारभूत निचोड़ यह है कि विश्व का उपादान मन तथा आत्मा है तथा आध्यात्मिक स्वरूप ही वास्तविक सत् है।

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि आदर्शवाद वह दार्शनिक विचारधारा है जो आध्यात्मिक मूल्यों पर बल देती है तथा यह मानती है कि भौतिक सृष्टि का आधार मानसिक जगत है, जो उसे समझता है तथा अर्थ व मूल्य प्रदान करता है।

इस विचारधारा के मूलभूत उपादेय तथ्यों को जानने, समझने और उसके आत्मसातीकरण हेतु शिक्षा के विभिन्न अंगों के आलोक में इसके शैक्षिक निहितार्थ को समझने का प्रयास किया जायेगा।

शिक्षा का अर्थ

आदर्शवाद मनुष्य को ईश्वर की सर्वोत्तम रचना मानता है। मनुष्य अपने मानसिक विचारों द्वारा प्रकृति को अर्थ प्रदान करता हैं तथा अपने सांस्कृतिक, नैतिक, आध्यात्मिक कारकों से प्रकृति और सामाजिक वातावरण पर नियन्त्रण रखता है। इन सब कार्यों को सही दिशा देने में शिक्षा की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। बिना शिक्षा के मनुष्य पशुतुल्य जीवन व्यतीत करता है, किन्तु जब वह शिक्षा का सानिध्य प्राप्त कर सामाजिक आदर्शों मान्यताओं मूल्यों की जानकारी प्राप्त करता है तब वह समाज का एक उत्तम नागरिक बनकर शिक्षा से प्राप्त आदर्शों, अनुभवों को आत्मसात कर एक सुसंस्कृत व्यक्ति के

Downloaded From www.dietmathura.org

रूप में प्रतिष्ठित होता है। अतः शिक्षा मानव को परिष्कृत एवं सबल बनाकर मानवता का पाठ पढ़ाती है एवं अच्छे कार्यों की ओर उन्मुख करती हैं।

काण्ट–'' इस जगत में सफलता प्राप्त करने की योग्यता की प्राप्ति ही शिक्षा नहीं है प्रत्युत मानवता के आदर्श एवं सामाजिक जीवन की तैयारी ही शिक्षा हैं।''

फ्रोबेल–"शिक्षा मानव जीवन के सतत विकास की प्रक्रिया है जो भौतिक ज्ञान प्रदान करती है और आध्यात्मिक ज्ञान की ओर ले जाकर अन्त में ईश्वर से एक्य स्थापित कराती है।"

बटलर–"शिक्षा एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा मानव समाज के अधिक परिपक्क सदस्य कम परिपक्क सदस्यों से अधिक परिपक्वता लाने के निमित तथा उसके द्वारा मानव जीवन में सुधार लाने के लिए योगदान करने का प्रयत्न करते हैं।"

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि आदर्शवाद के अनुसार शिक्षा से आशय उस ज्ञान अनुभव एवं सद्गुण प्राप्त करने की प्रक्रिया से है जिससे मनुष्य अपने व्यक्तित्व की उन्नति करते हुए ईश्वर की प्राप्ति करने में समर्थ होता है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. *शिक्षा प्रदान तथा अर्जित करने के लिए सक्रिय प्रयास करना पड़ता है।*
2. *शिक्षा से न केवल व्यक्ति का विकास होता है अपितु मानव समाज बेहतर बनता है।*
3. *शिक्षा से व्यक्ति संस्कारी बनता है।*

शिक्षा के उद्देश्य

आदर्शवाद मानव जीवन की श्रेष्ठता को सबसे अधिक महत्व देता है। वह इस बात को मानता है कि मानव व्यक्तित्व ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ रचना हैं यही कारण है कि आदर्शवाद के अनुसार **शिक्षा का मुख्य उद्देश्य व्यक्तित्व का उत्कर्ष या आत्मानुभूति** की प्राप्ति है। व्यक्तित्व के उत्कर्ष का अर्थ है–स्व की सर्वोच्च शक्तियों या क्षमताओं की प्राप्ति। आदर्शवाद के अनुसार मनुष्य में असीम शक्तियों होती हैं अतः शिक्षा का उद्देश्य उनका पूर्ण विकास करके व्यक्तित्व का पूर्ण विकास करना आत्मानुभूति है।

आत्मानुभूति के 4 चार स्तर है जिन पर चढ़कर मनुष्य आत्मानुभूति करता है–

1. शारीरिक स्व का विकास– अर्थात शारीरिक शक्तियों का विकास करना।
2. सामाजिक स्व का विकास– अर्थात सामाजिकता का विकास करना।
3. बौद्धिक स्व का विकास– अर्थात मानसिक शक्तियों का विकास करना।
4. आध्यात्मिक स्व का विकास– अर्थात आध्यात्मिकता विकास करना।

इसके अलावा आदर्शवाद के अन्तर्गत शिक्षा के अन्य उद्देश्य भी बताये गये है–

Downloaded From www.dietmathura.org

सांस्कृतिक विरासत की समृद्धि

आदर्शवाद के अनुसार शिक्षा का एक उद्देश्य सांस्कृतिक विरासत अर्थात् धर्म, कला, नैतिकता, साहित्य, गणित, विज्ञान आदि की समृद्धि है। यह मानव जाति की समान सम्पत्ति है। यह मानव जाति का उन्नति करती है।

अमर आदर्शो व मूल्यों की प्राप्ति

आदर्शवाद के अनुसार आदर्श या मूल्य तीन है–1. मानसिक (जो ज्ञात है) 2. भावात्मक (जिसका अनुभव किया जाता है) 3. सांकल्पिक (जिसका संकल्प किया जाता है। इसे ध्यान में रखकर मस्तिष्क सत्य को जानता है और असत्य से दूर रहता है, सुन्दरता का अनुभव करता है और असुन्दरता से दूर रहता है। अच्छाई का संकल्प करता है और बुराई से दूर रहता है। इस प्रकार सत्यम् शिवम् और सुन्दरम्–मानव जाति के आध्यात्मिक आदर्श है और शिक्षा का उद्देश्य बालक को इन आदर्शों को प्राप्त करने के लिए योग्य बनाना है।

पाठ्यक्रम

आदर्शवाद में पाठ्यक्रम के अन्तर्गत सूचनाओं को ज्ञान के रूप में, पुस्तकों को यन्त्र के रूप में, तथा महान विचारों को आदर्शों के रूप में पयुक्त किया जाता है। संक्षेप में आदर्शवाद पाठ्यक्रम के अन्दर, उन सभी विषयों को रखने पर बल देता है जिससे व्यक्ति सामाजिक, मानसिक, वातावरणीय परिस्थितियों सें सांमजस्य स्थापित करते हुए आध्यात्मिक मूल्यों का ज्ञान प्राप्त कर आत्मानुभूति कर सके। इस दृष्टिकोण से पाठ्यक्रम में निम्नलिखित विषयों को महत्व दिया।

सत्यं का ज्ञात कराने वाले विषय

भाषा, साहित्य, भूगोल, गणित, दर्शन, विज्ञान एवं बौद्धिक क्रियायें आदि।

शिवं का ज्ञान कराने वाले विषय

धर्म आध्यात्मशास्त्र, नीतिशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, समाजसेवा, मानवसेवा से सम्बन्धित क्रियाये, शारीरिक क्रियायें, स्वास्थ्य सेवा से सम्बन्धित क्रियायें, सैनिक शिक्षा, उद्योग आदि।

सुन्दरं का ज्ञान कराने वाले विषय

कविता, संगीत, कला कौशल, निर्माण रचना सम्बन्धी क्रियायें, सफाई सुरक्षा की क्रियाएँ आदि।

आदर्शवादी विचारक रॉस के अनुसार पाठ्यक्रम का स्वरूप इस प्रकार होना चाहिए–

Downloaded From www.dietmathura.org

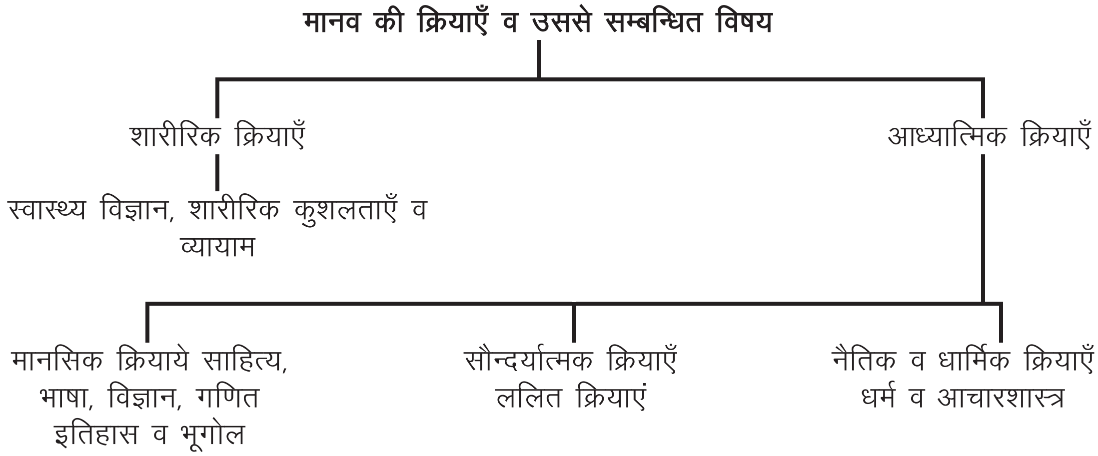

शिक्षण विधियाँ

आदर्शवादियों का विश्वास है कि यदि हमारे लक्ष्य स्पष्ट और निश्चित है तो हम बालकों की रुचि और योग्यता के अनुसार विधि की खोज सरलता से कर सकते है। इसलिए विभिन्न आदर्शवादी विचारकों द्वारा विभिन्न शिक्षण विधियों को अपनाया गया–

सुकरात	–	प्रश्नोत्तर विधि
प्लेटो	–	संवाद विधि
अरस्तू	–	आगमन निगमन विधि
पेस्टॉलाजी	–	अभ्यास विधि, प्रशिक्षण एवं क्रिया विधि
हरबर्ट	–	निर्देशन विधि
फ्रोबेल	–	खेल विधि
हीगल	–	तर्क विधि

(आदर्शवाद–शिक्षण विधियों का सार है–क्रिया और नियमित तथा निर्देशित स्वतन्त्रता)

आदर्शवादी शिक्षण प्रक्रिया में आत्मक्रिया तथा अनुकरण पर बल देते है। उनका विचार है कि अपरिपक्व बालक अपने से बड़ों तथा साथियों के व्यवहार का अनुकरण करके सामाजिक व्यवहारों को सीखता है।

शिक्षक

आदर्शवाद शिक्षक को बहुत महत्वपूर्ण स्थान देता है। इस विचारधारा के अन्तर्गत विद्यालय की तुलना एक उद्यान से की गई है–विद्यालय बाग है, छात्र कोमल पौधा है और शिक्षक कुशल माली है। माली की अनुपस्थिति में पौधा बढेगा और अपने उचित रूप को प्राप्त करेगा। प्रत्येक पौधा अपने स्वयं के नियमों के अनुसार विकसित होगा। यह असम्भव है कि गोभी का पौधा बड़ा होकर गुलाब का पौधा बन जाए। फिर भी माली के लिए कुछ कार्य है। वह अपने कार्य में कौशल निपुण होता है। इसलिए वह

Downloaded From www.dietmathura.org

गोभी और गुलाब दोनों को उनके सर्वोत्तम रूप में विकसित कर सकता है। यही बात शिक्षक के विषय में भी लागू होती है। वह विद्यार्थियों को उनके सर्वोत्तम विकास में सहायता दे सकता है। संक्षेप में शिक्षक में निम्नलिखित गुण/योग्यता होनी चाहिए—

शिक्षक

- ईश्वर का प्रतिरूप
- विषय का ज्ञाता
- विद्यार्थियों को अभिप्रेरित करने वाला स्वाध्यायी
- शिक्षण कला में दक्ष
- छात्रों का मित्र, हितैषी, पथ पदर्शक
- जीवन कला में निपुण
- ईश्वर का प्रतिरूप
- प्रभावशाली व्यक्तित्व
- चरित्रवान

संक्षेप में प्रकृतिवाद कँटीली झाडियों से सन्तुष्ट हो जाता है किन्तु आदर्शवादी सुन्दर गुलाबों को पसन्द करता है। इसलिए शिक्षक अपने प्रयासों से छात्र को, जो अपनी प्रकृति के नियमों के अनुसार विकसित होता है, उच्चता पर पहुँचाने में सहायता देता है जिस पर वह अपने आप नहीं पहुँच सकता है।

विद्यार्थी

आदर्शवाद विद्यार्थी को केवल शरीर, इन्द्रियों तथा मस्तिष्क का बना हुआ अंगी मात्र नहीं मानता है। उनके अनुसार वह मनस या आत्मा है। वह शरीर धारी है परन्तु उसका वास्तविक स्वरूप शरीर की सीमाओं को लाँघ जाता है। वह अपूर्ण है किन्तु वह पूर्णता की ओर अग्रसर है।

> **हार्न के अनुसार—**''बालक एक परिमित व्यक्ति है जो शिक्षित होने पर अनन्त पुरूष के रूप में विकसित होता है। उसका वास्तविक उद्भव देवत्व है, उसकी प्रकृति स्वतन्त्र है तथा उसकी नियति अमरत्व है।''

आदर्शवादी शिक्षा को बालकेन्द्रित नहीं 'अपितु विचार, मूल्य, आदर्श, केन्द्रित मानते है। वे पाठ्यक्रम का निर्माण भी आदर्शो, मूल्यों के आधार पर करते है। आदर्शवादी विचारक शिक्षार्थी में निम्नलिखित गुणों का समावेश चाहते हैं—

- उच्च संकल्प शक्ति
- मूल्यों में विश्वास रखने वाला
- सद्चरित्रता

Downloaded From www.dietmathura.org

- विनयशीलता
- गुरू भक्ति
- ईश्वर में विश्वास रखने वाला
- परोपकारी
- सर्वहितकारी
- न्याय प्रिय
- सद्‌मूल्यों से युक्त
- निर्णय लेने में समर्थ

अनुशासन

आदर्शवादियों का विश्वास है कि विद्यार्थी का पूर्ण विकास तभी हो सकता है जब वह अनुशासन में रहे। अनुशासन में रहकर ही आत्मानुभूति या आध्यात्मिकता के सर्वोच्च आदर्श को प्राप्त कर सकता है। पर आदर्शवादी कठोर अनुशासन के पक्ष में नहीं है। सारांश में वे प्रभावात्मक अनुशासन के पक्ष में है। वे नियमित स्वतन्त्रता पर आधारित अनुशासन चाहते है। उनके अनुसार अनुशासन का अर्थ है–नम्रता, शिष्टता, और आज्ञाकारिता के नैतिक मूल्यों का विकास करना।

विद्यालय

आदर्शवादियों के अनुसार विद्यालय सामाजिक पुनर्निर्माण के अनुपम साधन है। सामाजिक मान्यताओं, आदर्शों, मूल्यों आदि की स्पष्ट प्रतिछाया विद्यालय में परिलक्षित होती है। अर्थात् जैसा समाज होता है, वैसा ही विद्यालय का स्वरूप होता है। इसलिए विद्यालय में उचित परिवेश का निर्माण करने हेतु आदर्शवादियों का विशेष आग्रह होता है।

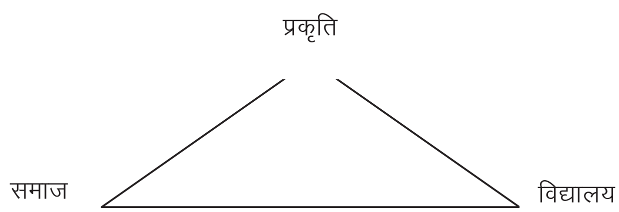

ज्ञान
9
विचार
9
क्रिया
चरित्र निर्माण

आदर्शवाद (हार्न) के अनुसार– विद्यालय का मुख्य कार्य समाज सुधार है। यह कार्य विद्यालय पाँच प्रकार से करता है–

Downloaded From www.dietmathura.org

1. समाज के भावी स्वरूप का निर्धारण।
2. समाज के नेतृत्व शक्ति हेतु नागरिकों का निर्माण।
3. समाज की अनुपयुक्त परम्पराओं का विरोध तथा समाज सुधार का कार्य।
4. समाज के विविध समस्याओं का वैज्ञानिक समाधान।
5. समाज को नैतिक दृष्टि से उन्नति की ओर ले जाना ।

प्रांसगिकता

मानव सभ्यता के प्रारम्भ काल से ही आदर्शवाद शिक्षा को प्रभावित करता रहा है और आज भी आदर्शवाद की प्रांसगिकता निम्नलिखित दृष्टिकोण से बनी हुई है–

- आदर्शवादी शिक्षा में बालक के व्यक्तित्व का आदर करना।
- विद्यार्थी में सत्यं शिवं सुन्दरम्, जैसे श्रेष्ठ गुणों एवं आध्यात्मिक पहलू का विकास करना।
- शिक्षा प्रक्रिया में शिक्षक की देव सदृश भूमिका को स्वीकार करना।
- आत्मानुशासन एवं आत्मचरित्र का विकास करना।
- शिक्षा के उद्देश्यों की विस्तृत व्याख्या।
- पाठ्यक्रम के अन्तर्गत नैतिकता, सद्चरित्रता, विनयशीलता एवं मानवीय मूल्यों का अवबोध कराना।

अभ्यास प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. आदर्शवाद ने शिक्षण विधियों की अपेक्षा शिक्षा के उद्देश्यों के सम्बन्ध में अधिक जोर दिया है। विवेचना कीजिए?
2. शिक्षा में आदर्शवाद के दृष्टिकोण से पाठ्यक्रम एवं शिक्षक के स्वरूप की व्याख्या कीजिए?

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. आदर्शवाद के अन्तर्गत शिक्षक शिष्य सम्बन्ध की व्याख्या कीजिए?
2. आदर्शवाद के अनुसार विद्यालय के प्रमुख कार्य क्या है?

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. आदर्शवाद के अनुसार शिक्षा का केन्द्रबिन्दु क्या है?

   (1.) शिक्षक (2) शिक्षार्थी (3) पाठ्यक्रम (4) विद्यालय
2. निम्न में से कौन आदर्शवादी नहीं है?

   (1) सुकरात (2) प्लेटो (3) हीगेल (4) डीवी

Downloaded From www.dietmathura.org

प्रकृतिवाद और शिक्षा

प्रकृतिवाद शब्द Naturalism शब्द का हिन्दी रूपान्तर है, जो दो शब्दों के योग से बना है– Natural + ism इसमें Natural का अर्थ है प्रकृति से सम्बन्धित और ism का अर्थ है–सिद्धान्त, प्रणाली, वाद। इस प्रकार प्रकृति से सम्बन्धित सिद्धान्तों का अध्ययन ही प्रकृतिवाद है। यहाँ यह ध्यान देना होगा कि प्रकृतिवादी शिक्षा के क्षेत्र में 'प्रकृति' शब्द का प्रयोग दो अर्थों में करते है–1. भौतिक प्रकृति और 2. बालक की प्रकृति। भौतिक प्रकृति वाह्य प्रकृति है तथा बालक की प्रकृति का अर्थ है–मूल प्रवृत्तियों, आवेग, क्षमतायें जिन्हें बालक जन्म से अपने साथ लेकर आता है। प्रकृतिवादी दार्शनिक विचारधारा को विद्वानों ने भिन्न–भिन्न प्रकार से स्पष्ट किया है–

जेम्स वार्ड के अनुसार–प्रकृतिवाद वह सिद्धान्त है जो प्रकृति को ईश्वर से पृथक करता है। आत्मा को पदार्थ के अधीन करता है और अपरिवर्तनीय नियमों को सर्वोच्चता प्रदान करता है।

ब्राइस–प्रकृतिवाद एक प्रणाली है जिसकी प्रमुख विशेषता आध्यात्मिकता का विरोध/बहिष्कार करना है।

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर प्रकृतिवादी दर्शन की निम्नलिखित विशेषताये है–

- प्रकृतिवाद प्रकृति को सर्वोपरि मानता है। इसके अलावा ईश्वर आत्मा आदि की सत्ता नहीं मानता है।
- संसार की उत्पत्ति प्रकृति से हुई है और अन्त में सभी कुछ प्रकृति में ही विलीन हो जाता है।
- यह संसार भौतिक है तथा आध्यात्मिकता का विरोध करता है।
- आत्मा को पदार्थ के आधीन स्वीकार करता है।
- सत्य ज्ञान का अनुभव एवं बोध प्राप्त करने में इन्द्रियों का अतिशय महत्व है।

शिक्षा का अर्थ

प्रकृतिवादी दर्शन ने शिक्षा के विविध पहलुओं को नवीनता प्रदान किया है। उसके अनुसार शिक्षा वह साधन है जो मनुष्य को उसकी प्रकृति के अनुरूप विकास करने, जीवन व्यतीत करने के योग्य बनाती है। प्रकृतिवादी शिक्षा को स्वाभाविक विकास की प्रक्रिया मानते है। ***प्रकृतिवादी शिक्षा दार्शनिक***–*बेकन, कमेनियस, स्पेन्सर, रूसो, आदि है।*

रूसों के अनुसार–"सच्ची शिक्षा वह है, जो व्यक्ति के अन्दर से प्रस्फुटित होती है। यह इसकी अन्तर्निहित शक्तियों की अभिव्यक्ति है।"

Downloaded From www.dietmathura.org

हरबर्ट स्पेन्सर के अनुसार–शिक्षा से आशय अन्तःशक्तियों का वाह्य जीवन के साथ समन्वय स्थापित करना है।

संक्षेप में प्रकृतिवादी शिक्षा की विशेषतायें निम्नवत् है–

- प्रकृति का अनुसरण करने पर बल।
- शिक्षा प्रक्रिया में बालक को केन्द्रीय स्थान।
- बालक की स्वतन्त्रता पर बल।
- पुस्तकीय ज्ञान का विरोध।
- निषेधात्मक शिक्षा पर जोर
- प्रगतिशीलता
- इन्द्रियाँ ज्ञान के द्वार

प्रकृतिवाद व शिक्षा के उद्देश्य

शिक्षा के उद्देश्यों के निर्धारण के सम्बन्ध में विभिन्न प्रकृतिवादी विचारक परस्पर एकमत नहीं है। इस सम्बन्ध में उन्होने अलग–अलग विचार व्यक्त किये है जो संक्षेप में निम्नवत् है–

स्पेन्सर के अनुसार जीवन का उद्देश्य इस जगत में सुखपूर्वक रहना है जिसे उसने 'समग्र जीवन' कहा है। स्पेन्सर के अनुसार शिक्षा द्वारा मानव शरीर का इस प्रकार अनुकूलन प्रशिक्षण तथा समायोजन किया जा सकता है, जिसके फलस्वरूप जीवन को समग्रता के साथ जिया जा सके। समग्र जीवन का विश्लेषण वह जीवन की 5 प्रमुख क्रियाओं के माध्यम से करता है जो स्पेन्सर के अनुसार निम्नलिखित है–

1. आत्मरक्षा
2. जीवन की मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति
3. सन्ततिपालन
4. सामाजिक एवं राजनैतिक सम्बन्धों का निर्वहन
5. अवकाश के समय का सदुपयोग।

रूसों के अनुसार–शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य मनुष्य को प्रकृति जीवन जीने योग्य बनाना है। रूसों के अनुसार शिक्षा के द्वारा बालक में हम कुछ नया नहीं उत्पन्न करते, अपितु मानव संसर्ग के परिणामस्वरूप उसमें जो कृत्रिमता का समावेश हो जाता है, उससे उसकी रक्षा करते है। रूसों प्रतिष्ठित सामाजिक संस्थाओं का कटु आलोचक है तथा वह प्रकृति को ईश्वरीय सृष्टि मानता है तथा बालक को ईश्वर की सर्वोच्च कृति। उनका स्पष्ट मत है कि ''जब तक बालक अपने प्राकृतिक रूप में रहता है तब तक वह सद्गुणी, शुभ तथा श्रेष्ठ होता है परन्तु मानव व समाज के सम्पर्क में आकर वह विद्रूप हो जाता है। ईश्वर सब वस्तुओं को अच्छी बताता है किन्तु मानव हस्तक्षेप से वह अनिष्टकारी बन जाती है।''

Downloaded From **www.dietmathura.org**

- अतः रूसों के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य बालक के प्रकृत (दैवी) स्वभाव की रक्षा करना है।
- इस सन्दर्भ में यन्त्रवादी प्रकृतिवादियों का विचार है कि शिक्षा का उद्देश्य—व्यक्ति में ऐसे व्यवहार का विकास करना है जिससे वह यन्त्र/मशीनों के समान कुशलतापूर्वक कार्य कर सके। इस सन्दर्भ में रॉस ने लिखा है कि "शिक्षा का कार्य है कि वह मानव यन्त्र को अधिक से अधिक अच्छा बनाये जिससे वह अपने आगामी जीवन में आने वाली कठिन समस्याओं को कुशलतापूर्वक सुलझा सके।"
- शिक्षा के उद्देश्य निर्धारण के सम्बन्ध में डार्विनवादी विचारक 'मत्स्य न्याय' के सिद्धान्त में विश्वास करते है जिसके अनुसार प्राणी को स्वयं को जीवित बनाये रखने के लिए वातावरण से निरन्तर संघर्ष करना पड़ता है तथा अस्तित्व के इस संघर्ष में जो योग्य व शाक्तिशाली होता है, वहीं जीवित रहता है तथा निर्बल नष्ट हो जाता है। इस प्रकार शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य बालक को इस योग्य बनाना है कि वह मानव जीवन के संघर्षों का सफलतापूर्वक सामना कर सकें।
- इसीक्रम में लैमार्कवादियों का मत है कि शिक्षा वह प्रक्रिया है जो व्यक्ति को उसके वातावरण तथा परिस्थितियों के अनुकूल बनाने में सहयोग प्रदान करती है। इस दृष्टि से शिक्षा का उद्देश्य बालक को इस योग्य बनाना है कि वह अपने पर्यावरण तथा परिस्थितियों के साथ सामंजस्य स्थापित कर सके।
- मैग्डूगल के हॉर्मिक सिद्धान्त के अनुसार मानव व्यवहार मूल प्रवृत्तियों से नियन्त्रित होता है अतः शिक्षा का उद्देश्य मूल प्रवृत्तियों का शोधन समन्वयन तथा मार्गान्तीकरण एवं क्रमबद्ध सहज क्रियाओं को उत्पन्न करना है।
- जार्ज बर्नार्ड शॉ के शब्दों में शिक्षा का उद्देश्य है— विकास की गति और प्रजातीय प्रगति को तेज करना। इनके अनुसार शिक्षा का उद्देश्य एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक जातीय संस्कृति का रक्षण, हस्तान्तरण तथा वृद्धि होना चाहिए।

• महत्वपूर्ण बिन्दु

1. उचित सहज सम्बद्ध क्रियाओं का निर्माण
2. मूल प्रवृत्तियों का शोधन मार्गान्तरीकरण और समन्वय
3. जीवन संघर्ष के लिए तैयारी
4. वातावरण से सामंजस्य स्थापित करने की क्षमता
5. आत्मसंरक्षण एवं आत्मसन्तोष की प्राप्ति
6. विकास की गति की तीव्रता
7. प्रजातीतय प्रगति की प्राप्ति
8. व्यैक्तिकता का स्वतन्त्र विकास
9. पूर्ण जीवन/समग्र जीवन की तैयारी

Downloaded From www.dietmathura.org

प्रकृतिवाद तथा पाठ्यक्रम

प्रकृतिवादी विद्यार्थी/शिक्षार्थी को पाठ्यक्रम का आधार मानते है। उनका कहना है कि पाठ्यक्रम की रूपरेखा शिक्षार्थी की 1. रूचियों 2. योग्यताओं/क्षमताओ 3. मूल प्रवृत्तियों 4. स्वभाविक क्रियाओं 5. व्यैक्तिक भिन्नताओं को ध्यान में रखकर तैयार होनी चाहिए जिससे वह अपनी अभिरूचियों को स्वतन्त्रतापूर्वक विकसित करके, विकास की विभिन्न अवस्थाओं की आवश्यकताओं को पूरा करते हुये मानव जीवन को पूर्णता के साथ जी सकें।

संक्षेप में प्रकृतिवादी विचारक हर्बर्ट स्पेन्सर के व्यापक एवं विस्तृत रूप में पाठ्यक्रम को रेखाचित्र के माध्यम से निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है–

पाठ्यक्रम

आत्मरक्षा सम्बन्धी गुणों के विकास के लिए	जीविकोपार्जन सम्बन्धी गुणों के विकास के लिए	सन्ततिपालन सम्बन्धीगुणों के विकास के लिए	सामाजिक /राजनैतिक सम्बन्धों के निर्वाहन के लिए	अवकाश के समय सदुपयोग के लिए
शरीर विज्ञान स्वास्थ्य विज्ञान सैन्य विज्ञान व्यायाम आदि	विविध प्रकार के वैज्ञानिक विषय गणित भूगोल आदि	यौन विज्ञान स्वास्थ्य विज्ञान बाल मनोविज्ञान गृह विज्ञान आदि	समाज विज्ञान इतिहास, अर्थशास्त्र राजनीतिशास्त्र आदि	संगीत ललित कलायें साहित्य आदि

शिक्षण विधि

शिक्षण विधियों के क्षेत्र में प्रकृतिवाद की देन बहुत महत्वपूर्ण है–इनका मानना है कि शिक्षण में छात्रों की रूचि, योग्यता और अभिक्षमता का पूरा ध्यान रखना चाहिए और स्वतन्त्र ढंग से सीखने में छात्रों की सहायता करनी चाहिए। ऐसा करने से बालक अपनी प्रकृति के अनुरूप स्वाभाविक ढंग से विकास करने में समर्थ होगा। संक्षेप में प्रकृतिवादी शिक्षण विधियों को निम्नवत् ढंग से प्रकट किया जा सकता है–

1. **स्व अधिगम विधि**–प्रकृतिवादी इन्द्रियों को ज्ञान का द्वार मानते है और पुस्तकीय शिक्षा का विरोध करते हैं इसलिए बालकों के ज्ञानेन्द्रियों के विकास के लिए स्व अधिगम विधि का समर्थन करते हैं।
2. **'करके सीखना'/क्रिया विधि**–प्रकृतिवादी रहते तथा निष्क्रिय अभ्यास का विरोध करते है तथा करके सीखने और अनुभव द्वारा सीखने का समर्थन करता है।
3. **खेल विधि**–शैशवावस्था खेल की अवस्था मानी जाती है। खेल–खेल में बालक बहुत कुछ जान व समझ सकते है।
4. **भ्रमण विधि**–प्रकृतिवादी विद्यालय की चारदीवारी से बाहर निकलकर विभिन्न स्थानों पर जाकर तथा प्राकृतिक घटनाओं के प्रत्यक्ष रूप को देखकर शिक्षा प्राप्त करने का समर्थन करता है।

Downloaded From www.dietmathura.org

उपरोक्त शिक्षण विधियों को ध्यान में रखकर अनेक प्रकृतिवादी शिक्षा दार्शनिकों ने निम्नलिखित शिक्षण प्रणाली का समर्थन किया है—

- डाल्टन प्रणाली
- मॉन्टेसरी प्रणाली
- ह्यूरिस्टिक प्रणाली
- योजना प्रणाली
- निरीक्षण प्रणाली
- किंडरगार्डन प्रणाली

संक्षेप में व्यवहारिक, क्रियात्मक और प्रयोगात्मक शिक्षण विधियों के प्रणेता प्रकृतिवादी है।

शिक्षक

प्रकृतिवाद के अनुसार शिक्षक निरीक्षणकर्ता, पथपदर्शक, बाल प्रकृतिज्ञाता, भ्रमणकर्ता, मितवाकी तथा प्रायोगिक ज्ञान से भिज्ञ होता है। वह छात्रों पर किसी बात, किसी तथ्य को जबरन नहीं थोपता बल्कि वह अपने छात्रों को स्वतः विकास करने हेतु प्रेरित करता है। बालकों के विकास हेतु उपयुक्त पर्यावरण का सृजन करता है। अर्थात् शिक्षक का कार्य केवल बालक के स्वभाविक विकास के लिए उपयुक्त/अनुकूल परिस्थितियों का निर्माण करना है। प्रकृतिवादी विचारक प्रकृति को ही वास्तविक शिक्षक मानते हैं।

शिक्षार्थी

प्रकृतिवाद के अन्तर्गत पूरी शिक्षा प्रक्रिया का केन्द्र बिन्दु बालक/विद्यार्थी होता है। शिक्षा शिक्षार्थी को प्रकृति के अनुकूल/अनुरूप ढालने का साधन होती है। प्रकृतिवादी विचारक विद्यार्थी को ईश्वर की श्रेष्ठ व पवित्र कृति मानते है किन्तु सामाजिक कृत्रिमता में फँसकर बालक का स्वाभाविक विकास रूक जाता है। उसकी स्वतन्त्र प्रकृति का दमन कर समाज में विद्यमान उनके बुराइयाँ बालक/विद्यार्थी के अन्दर व्याप्त हो जाती है। प्रकृतिवादियों का मानना है कि बालक की जन्मजात, नैसर्गिक प्रतिभागओं और दक्षताओं के प्रकटन के लिए उसे स्वतन्त्र परिवेश, क्रियात्मकता का ज्ञान एवं ज्ञानेन्द्रियों का प्रशिक्षण परमावश्यक है। शिक्षार्थी को उसकी रूचि योग्यता, क्षमता और स्वभाविक विकास को ध्यान में रखकर ही शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए। प्रकृतिवाद शिक्षार्थी के स्वभाविक समग्र विकास के लिए मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों को अपनाने तथा प्राकृतिक सानिध्यता स्थापित करने की दुहाई देता है।

Downloaded From www.dietmathura.org

अनुशासन

प्रकृतिवाद दमनात्मक अनुशासन का विरोध करता है तथा मुक्तयात्मक अनुशासन की बात करता है। प्रकृतिवादी विचारकों का मानना है कि गलत कार्यों के लिए प्रकृति स्वयं दण्डित करेगी तथा अच्छे कार्यों के लिए पुरस्कृत। किन्तु बहुत से विचारकों ने प्राकृतिक परिणामों द्वारा अनुशासन को स्वीकार नहीं किया है। संक्षेप में प्रकृतिवादियों ने वाह्य शक्तियों पर आधारित अनुशासन को स्वीकार नहीं करते। इनके अनुसार वास्तव में अनुशासन तभी सफल हो सकता है जब शिक्षार्थी को आदर देते हुए उससे स्व–अनुशासित बनने का आग्रह किया जाये तथा स्वतन्त्र ढंग से उसके स्वभाविक विकास का अवसर दिया जाए।

विद्यालय

विद्यालय के स्वरूप और व्यवस्था के सम्बन्ध में प्रकृतिवादियों का कहना है कि विद्यालय को प्रकृति के अनुकूल होना चाहिए। वास्तविक विद्यालय तो प्रकृति स्वयं ही है। फिर भी यदि औपचारिक शिक्षा देने वाले सामाजिक विद्यालय की कल्पना की जाए तो वह कृत्रिमता एवं औपचारिकताओं से विहीन होना चाहिए। कक्षा, वर्ग, समय–सारणी, परीक्षा आदि का बन्धन नहीं होना चाहिए। विद्यालय में बालक/बालिका दोनों को सम्मिलित रूप से शिक्षा देनी की व्यवस्था होनी चाहिए, आत्मानुशासन की भावना का विकास हो तथा वे अपने प्राकृतिक स्वभाव के अनुरूप विकास कर सके।

उपादेयता/प्रासंगिता

आधुनिक शिक्षा में प्रकृतिवाद के योगदान को संक्षेप में निम्नवत् ढंग से व्यक्त किया जा सकता है–

- इस विचारधारा ने आधुनिक शिक्षा को बालकेन्द्रित दृष्टिकोण से पूरित किया।
- इसी विचारधारा के कारण ही आज शिक्षा में बालकों के स्वतन्त्र चिन्तन, अनुभवशीलता, क्रियाशीलता एवं खेल विधि का मार्ग प्रशास्त हुआ है।
- ज्ञानेन्द्रिय प्रशिक्षण को प्रमुखता देने का श्रेय प्रकृतिवाद को है
- शिक्षा में मनोवैज्ञानिक एवं जनतान्त्रिक दृष्टिकोण लाने का श्रेय भी प्रकृतिवाद को है।
- प्रकृतिवाद ने शिक्षा में शब्दों के स्थान पर अनुभव को महत्वपूर्ण बताया।
- प्रत्यक्ष ज्ञान कराने तथा व्यवहारिक क्रियात्मक ज्ञान कराने की प्रेरणा एवं अनेक प्रकार की शिक्षण विधियों का विकास प्रकृतिवाद की महत्वपूर्ण देन है।

Downloaded From www.dietmathura.org

अभ्यास प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. शिक्षा में प्रकृतिवाद क्या है? शिक्षा सिद्धान्त के लिए इसका क्या योगदान है?

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. 'प्रकृति की ओर लौटो का क्या अर्थ है?

2. प्रकृतिवाद के अनुसार पाठ्यक्रम के स्वरूप को स्पष्ट कीजिए?

बहुविकल्प प्रश्न

1. निम्न में से कौन प्रकृतिवादी दार्शनिक है?

1.	सुकरात,	2.	प्लेटो,
3.	हार्न	4.	स्पेन्सर

2. प्रकृतिवाद किस प्रकार के अनुशासन की बात करता है?

1.	दमनात्मक अनुशासन	2.	मुक्त्यात्मक अनुशासन
3.	प्रभावात्मक अनुशासन	4.	सामाजिक अनुशासन।

Downloaded From www.dietmathura.org

प्रयोजनवाद और शिक्षा

प्रयोजनवाद या व्यवहारिकतावाद एक भौतिकवादी दर्शन है। इसे आग्लभाषा में Pragmatism कहा जाता है। यह शब्द ग्रीक भाषा के Pragma और Pragmatikos से बना हुआ है। इसमें Prgma का अर्थ है–किया हुआ कार्य, व्यवसाय, प्रभावपूर्ण कार्य। Pragmatikos का अर्थ है Practicability अर्थात् व्यवहारिकता। इसका आशय यह है कि सभी, विचारों, मूल्यों एवं निर्णयों का सत्य व्यवहारिक परिणामों से ही पाया जाता है। यदि उनके परिणाम सन्तोषजनक सत्य हैं तो वे है, अन्यथा नहीं। संक्षेप में प्रयोजनवाद दर्शन की वह शाखा है जो किसी पूर्वसिद्ध सत्य को स्वीकार नहीं करती है। इसके अनुसार सत्य का मूल्य व्यवहारिक है क्योंकि मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति तथा मानवीय समस्याओं के समाधान में सत्य की अवधारणा निहित होती है। जॉन डिवी इस दर्शन के महान प्रतिवादक है। उनके अनुसार "ज्ञान तथा मस्तिष्क स्वयं में साध्य नहीं है अपितु साधन है। इन्होंने मानवीय समस्याओं के हल के लिए वैज्ञानिक विधि को उपयुक्त माना है।"

नामकरण
चार्ल्स सेण्डर्स पीयर्स–अर्थ क्रियावाद / व्यवहारवाद
विलियम जेम्स–अनुभववाद / फलवाद
जॉन डिवी–साधनवाद, करणवाद पुनर्रचनावाद, प्रयोगवाद
किलपैट्रिक–प्रयोजनवाद

रॉस के शब्दों में–प्रयोजनवाद मूल रूप से मानवतावादी दर्शन है जिसकी मान्यता यह है कि मनुष्य कार्य करके अपने मूल्यों का सृजन करता है और मानता है कि वास्तविकता हमेशा निर्माण की अवस्था में रहता है और अपने स्वरूप का कुछ अंश भविष्य के लिए छोड़ देता है।

प्रैट के अनुसार–प्रयोजनवाद हमें अर्थ का सिद्धान्त, सत्य का सिद्धान्त ज्ञान का सिद्धान्त और वास्तविकता का सिद्धान्त देता है।

संक्षेप में एक दार्शनिक विचारधारा के रूप में प्रयोजनवाद किसी निश्चित शाश्वत मूल्यों, विचारों में विश्वास नहीं करता प्रत्युत व्यक्ति को स्वयं वैज्ञानिक ढंग से इनके निर्माण पर बल देता है। इसकी मान्यता है कि मूल्य, विचार, आदर्श समय–समय पर बदलते रहते है। मनुष्य का चरम लक्ष्य सुखानुभूति है इस और संसार में आध्यात्मिकता नाम की कोई चीज नहीं है।

शिक्षा का अर्थ

शिक्षा के क्षेत्र में प्रयोजनवाद परम्परागत और अनुदार ज्ञान के विरूद्ध क्रांति है। इसने शिक्षा की संकल्पना को कई रूपों में प्रस्तुत किया है जो निम्नलिखित है–

- शिक्षा अनुभवों का पुननिर्माण / पुर्नरचना करने वाली प्रक्रिया है।

Downloaded From www.dietmathura.org

- शिक्षा वातावरण के साथ अनुकूलन/सांमजस्य स्थापित करने की प्रक्रिया है।
- शिक्षा स्वयं जीवन है।
- शिक्षा सामाजिक जीवन का आधार है तथा सामाजिक कुशलता प्राप्त करने की प्रक्रिया है।
- शिक्षा एक लोकतन्त्रीय प्रक्रिया है।

उपरोक्त बिन्दुओं के आधार पर हम कह सकते है कि प्रयोजनवादी शिक्षा को मनुष्य के विकास की प्रक्रिया मानते है। शिक्षा के द्वारा मनुष्य में वह सभी क्षमतायें उत्पन्न की जा सकती है। जिनसे मनुष्य अपने वातावरण के साथ अनुकूलन/सामंजस्य स्थापित कर सके तथा अपने अनुभवों में अभिवृद्धि करके अपना विकास कर सकें।

शिक्षा के उद्देश्य

प्रयोजनवाद 'परिवर्तन' में विश्वास व्यक्त करता है तथा अनुभव व उपयोगिता के आधार पर आदर्शों, सत्य व मूल्यों के आत्मसातीकरण पर बल देता है। इसी कारण वह पूर्व निश्चित किसी आदर्श मूल्य व सत्य को अपनाने का विरोध करता है। चूँकि आदर्श, मूल्य व सत्य परिवर्तनशील है, इसलिए शिक्षा के स्थायी उद्देश्यों की कल्पना नहीं की जा सकती। शिक्षा का उद्देश्य तात्कालिक आवश्यकताओं के अनुरूप बदलते रहना चाहिए। इस दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए प्रयोजनवाद के अनुसार शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्य होना चाहिए–

- नवीन आदर्शों, मूल्यों का सृजन करना।
- सामाजिक कार्य–कुशलता का विकास करना।
- वातावरण के साथ समायोजन की क्षमता का विकास करना।
- अनुभवों का पुनर्निर्माण करना।
- सत्यान्वेषण की योग्यता विकसित करना।
- उपयोगी निर्देशन प्रदान करना।
- लैकिक आनन्द की प्राप्ति करना।
- जनतन्त्रात्मक आदर्शों का विकास
- लचीले व गतिशील मस्तिष्क का विकास

पाठ्यक्रम

किसी पूर्व निश्चित पाठ्यक्रम को स्वीकृति न देते हुये प्रयोजनवादी विचारक–अनुभवकेन्द्रित पाठ्यक्रम पर बल देते है। उनके अनुसार हमारा पाठ्यक्रम देश, काल, परिस्थितियों, विद्यार्थी की रूचि

Downloaded From www.dietmathura.org

आवश्यकता योग्यता व उपयोगिता आदि को ध्यान में रखकर निर्मित होना चाहिए। वे पाठ्यक्रम को कुछ विशेष विषयों तक सीमित नहीं रखना चाहते अपितु उसकी मान्यता है कि पाठ्यक्रम समय की माँग और परिवेश के अनुरूप परिवर्तित होते रहना चाहिए। अतः उन्होंने पाठ्यक्रम की रूपरेखा प्रस्तुत न करके पाठ्यक्रम निर्माण सम्बन्धी सिद्धान्तों पर अपने विचार व्यक्त किये है जो बहुत ही उपयोगी तथा मूल्यवान है—पाठ्यक्रम निर्माण सम्बन्धी सिद्धान्त।

- उपयोगिता का सिद्धान्त
- रूचि का सिद्धान्त
- अनुभव केन्द्रित सिद्धान्त
- क्रिया केन्द्रित सिद्धान्त
- एकीकरण का सिद्धान्त
- समाजीकृत सिद्धान्त
- विविधता का सिद्धान्त

शिक्षण विधि

शिक्षण सिद्धान्तों तथा शिक्षण विधियों के क्षेत्र मं प्रयोजन वाद की महत्वपूर्ण देन है। यह वाद किसी रूढ़िवादी परम्परागत निष्क्रिय शिक्षण पद्धति का समर्थन नहीं करता अपितु नवीनतम मनोवैज्ञानिक शिक्षण विधियों के सृजन एवं उपयोग को महत्व देता है। शिक्षण विधियों के चयन एवं प्रयोग में प्रयोजनवाद निम्नलिखित शिक्षण सिद्धान्तों का हिमायती है—

- सीखने की उद्देश्यपूर्ण प्रक्रिया का सिद्धान्त
- क्रिया या अनुभव द्वारा सीखने का सिद्धान्त
- एकीकरण का सिद्धान्त
- बालकेन्द्रित सिद्धान्त
- सामूहिक क्रिया का सिद्धान्त

योजना विधि

प्रयोजनवाद की एक महत्वपूर्ण शिक्षण विधि प्रोजेक्ट/योजना विधि है। इसे समस्या समाधान विधि भी कहते है। इस विधि के अन्तर्गत अधिगमकर्ता स्वयं योजना बनाता है और उसके अनुरूप अधिगम करता है। शिक्षक का मुख्य कार्य समस्या की उत्पत्ति या समस्या की पहचान करना है। इसके पश्चात् अधिगमकर्ता उस समस्या के समाधान के लिए स्वयं योजना बनाता है। आवश्यकता पड़ने

Downloaded From www.dietmathura.org

पर शिक्षक का सहयोग लेता है और अन्त में प्रयोग एवं अनुभव द्वारा समस्या का समाधान करने में समर्थ हो जाता है। संक्षेप में योजना विधि में समस्या समाधान के निम्नलिखित सोपान है–

समस्या की पहचान
↓
समस्या के तत्वों का विश्लेषण
↓
परिकल्पना निर्माण
↓
परिकल्पना परीक्षण
↓
मूल्यांकन

उपरोक्त विवेचना से स्पष्ट है कि प्रयोजनवाद प्रयोग विधि, खोज विधि, क्रिया विधि, प्रत्यक्ष अनुभूति विधि, सामूहिक क्रिया विधि, योजना विधि, प्रयत्न एवं भूल विधियों में शिक्षा देने का हिमायती है।

शिक्षक

प्रयोजनवाद शिक्षक को नवीन आदर्शो, मूल्यों, सत्यों का निर्माण करने वाला, अद्यतन ज्ञान विज्ञान से भिज्ञ, अनुभवशील, क्रियाशील, और परिश्रमी होने पर बल देता है। उसका मानना है कि शिक्षक को सदैव प्रयोग करते रहना चाहिए और उसी के अनुरूप अपने शिक्षण विधि व पाठ्यक्रम में सुधार करते रहना चाहिए। साथ ही शिक्षक को अपने छात्रों पर बलात् विचार, मत, आदर्श, मूल्य नहीं थोपना चाहिए बल्कि एक पथ प्रदर्शक, व सलाहकार के रूप में कार्य करना चाहिए।

प्रयोजनवादी शिक्षक से बाल मनोविज्ञान व बाल प्रकृति का ज्ञाता होने का आग्रह करते है क्योंकि जब तक शिक्षक शिक्षार्थी की रूचि आवश्यकता व व्यवहार की जानकारी नहीं रखेगा तब तक वह एक सच्चे पथ प्रदर्शक और सलाहकार के रूप में छात्रों को दिशा निर्देशित नहीं कर सकेगा और न ही उपयुक्त अध्ययन वातावरण का निर्माण कर सकने में सक्षम होगा। यह शिक्षक को समाज का कार्यात्मक सदस्य तथा जनतांत्रिक मान्यताओं में आस्था रखने पर बल देता है जो अपने जनतांत्रिक व्यवहार से छात्रों को सोचने, क्रिया करने और अन्वेषण करने में तल्लीन रहता है और सदैव तात्कालिक आवश्यकता के अनुरूप नवीन सत्यों, मूल्यों का निर्माण करने में सहभागी रहे। साथ ही शिक्षक का यह भी परम कर्त्तव्य है कि वे छात्रों में सामाजिक हित की भावना के प्राकट्य में सहयोग दे।

शिक्षार्थी

प्रयोजनवाद शिक्षार्थी को नये मूल्यों का निर्माणकर्ता, क्रिया करने वाला, दूरदर्शी, सृजनात्मक एवं प्रयोगवादी होने पर बल देता है। इस विचारधारा में भी विद्यार्थी को केन्द्रीय स्थान दिया गया है–

Downloaded From www.dietmathura.org

विद्यार्थी की प्रकृति		
प्रकृतिवाद	–	प्राकृतिक / जैविक प्राणी
आदर्शवाद	–	आध्यात्मिक प्राणी
प्रयोजनवाद	–	सामाजिक प्राणी

वह विद्यार्थी की रूचि आवश्यकता, योग्यता व उपयोगिता के अनुरूप पूरी शिक्षा व्यवस्था नियोजित करने का हिमायती है। उसका मानना है कि छात्रों को आत्मा, परमात्मा, आदर्शो, मूल्यों, आध्यात्मिकता की पूर्व स्वीकृत मान्यताओं में विश्वास करने की कोई आवश्यकता नहीं है। वरन् छात्रों को अपने प्रयोगो, क्रियाओं और अनुभवों के माध्यम से नये मूल्यों का निर्माण और उनका परीक्षण करना चाहिए। छात्रों को कक्षा में निष्क्रिय होकर नहीं बैठना चाहिए बाल्कि सक्रिय रूप से ज्ञान प्राप्ति के लिए सजग रहना चाहिए। समाज का क्रियात्मक सदस्य बनकर सामाजिक कुशलता की प्राप्ति करनी चाहिए। जनतात्रिक मान्यताओं में आस्था होनी चाहिए और सबके साथ समानता का व्यवहार करना चाहिए।

विद्यालय

प्रयोजनवादी शिक्षा को सामाजिक प्रक्रिया मानते है। उनका स्पष्ट मत है कि शिक्षा ही समाज को नया रूप देती है। अतः ये शिक्षा संस्था को सामाजिक संस्था मानते है। संक्षेप में विद्यालय के सम्बन्ध निम्नलिखित कथन ध्यान देने योग्य है–

- विद्यालय समाज का लघ्रु रूप है।
- विद्यालय समाज का सच्चा प्रतिनिधि है।
- विद्यालय समाज की प्रयोगशाला है।
- विद्यालय समुदाय का केन्द्र है।
- विद्यालय कार्यशील नागरिकों के जीवन का स्थल है।

उपर्युक्त कथनों के आधार पर कहा जा सकता है कि वे विद्यालय को आधुनिक साज–सज्जा सम्पन्न, प्रयोगशाला बनाने के समर्थक है। साथ ही विद्यालय व्यवस्था में नमनीयता और गतिशीलता भी होनी चाहिए जिससे विद्यार्थियों को स्वतन्त्र गति से क्रिया, प्रयोग और अनुभव द्वारा नवीन सत्यों के निर्माण में मद्द मिल सके।

अनुशासन

प्रयोजनवादी विचारक–वाह्य अनुशासन, शिक्षक के श्रेष्ठ अधिकार, और शारीरिक दण्ड की निन्दा करते है। वे कठोर दमनात्मक अनुशासन व प्रभावात्मक अनुशासन की अवधारणा को स्वीकार

Downloaded From www.dietmathura.org

नहीं करते है। इन सबसे हटकर वे सामाजिक अनुशासन का समर्थन करते है जो 'सामाजिक समझदारी पर आधारित होना चाहिए। अनुशासन की स्थापना के लिए वे विद्यार्थी की रूचि एवं योग्यता के अनुरूप क्रियाओं पर बल देते है। साथ ही ये क्रियायें सहयोगी व सामाजिक भी हो। उनका मानना है कि जब बालक हमेशा क्रियाशील रहेगा, उसका मस्तिष्क हृदय और हाथ क्रिया में लगा रहेगा तो उसे अनुशासनहीनता के लिए समय की नही मिलेगा।

उपादेयता

आधुनिक शिक्षा के स्वरूप निर्धारण में प्रयोजनवाद की महती भूमिका है। संक्षेप में इसके योगदान को निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत रख सकते है–

- कक्षागत परिस्थितियों में छात्रों की सक्रिय भागादारी पर बल देना।
- क्रिया विधि (करके सीखना) को महत्वपूर्ण विधि के रूप में अपनाने पर बल देना।
- व्यवसायिक शिक्षा और विज्ञान शिक्षा को प्रोत्साहित करना।
- योजना विधि का शिक्षा में अनुप्रयोग।
- लोकतान्त्रिक मूल्यों को शिक्षा में स्थान देना।
- समाजोपयोगी शिक्षा की अवधारणा का विकास।

Downloaded From www.dietmathura.org

अभ्यास प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. प्रयोजनवाद का अर्थ स्पष्ट करते हुये इसके शैक्षिक उद्देश्यों की विवेचना कीजिए?
2. प्रयोजनवाद ने शिक्षा के सिद्धान्त और कार्य प्रणाली को किस प्रकार प्रभावित किया है?

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. प्रैग्मैटिज्म शब्द की व्युत्पत्ति बताइये?
2. प्रयोजनवाद के अन्तर्गत शिक्षक की भूमिका को स्पष्ट करो?

बहुविकल्प प्रश्न

3. प्रयोजनवाद का जन्म किस देश में हुआ है?

   (1) भारत (2) अमेरिका

   (3) बिट्रेन (4) चीन

4. विद्यालय को समाज का लघु रूप मानते हैं?

   (1) आदर्शवादी (2) प्रकृतिवादी

   (3) प्रयोजनवादी (4) मानववादी

Downloaded From www.dietmathura.org

आदर्शवाद, प्रकृतिवाद व प्रयोजनवाद का तुलनात्मक अध्ययन

(COMPARATIVE STUDY OF IDEALISM, NATURALISM AND PRAGMATISM)

आदर्शवाद (Idealism) **प्रकृतिवाद (Naturalism)** **प्रयोजनवाद (Pragmatism)**

1. आधारभूत सिद्धान्त (Fundamental Principles)

1. यह एक तत्ववादी (Monistic) है।	1. यह भी तत्ववादी विचारधारा है। यह पुद्गल या पदार्थ को प्रमुख तत्व मानता है।	1. यह बहुतत्ववादी (Pluralistic) सिद्धान्त है।
2. मन विचार व आत्मा वास्तविक है।	2. प्रकृति पदार्थ या भौतिक–जगत वास्तविक है।	2. वास्तविकता प्रक्रिया में निहित है।
3. आध्यात्मिक प्रकृति सर्वोत्तम है।	3. मनुष्य की मूल–प्रवृत्यात्मक प्रकृति उत्तम है।	3. मनुष्य निश्चित नहीं, वरन् परिवर्तनशील है।
4. सत्यम्–शिवम् सुन्दरम् अमर मूल्य है।	4. विश्व एक बड़ी मशीन है।	4. साधन को साध्य से अधिक महत्व देता है।
5. परमात्मा स्वभाव से मानसिक है।	5. केवल विज्ञान ही ज्ञान प्रदान करता है।	5. मानवीय प्रयत्न निर्णायक महत्व के हैं
6. विश्व विचार प्रक्रिया है।	6. विश्व की वास्तविक व्याख्या केवल प्राकृतिक विज्ञानों द्वारा की जाती है।	6. जो सिद्धान्त कार्य करते हैं, वे सत्य हैं।
7. चिन्तन का सर्वोत्तम स्वरूप अर्न्तज्ञान है।	7. नैतिक प्रवति, आत्म, परलोक, व्यक्तिगत अमरत्व आदि सब भ्रम है।	7. सत्य मानव निर्मित है।
8. दृष्टिकोण पूर्णतया आध्यात्मिक है।	8. दृष्टिकोण पूर्णतया भौतिक व यान्त्रिक है।	8. दृष्टिकोण पूर्णतया मानवीय है।

Downloaded From www.dietmathura.org

2. शैक्षिक सिद्धान्त (Educational Principles)

1. शिक्षा आध्यात्मिक या नैतिक प्रक्रिया है।	1. शिक्षा एक स्वाभाविक प्रक्रिया है।	1. शिक्षा सामाजिक प्रक्रिया है।
2. परमात्म तत्व की ओर विकास।	2. बालक के वर्तमान जीवन को शिक्षा का आधार बनाया जाय।	2. बालक की क्रियाओं एवं स्व–प्रयत्नों पर बल।
3. व्यक्तित्व के उन्नयन पर बल।	3. निषेधात्मक शिक्षा पर बल।	3. जीवन की ठोस परिस्थितियों को शिक्षा का आधार बनाया जाय।
4. सामाजिक और नैतिक वातावरण पर बल।	4. भौतिक वातावरण पर बल।	4. सामाजिक एवं भौतिक वातावरण पर बल।
5. निश्चयात्मक शिक्षा।	5. निषेधात्मक शिक्षा।	5. निश्चयात्मक शिक्षा प्रयोग और अनुभव पर आधारित सामाजिक प्रक्रिया द्वारा।

3. शिक्षा के उद्देश्य (Aims of Education)

1. आत्मानुभूति	1. आत्माभिव्यक्ति	1. पूर्व–निश्चित उद्देश्यों की अस्वीकृति।
2. चरित्र निर्माण	2. वैयक्तिकता का विकास	2. उद्देश्य निश्चित न होकर परिवर्तनशील होते हैं।
3. सत्यम् शिव्म एवं सुन्दरम् की प्राप्ति।	3. उचित सहज सम्बद्ध क्रियाओं का निर्माण।	3. सामाजिक कुशलता पर बल।
4. आध्यात्मिक व्यक्तित्व का विकास।	4. मूल–प्रवृत्तियों का शोधन मार्गान्तीकरण और समन्वय।	4. सामाजिक व्यवस्था की उन्नति।
5. पवित्र एवं पुण्य जीवन की प्राप्ति।	5. जीवन–संघर्ष के लिए तैयारी	5. गतिशील और लचीले मस्तिष्क का निर्माण
6. सांस्कृतिक आध्यात्मिक विरासत का संरक्षण एवं	6. प्रजातीय प्रगति की प्राप्ति।	6. नये मूल्यों और आदर्शों का निर्माण

Downloaded From www.dietmathura.org

उसकी समृद्धि		

4. पाठ्यक्रम (Curriculum)

1. मनुष्य के विचारों और आदर्शों पर पाठ्यक्रम का आधारित होना।	1. बालक की रूचियों, योग्यताओं और स्वाभाविक क्रियाओं को महत्व।	1. उपयोगिता का सिद्धान्त
2. शाश्वत मूल्यों अर्थात् सत्यम्, शिवम् और सुन्दरम् का महत्वपूर्ण स्थान है।	2. बालक के विकास की विभिन्न आवयकताओं की पूर्ति।	2. बालक की रूचि का सिद्धान्त।
3. शारीरिक, सामाजिक और आध्यात्मिक क्रियाओं को स्थान।	3. जीवन–रक्षा सम्बन्धी विषयों की प्रधानता।	3. बालक के अनुभाव का सिद्धान्त।
4. पाठ्यक्रम के मुख्य विषय–आध्यात्मवाद, धर्म, नीतिशास्त्र, कला, संगीत, दस्तकारी।	4. पाठ्यक्रम के मुख्य विषय शरीर विज्ञान स्वास्थ्य विज्ञान भौतिक विज्ञान बाल मनोविज्ञान।	4. सीखने की प्रक्रिया का एकीकरण।
5. नीति–शास्त्र और कला नामक विषयों पर बल।	5. विज्ञान पर बल।	5. पाठ्यक्रम के मुख्य विषय स्वास्थ्य विज्ञान शारीरिक प्रशिक्षण गृहविज्ञान (बालिकाओं के लिए) विज्ञान।
6. विचार–केन्द्रित पाठ्यक्रम।	6. बाल केन्द्रित पाठ्यक्रम।	6. उपयोगी विषयों पर बल।
		7. क्रिया प्रधान पाठ्यक्रम।

5. शिक्षण–विधियाँ (Methods of Teaching)

1. कोई निश्चित विधि नहीं।	1. करके सीखना	1. करके सीखना
2. आदर्शवादी स्वयं विधियों के निर्धारक और निर्माणकर्ता।	2. अनुभव द्वारा सीखना	2. अनुभव द्वारा सीखना
3. प्रमुख विधियाँ वाद–विवाद प्रश्नोत्तर विधि, व्याख्यानविधि पुस्तक पठन विधि।	3. खेल द्वारा सीखना	3. सीखने की प्रक्रिया में एकीकरण।
	4. प्रमुख विधियां डाल्टन किडरगार्टन मॉन्टेसरी, ह्यूरिस्टिक।	4. प्रमुख विधि– योजना विधि

6. अनुशासन (Discipline)

1. प्रभावात्मक अनुशासन	1. प्राकृतिक परिणामों द्वारा अनुशासन	1. सीमित मुक्त्यात्मक अनुशासन
2. नियन्त्रित स्वतन्त्रता	2. अनयिन्त्रित स्वतन्त्रता	2. सामाजिक अनुशासन

Downloaded From www.dietmathura.org

7. बालक (Child)

1. बालक एक आत्मिक प्राणी। 2. शरीर एवं आत्मा	1. बालक प्राणी मात्र 2. शरीर पर बल	1. बालक सामाजिक प्राणी। 2. बालक शरीर एवं मनोवैज्ञानिक पक्ष के साथ उसके सामाजिक पक्ष पर बल।

8. शिक्षक (Teacher)

1.	शिक्षक का महत्वपूर्ण स्थान।	1.	प्रकृति ही उत्तम शिक्षक है। यदि शिक्षक का कोई स्थान है तो रंगमंच तैयार करने तथा पर्दे के पीछे रहने वाले के रूप में।	1.	शिक्षक सामाजिक वातावरण के रूप में।
2.	शिक्षक एक माली के रूप में।			2.	शिक्षक सामाजिक परिस्थितियों का निर्माणकर्ता परामर्शदाता एवं मार्गदर्शक।

9. विद्यालय (School)

1	मानव क्रियाओं का आदर्श लघु रूप।	1.	प्राकृतिक या स्वाभाविक वातावरण के रूप में।	1.	समाज का लघु रूप।
2.	बाग के रूप में।	2.	स्वच्छन्द वातावरण।	2.	सामुदायिक जीवन का केन्द्र।

प्रशिक्षु चर्चा करें–

वर्तमान भारतीय शिक्षा के पुनर्निर्माण के लिए कौन सी दार्शनिक विचार धारा एक उचित आधार प्रदान कर सकती है? क्यों?

Downloaded From www.dietmathura.org

भारतीय विचारक एवं उनका शिक्षा दर्शन

स्वामी विवेकानन्द

- ❖ भूमिका व परिचय
- ❖ शिक्षा का अर्थ
- ❖ शिक्षा का उद्देश्य
- ❖ पाठ्यक्रम
- ❖ शिक्षण विधि
- ❖ शिक्षक छात्र सम्बन्ध
- ❖ अनुशासन व दण्ड
- ❖ स्त्री शिक्षा व जनसम्मान शिक्षा
- ❖ उपादेयता
- ❖ बोधप्रश्न

रवीन्द्र नाथ टैगोर

- ❖ भूमिका व परिचय
- ❖ शिक्षा का अर्थ
- ❖ शिक्षा का उद्देश्य
- ❖ पाठ्यक्रम
- ❖ शिक्षण विधि
- ❖ शिक्षक छात्र सम्बन्ध
- ❖ अनुशासन व दण्ड
- ❖ स्त्री शिक्षा व जनसम्मान शिक्षा
- ❖ उपादेयता
- ❖ बोधप्रश्न

गिज्जू भाई बधेका

- ❖ भूमिका व परिचय
- ❖ शिक्षा का अर्थ
- ❖ शिक्षा का उद्देश्य
- ❖ पाठ्यक्रम
- ❖ शिक्षण विधि
- ❖ शिक्षक छात्र सम्बन्ध
- ❖ अनुशासन व दण्ड
- ❖ स्त्री शिक्षा व जनसम्मान शिक्षा
- ❖ उपादेयता
- ❖ बोधप्रश्न

Downloaded From **www.dietmathura.org**

महात्मागांधी

- भूमिका व परिचय
- शिक्षा का अर्थ
- शिक्षा का उद्देश्य
- पाठ्यक्रम
- शिक्षण विधि
- शिक्षक छात्र सम्बन्ध
- अनुशासन व दण्ड
- स्त्री शिक्षा व जनसम्मान शिक्षा
- बेसिक शिक्षा
- उपादेयता
- बोधप्रश्न
- मूल्यांकन कार्य

Downloaded From www.dietmathura.org

स्वामी विवेकानन्द

अतीत काल से भारत भूमि अनन्य ऐसे प्रतिभाशाली सपूतों की जननी रही है, जिनमें भारतीयता एवं जनकल्याण की भावना का जज्बा हमेशा से बुलन्द रहा है, उन्हीं महापुरुषों में स्वामी विवेकानन्द जी का नाम अग्रगण्य है।

स्वामी विवेकानन्द का जन्म 12 जनवरी 1863 में कलकत्ता के सम्पन्न परिवार में हुआ था, पिता श्री विश्वनाथ दत्त प्रसिद्ध वकील और माता धार्मिक गृहस्थ थी, बालक नरेन्द्रदत्त पर घर के सौहार्दपूर्ण वातावरण का गहरा प्रभाव पड़ा।

बालक नरेन्द्रदत्त की प्रारम्भिक शिक्षा विद्यालय में पूर्ण हुई, अत्यन्त प्रखर बुद्धि का होने के कारण उन्होंने कई धार्मिक ग्रन्थों को कंठस्थ कर लिया था, उन्हें आंग्ल, बंग्ला भाषा का विशेष ज्ञान था, कॉलेज से स्नातक की शिक्षा पूर्ण करने के बाद वह दक्षिणेश्वर में रामकृष्ण परमहंस के विचारों से प्रभावित होकर उनकी सेवा में संलग्न हो गए, गुरु की मृत्यु के पश्चात् जनशिक्षा के लिए 1886 में रामकृष्ण मिशन की स्थापना की और भ्रमण करके उनकी विचारधारा का देश–विदेश में प्रचार करने लगे।

> स्वामी विवेकानन्द प्रथम भारतीय विचारक थे जिन्होने 1893 में शिकागो सर्वधर्म सम्मेलन में ओजपूर्ण व्याख्यान दिया जिससे प्रभावित होकर अनेक अमेरिकी वासी उनके शिष्य बन गए ।

अपने गुरु की शिक्षा के प्रचार क्रम में स्वामी जी ने यूरोप, इंग्लैण्ड, पेरिस का भ्रमण किया और 04 जुलाई 1902 को नश्वर शरीर त्यागकर हमेशा के लिए भारतीय जन मानस में अविस्मरणीय हो गये।

चूंकि स्वामी विवेकानन्द वेदान्त से प्रभावित थे और उनके जीवन दर्शन में दो प्रमुख लक्ष्य थे– मानव कल्याण, सर्व धर्म समभाव।

> *महत्वपूर्ण तथ्य*
>
> ***हम लोग एक ही लक्ष्य पर विभिन्न रास्तों से पहुँचते हैं ये रास्ते चार वर्गों में हैं, कर्म का मार्ग प्रेम का मार्ग, ज्ञान का मार्ग, धर्म का मार्ग।***
>
> ***उनका स्पष्ट मत था संसार की सहायता करने से हम अपनी सहायता करते हैं, दूसरों के लिए किये गये कार्य का प्रभाव हमें शुद्ध करता है।***

स्वामी विवेकानन्द ने अपने दो प्रमुख लक्ष्य को पूरा करने में शिक्षा को सशक्त माध्यम माना। उनके <u>शिक्षा दर्शन</u> की मुख्य बातें इस प्रकार है–

शिक्षा का अर्थ– शिक्षा मनुष्य में अन्तर्निहित पूर्णता की अभिव्यक्ति है उनके मत से शिक्षा वह नहीं है जो दिमागों में ठूँस–ठूँस कर भर दिया जाए ऐसी शिक्षा केवल जानकारी का ढेर मात्र है। सच्ची शिक्षा तो मानव निर्माण की शिक्षा है।

Downloaded From www.dietmathura.org

शिक्षा के उद्देश्य– मानव में पूर्णता का विकास करने के लिए कुछ बातें जरूरी है–

शारीरिक विकास– स्वामी जी का मानना था वर्तमान में ऐसे बलिष्ठ मनुष्यों की आवश्यकता है। जिनकी पेशियाँ दृढ़ व स्नायु फौलाद की तरह कठोर हों।

चारित्रिक विकास– स्वामी जी मानते थे कि चरित्र अमूल्य धरोहर है इसके विकास से मनुष्य के संस्कार परिष्कृत होते हैं, मनुष्य का नैतिक व धार्मिक उत्थान होता है।

व्यवसायिक उद्देश्य– शिक्षा ऐसी हो जिससे लोगों की आवश्यकता पूर्ति हो और आत्मनिर्भरता प्राप्त हो।

विश्वबन्धुत्व की भावना का विकास– वसुधैवम् कुटुम्बकम् की भावना का विकास शिक्षा का मुख्य लक्ष्य होना चाहिए ताकि विश्व के सभी लोग प्रेम स्नेह के बंधन में बंध सकें।

पाठ्यक्रम

शिक्षा में ऐसे विषयों का समावेश होना चाहिए, जो शैक्षिक लक्ष्यों को पूरा करने में सहायक हो उनके अनुसार शारीरिक शिक्षा, खेलकूद, महापुरुषों की जीवनी, व्यवसायिक शिक्षा, पाशचात्य ज्ञान व मातृभाषा व आंग्ल भाषा का ज्ञान जरूरी है।

प्रशिक्षु चर्चा करें कि स्वामी विवेकानन्द के शैक्षिक लक्ष्यों में और कौन–कौन से बिन्दु जोड़े जा सकते हैं–

शिक्षण विधि–

स्वामी जी का मानना था कि शिक्षा तभी प्राप्त की जा सकती है जब एकाग्रता का तत्व विद्यमान हो। इसके अतिरिक्त

- वाद–विवाद
- तर्क एवं
- व्याख्या द्वारा तथा
- व्यक्तिगत निर्देशन व परामर्श द्वारा शिक्षण कार्य सम्पन्न किया जाना चाहिए।

शिक्षक–छात्र सम्बन्ध

शिक्षा की प्रगति तभी सम्भव है जब गुरु–शिष्य में मित्रतापूर्ण सम्बन्ध हो। शिक्षक पथ–प्रदर्शक के रूप में शिक्षण कार्य करें। उनका मत था शिक्षक बालक को अपने ढंग से अग्रसित होने के लिए सहायता हेतु दार्शनिक मित्र व पथ प्रदर्शक है।

Downloaded From **www.dietmathura.org**

अनुशासन व दण्ड

वह विद्यार्थियों को शारीरिक दण्ड के घोर विरोधी थे। बच्चों को स्वतन्त्र छोड़ दो ताकि उनका स्वाभाविक विकास हो सके, इसलिए स्वानुशासन का ही अवसर देना चाहिए। कठोरता के बजाय सहानुभूति पूर्ण व्यवहार करना चाहिए।

आप स्वयं सोचें व लिखें– कि वर्तमान शिक्षा परिदृश्य में छात्रों को अनुशासित करने एवं पढ़ने के लिए प्रेरित करने में दण्ड देने की घटनाएं बढ़ रही है समाचार पत्र और पत्रिकाओं से संकलन करें एवं उस पर अपने मत लिखें।

स्त्री शिक्षा व जनसामान्य शिक्षा

उनका मत था स्त्री शिक्षा पुरुषों के समान है उनके उत्थान के बिना देश व समाज का उत्थान कदापि सम्भव नहीं हो सकता। जनसामान्य की दशा में सुधार के लिए उन्होंने विशेष प्रयत्न किया।

मैं समझता हूँ कि जनसाधारण की उपेक्षा महान राष्ट्रीय पाप है और जो हमारे पतन के कारणों में से एक है।

उपर्युक्त चर्चा से हमने जाना

- शिक्षा का मुख्य उद्देश्य दुर्बलता का निवारण होना चाहिये।
- असफलताएं जीवन का सौन्दर्य है इन्हें प्रेरक रूप में समझना चाहिए।
- छात्र को केवल माहौल एवं मार्गदर्शन दे ताकि उसमें स्वध्याय की आदत विकसित हो।

इसी प्रकार अन्य बिन्दुओं को प्रशिक्षु छात्र समूह से चर्चा द्वारा जोड़े ....

स्वामी विवेकानन्द के शैक्षिक विचारों को आज के परिप्रेक्ष्य में अनुपालित किया जाना चाहिए ताकि भारत को विश्वस्तर पर शिक्षा के माध्यम से पुनः पहचान कायम हो सके।

बोध प्रश्न

- स्वामी विवेकानन्द के अनुसार शिक्षा की संकल्पना क्या थी ?
- स्वामी विवेकानन्द ने स्त्री शिक्षा के सम्बन्ध में क्या मत था?

Downloaded From www.dietmathura.org

रवीन्द्र नाथ टैगोर

भारतीय शिक्षा दर्शन में अमूल्य योगदान करने वाले विचारकों में रवीन्द्र नाथ टैगोर जी प्रमुखतम माने जाते हैं। बहुमुखी प्रतिभा के धनी टैगोर जी का जन्म 06 मई सन् 1861 ई0 को कलकत्ता में हुआ था इनके पिता का नाम महर्षि देवेन्द्र नाथ टैगोर था जो स्वयं एक महान दार्शनिक एवं समाजवादी नेता थे, पिता का प्रभाव बालक टैगोर पर भी पड़ा, उनकी प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही हुई उन्होंने प्रारम्भिक अवस्था में ही हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी, बंग्ला चित्रकला पर प्रवीणता, प्राप्त कर ली थी। टैगोर को एक के बाद एक नवीन विद्यालयों में पढ़ने भेजा गया किन्तु वातावरण की कृत्रिमता ने उनका मोह भंग कर दिया।

टैगोर मैकाले पद्धति के विद्यालय के घोर विरोधी थे यह उनके लिए जेल के समान था। उन्होंने स्वाध्याय से ही वेद, उपनिषद का ज्ञान प्राप्त किया। सन् 1905 में उन्होंने राजनैतिक क्षेत्र में रुचि लेनी शुरू की 1913 में गीतान्जलि की रचना की और इसी ग्रन्थ के अंग्रेजी अनुवाद के लिए उन्हें 1913 में नोबल एवार्ड से सम्मानित किया गया।

इन्हें भी जाने

> ***रचनाएं— उत्सवर दिन, पूर्व—पश्चिम, गीतान्जलि, शिक्षा हेर—फेर, धर्म, शान्ति निकेतन, शिक्षावधि, स्त्री शिक्षा और माई स्कूल।***

उन्हें कलकत्ता विश्वविद्यालय ने 1913 में डी0लिट0 की ऑनरेरी उपाधि से विभूषित किया और भारत सरकार ने 1915 में नाइट की उपाधि दी।

विश्व कवि टैगोर का शिक्षा दर्शन उच्चकोटि का था उसमें समन्वय की भावना थी। उनके शैक्षिक विचारों का संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है—

- प्रकृतिवादी के रूप में वे प्रकृति को शिक्षा का सशक्त माध्यम व स्थान मानते थे।
- आदर्शवादी के रूप में वे परमसत्य ईश्वर पर विश्वास करते थे।
- मानवतावादी के रूप में— मानव ही वास्तविकता और सत्य भी।

शिक्षा का अर्थ

सर्वोच्च शिक्षा वह है जो हमें न केवल सूचना प्रदान करती है वरन् हमारे जीवन का वाह्य परिस्थितियों से सामंजस्य बनाती है। टैगोर ने सा विद्या या विमुक्तये का समर्थन किया, उनके अनुसार शिक्षा केवल जन्म—मरण से मुक्ति नहीं देती वरन् वह आर्थिक, मानसिक, सामाजिक दासता से भी मुक्ति देती है।

> ***टैगोर का मत था— शिक्षा में आदान और प्रदान दोनों ही निहित है। सच्ची शिक्षा संग्रहीत ज्ञान के प्रयोग में है।***

Downloaded From www.dietmathura.org

उद्देश्य

- व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करना।
- बौद्धिक शक्ति का विकास करना।
- चरित्र का निर्माण करना।
- सार्वभौमिक नागरिकता का विकास करना।
- नैतिक व अध्यात्मिकता का विकास करना।
- व्यक्ति तथा समाज का सम्बन्ध स्थापित करना।

पाठ्यक्रम

उन्होंने व्यक्तित्व विकास के परिप्रेक्ष्य में व्यापक पाठ्यक्रम की वकालत की। उनके मत में साहित्य, इतिहास, भूगोल, विज्ञान, कला, संगीत प्रयोगशाला कार्य, आलेखन, पर्यटक नाटक, बागवानी, मौलिक रचना लेखन, संग्रहालय, खेलकूद, छात्र स्वशासन व समाज सेवा आदि का अध्ययन करने पर जोर देना चाहिए।

शिक्षण विधि

उनका मत था सीखने के लिए प्रकृति की गोद अपेक्षित है जहाँ बालक जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति को उन्होंने निम्नलिखित शिक्षण विधियों को अपनाने पर बल दिया—

- निरीक्षण द्वारा सीखना
- क्रिया द्वारा सीखना
- भ्रमण विधि द्वारा
- प्रकृति के अनुसरण द्वारा
- वाद—विवाद द्वारा

टैगोर का मत था— स्वतंत्रता के माध्यम से ही व्यक्तित्व का पूर्ण विकास सम्भव हो सकता है मैने ऐसे शिक्षकों की भर्त्सना की है जो प्रतिबन्ध के पक्षधर हैं क्योंकि प्रतिबन्ध स्वयं प्रकृति को पथभ्रष्ट होने को बाध्य करता है।

शिक्षक छात्र

गुरु—शिष्य सम्बन्ध में टैगोर वैदिक शिक्षा प्रणाली के हिमायती थे। दोनों के मध्य आत्मीयता का सम्बन्ध जरूरी है। गुरु मित्रवत बालक का मागदर्शन करे शिष्य गुरु की हर आज्ञा का पालन करें। उसके व्यवहार में विनम्रता होनी चाहिए है।

शिक्षक वास्तविक रूप से तब तक शिक्षण नहीं कर सकता जब तक वह स्वयं नहीं सीखता है। एक लैम्प दूसरे लैम्प को प्रकाश नहीं दे सकता, जब तक वह स्वयं न जलता रहे।

Downloaded From www.dietmathura.org

अनुशासन व दण्ड

वे कठोर अनुशासन के पक्षधर नहीं थे। अनुशासन का अर्थ है– स्वाभाविक अनुशासन। उन्होंने कहा भी अनुशासन का आधार वाह्य प्रभाव न होकर स्वेच्छा होना चाहिए। बच्चों पर दण्ड के प्रयोग से नहीं पढ़ाया जा सकता है।

परीक्षा

परीक्षा प्रणाली में रटन्त विद्या के वे घोर विरोधी थे। उनका मत था केवल घोल कर पिला देने की और परीक्षा में उगल देने की उक्तियाँ निकाली जाती है। इससे सहस्रो छात्रों का स्वास्थ्य बिगड़ जाता है बौद्धिक विकास नहीं हो पाता है। परीक्षा वास्तविक रूप में बालक का मूल्यांकन करने वाली होनी चाहिए।

स्त्री व जनसामान्य शिक्षा

स्त्री शिक्षा के प्रसार में टैगोर का मत था विशुद्ध ज्ञान के क्षेत्र में पुरुष और स्त्री की शिक्षा में कोई भेद नहीं, व्यवहारिक उपयोगिता के क्षेत्र में अन्तर हो सकता। जनसामान्य शिक्षा तभी ले सकते हैं जब माध्यय मातृभाषा हो और शिक्षा अनिवार्य व निःशुल्क हो। विश्व कवि टैगोर की शिक्षा को अनोखी देने थी–विश्व भारती की स्थापना 06 मई 1922 को रवीन्द्र नाथ टैगोर ने शान्ति निकेतन विद्यालय में विश्वभारती की स्थापना की मकसद था– प्राच्य व पाश्चात्य संस्कृति का समन्वय करके विश्वबन्धुत्व की भावना का विकास।

विश्व भारती में 10 विभाग कार्यरत थे विनय भवन, शाला भवन, पथ भवन, शिक्षा भवन, कला विभा, शिल्प भवन, संगीत भवन, चीन श्री निकेतन, भवन, हिन्दी भवन था।

विशेषताएं–

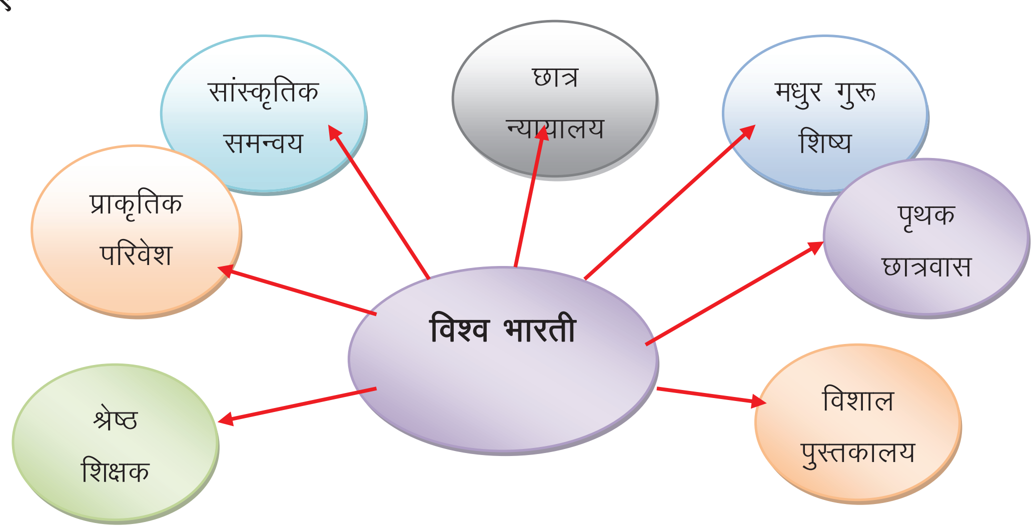

Downloaded From www.dietmathura.org

प्रशिक्षु विश्व भारती में दी जा रही शिक्षा व्यवस्था का भ्रमण करें क्लिपिंग तैयार करके निर्धारित करें कि यह अन्य विद्यालयी वातावरण से किस प्रकार पृथक है ?

उपर्युक्त चर्चा से हमने जाना

- शिक्षा से जन्मजात क्षमताओं का विकास होना चाहिए।
- शिक्षण विधियाँ वास्तविक परिस्थितियों से सम्बन्धित हो।
- बालक की मातृभाषा में शिक्षा हो।
- वातावरण शान्त व प्रेरणात्मक हो।
- शिक्षा का सम्बन्ध जीवन से जरूर हो।
- इसी तरह प्रशिक्षु छात्र समूह से चर्चा करके अन्य बिन्दुओं को जोड़े ....

बोध प्रश्न

- विश्वकवि टैगोर को प्रकृतिवादी क्यों कहा जाता है ?
- शान्ति निकेतन की स्थापना के पीछे क्या उद्देश्य थे ?
- विश्व भारती विश्वविद्यालय की अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के क्या–क्या कारण थे ?

Downloaded From www.dietmathura.org

गिजू भाई

बाल समस्या को शिक्षा दर्शन में प्रमुख स्थान देने वाले विचारकों में गिरजाशंकर भगवान जी बधेका का अमूल्य योगदान रहा है। इस महान विचारक का जन्म 15.10.1885 को सौराष्ट्र के चितल गाँव में हुआ था, इनके पिता का नाम श्री भगवान जी बघेला व माता श्री काशीवा थी। माता–पिता के धार्मिक स्वाभाव का प्रभाव बालक गिजू भाई पर भी पड़ा।

उनकी प्रारम्भिक शिक्षा विद्यालयों में सम्पन्न हुई, मुम्बई से कानून की शिक्षा पूर्ण करके मुम्बई हाइकोर्ट में वकालत करना शुरू किया, राष्ट्रीय आन्दोलनों से प्रभावित होकर वकालत छोड़कर दक्षिणामूर्ति विद्यार्थी भवन नामक संस्था की आजीवन सदस्यता ग्रहण कर बच्चों की व्यवहारिक समस्याओं का अध्ययन करना शुरू किया।

1920 में गिरिजा शंकर भगवान जी बधेका जी ने दक्षिणमूति विद्यार्थी भवन बाल मंदिर नामक भवन बनवाया जिसमें उन्होंने ढाई वर्ष से 6 वर्षीय आयु के बच्चों को अपने शैक्षिक विचारों एवं सिद्धान्तों के अनुरूप शिक्षा देना प्रारम्भ किया।

डॉ0 मारिया मॉन्टेसरी का गिज्जू भाई पर विशेष प्रभाव था उन्होंने भावनगर में मान्टेसरी संघ की स्थापना की।

गिरिजाशंकर भगवान जी बधेका का मानना था शिक्षक ही बालकों का मार्गदर्शक है उनका प्रशिक्षित होना अनिवार्य है।

शिक्षा दर्शन

गिजू भाई एक शिक्षक, लेखक में कई एवं दार्शनिक भी थे उनकी शैक्षिक विचारधारा में कई आयाम थे।

शिक्षा का अर्थ

गिज्जू भाई शिक्षा को बालकेन्द्रित के रूप में मानते थे, यह एक शैक्षिक उपागम है जिसमें बालक की स्वयं की रूचियाँ वाहय अधिकारी की अपेक्षा पाठ्यक्रम व प्रक्रियाओं को निर्धारित करने में एकमात्र सार्थक भूमिका निभाती है। बालक पुस्तकों एवं विषय–क्षेत्रों से एक मात्र सीखने की अपेक्षा अपने स्वयं के यथार्थ व मूर्त अनुभवों की पुनर्रचना में संलग्न रहता है।

शिक्षा का उद्देश्य

- बालक का समुचित शारीरिक विकास करना।
- बालक की मानसिक एवं सृजनात्मक शक्तियों को विकास करना।
- बालक में नैतिक मूल्यों का विकास करके कुशल नागरिक बनाना।

Downloaded From www.dietmathura.org

पाठ्यक्रम– शैक्षिक उद्देश्यों को मूर्त रूप में बदलने के लिए गिज्जू भाई ने पाठ्यक्रम पर गम्भीरता से विचार किया–

भाषा ज्ञान मातृभाषा से प्रारम्भ किया जाय, अक्षर ज्ञान, पढ़ना, लिखना सिखाया जाय।

इन्हें भी जानें

रचनाएं *दिवास्वप्न, ऊँट के पैर सड़े, काली गौरेया, तड़तड़ तड़ाक, बिल्ली के गले में घंटियां* *बुढ़िया के तेहस बच्चे, भूत का भाई, मूर्ख, ब्राह्म्ण, मेढक की शादी चलते फिरते शिक्षा गूजे है शिक्षक प्राथमिक विद्यालय में शिक्षा।*

- अंकों का ज्ञान एवं पहचान।
- प्रारम्भिक स्तरीय संगीत व फूलों के चित्र बनाना, रंग भरना।
- वृक्ष, नदी, वनस्पतियाँ पर्वत का निरीक्षण करना।
- स्वास्थ्य सम्बन्धी सामान्य जानकारी देना।
- धार्मिक व्यक्तियों एवं महापुरुषों की जीवनी एवं प्रेरक प्रसंगों का अध्ययन करने पर जोर दिया।

शिक्षण विधि

चूंकि गिज्जू भाई फ्रोबेल एवं मारिया मान्टेसरी के शिक्षा दर्शन से प्रभावित थे अतएव उन्होंने शिक्षण की निम्नांकित विधियों के अनुसरण पर बल दिया–

- खेल विधि द्वारा सीखना
- क्रिया द्वारा सीखना
- कहानी व नाटकों के द्वारा सीखना

भाषा शिक्षा में सबसे पहले पढ़ना फिर लिखना, सीखाया जाय लेखन में सबसे पहले रेखाएं बनाना सिखाया जाय, कविता शिक्षण लोकगीतों के माध्यम से तथा व्याकरण की शिक्षा अलग से ने देकर पाठ शिक्षण के साथ–साथ हो, आकृतियों के माध्यम से वर्ण ज्ञान व श्रुतलेख कराया जाय आदि।

शिक्षक–छात्र सम्बन्ध

शिक्षक एक पुजारी सदृश है, छात्र देव हैं, उन्होंने ''बाल देवो भव'' का सूत्र वाक्य प्रतिपादित किया। शिक्षकों में बच्चों के प्रति प्रेम, स्नेह, त्याग, सेवाभाव तथा मनोविज्ञान का भी ज्ञान होना चाहिए।

विद्यालय

उनके मत में विद्यालय एक मन्दिर है वहाँ का वातावरण सौहार्द्रपूर्ण व उल्लासमय होना चाहिए। यहाँ बच्चों को ममत्व व पिता की छत्रछाया में पनपने का मौका दिया जाना चाहिए।

रोचक तथ्य– *गिजू भाई, अपने बाल छात्रों के बीच मूँछों वाली माँ के रूप में पहचाने जाते थे।* *गिजू भाई आग के गोले के सामान थे यही कारण है कि जो कोई भी उनके पास पहुंचता था उसे वे*

Downloaded From www.dietmathura.org

सुलगा देते थे। जिस तरह ज्योति से ज्योति जलती है। उसी तरह जहाँ भी वह जाते थे उन लोगों को अपने विचारों की छूत लगाकर लौटते थे– ***तारा बहन मोडक***

अनुशासन

गिज्जू भाई दमनात्मक अनुशासन के घोर विरोधी थे। इसलिए उन्होंने अपने बाल मन्दिर में स्वानुशासन पर अधिक जोर दिया था। उनके बालमन्दिर का नियम था कि बच्चों को न तो डांटे, न झिड़के, न ही शारीरिक दण्ड दें।

समीक्षा

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि गिज्जू भाई ने शिक्षा जगत में विद्यालय, छात्र एवं शिक्षक को नये क्षितिज प्रदान किए। यदि उनके विचारों का आधुनिक शिक्षा में उपयोग किया जाता है तो निश्चित रूप से शिक्षा की नयी तस्वीर प्रस्तुत हो सकती है।

प्रशिक्षु स्वयं सोंचे

कि बालक बाल मंदिर या औपचारिक रूप से गठित विद्यालयों में से किसमें पढ़ना पसन्द करेंगा। एक सर्वेक्षण करें तथा एकत्रित तथ्यों पर चर्चा करें।

बोध प्रश्न

- गिज्जू भाई ने शिक्षा में क्या–क्या नवीन प्रयोग किए ?
- भाषा की शिक्षा में गिज्जू भाई के क्या विचार थे ?

Downloaded From **www.dietmathura.org**

महात्मा गाँधी

भारत में स्वस्थ राजनीति का नेतृत्व करने वाले राष्ट्रपिता महत्मा गाँधी ने केवल दार्शनिक, लेखक थे वरन् एक महान शिक्षाविद् भी थे उनकी शैक्षिक विचारधारा के मूल में भारतीय संस्कृति थी **जैसाकि उनका मत था–** तत्कालीन वर्तमान शिक्षा विदेशी संस्कृति पर आधारित है, और भारतीय संस्कृति को इसने पूर्णतया बहिष्कृत कर दिया है। इसका एकमात्र उद्‌देश्य मानसिक विकास करना है। इसका हृदय पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है और इसमें हाथ के कार्य का कोई स्थान नहीं है। इसमें माध्यम अंग्रेजी है और वास्तविक शिक्षा विदेशी माध्यम द्वारा असम्भव है।

महात्मा गाँधी का जन्म 2 अक्टूबर 1969 को कठियावाड़ के पोरबन्दर में एक समृद्ध परिवार में हुआ था पिता करमचन्द्र एक प्रतिष्ठित वकील थे माता पुतलीबाई धार्मिक प्रवृति की गृहस्थ महिला थीं। पाठशाला से प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करके उच्च शिक्षा हेतु वे इंग्लैण्ड चले गए वहाँ इन्होंने कानून की शिक्षा प्राप्त की और भारत आकर वकालत शुरू की। 1893 में मुकदमें के लिए दक्षिण अफ्रीका गये और भारतीयों की दशा से द्रवित हो का समान सुधार का संकल्प लिया।

1914 में भारत लौटे एवं भारत की स्वतन्त्रता को मुख्य लक्ष्य मानकर राजनीति में प्रवेश किया सत्याग्रह के शस्त्र से अनेकानेक आन्दोलन में सक्रिय भागीदारी की और भारतीय जनमानस में ***राष्ट्रपिता*** की छवि के रूप में उभरे। उनकी सफलता का प्रमाण असहयोग आन्दोलन, भारत छोड़ो आन्दोलन था जिसने अंग्रेजों को भारत से जाने पर मजबूर कर दिया। इस प्रकार निरन्तर सामाजिक विसंगतियों से संघर्ष करते एवं राजनैतिक नेतृत्व प्रदान करते हुए, वे 30 जनवरी 1948 को पंचतत्व में बिलीन हो गए।

रचनाएं

- हिन्द स्वराज
- नीतिधर्म
- बेसिक शिक्षा
- नई शिक्षा की ओर
- मेरी आत्मा की वेदना
- हिन्दू धर्म
- शांति, युद्ध में अंहिसा

महत्वपूर्ण तथ्य

- 1914 में टालस्टाय आश्रम की स्थापना की।
- 1915 में साबरमती आश्रम की स्थापना की।
- 1930 में नमक सत्याग्रह किया।
- 1919 में सत्याग्रही पत्रिका का सम्पादन शुरू किया।
- यंग इण्डिया, हरिजन, भूदान यज्ञ, उनके सम्पादित पत्र थे

शिक्षा का अर्थ

गाँधी जी के अनुसार शिक्षा से ***मेरा तात्पर्य*** बालक और मानव शरीर, मस्तिष्क और आत्मा में श्रेष्ठतम को समग्र रूप में बाहर निकालना है।

Downloaded From www.dietmathura.org

स्पष्ट है कि राष्ट्रपिता शिक्षा को मानव का अध्यात्मिक बौद्धिक, शारीरिक योग्यताओं को वाह्य रूप में प्रकट करने वाली प्रेरक शक्ति मानते थे।

शिक्षा के उद्देश्य

आत्मनिर्भरता शिक्षा का मुख्य परिणाम हो, इसे दृष्टिगत रखकर गाँधी जी ने व्यवसायिक शिक्षा को विशेष महत्व दिया। *उनका कहना था, शिक्षा को बेरोजगारी के विरूद्ध एक प्रकार का बीमा होनी* चाहिए।'' जब समाज का प्रत्येक व्यक्ति आत्मनिर्भर होगा तभी समाज खुशहाल हो सकता है। पुनः गाँधी जी ने लिखा *14 वर्ष की आयु पर बालक 7 वर्षीय कोर्स को पूर्ण करने के पश्चात कमसे वाली इकाई* हो जाना चाहिए, अब गरीब बच्चे अपने माता–पिता के सहायतार्थ स्वयमेव आगे आते है उनके मस्तिष्क के पीछे से अनुभूति होती है मेरे माता–पिता क्या खाएंगे और क्या वे मुझे खाने में देगे। इसलिए शिक्षा का सीधा सम्बन्ध जीविकोपार्जन से होना चाहिए।

प्रशिक्षु चर्चा करें– वर्तमान समय में शिक्षा किस सीमा तक उत्पादक होनी चाहिए?

सांस्कृतिक उद्देश्य

प्रत्येक भारतीय के व्यवहार में संस्कृति परिलक्षित होनी चाहिए इसलिए गाँधी जी शिक्षा को संस्कृति से जोड़ने वाली कड़ी मानते थे। *उनका मत था– मैं साक्षरता की अपेक्षा शिक्षा के सांस्कृतिक पक्ष को अधिक महत्व देता हूँ संस्कृति नींव है, प्राथमिक वस्तुएं हैं।*

चारित्रिक विकास

गांधी जी का मानना था समस्त ज्ञान का परिणाम चरित्र निर्माण होना चाहिए। शिक्षा में उन सभी बातों को शामिल किया जाये जो व्यक्ति को सदाचारी बनाएं। उन्होंने कहा यदि हमसे कोई पूछे कि जब भारत स्वतन्त्रता प्राप्त कर लेगा आपका शिक्षा के सम्बन्ध में उद्देश्य क्या है, तो मेरा उत्तर होगा *चरित्र निर्माण।*

गतिविधि

आज बच्चों के पाठ्यक्रम में महापुरूषों की जीवनी, कथा, सुन्दर वाक्यों को शामिल करना क्यों जरूरी हैं ....

अध्यात्मिक विकास

गाँधी जी का दर्शन सत्य व ईश्वर पर आधारित था उनका मानना था शिक्षा ऐसी हो जो बच्चों को परम सत्ता से जोड़े उन्हें उनके स्वरूप के बारे में जानकारी दे।

Downloaded From www.dietmathura.org

पाठ्यक्रम

यह सर्वविदित है शैक्षिक उद्देश्यों की पूर्ति पाठ्यविषयों के शिक्षण द्वारा ही सम्भव है गाँधी जी बालक का सर्वतोमुखी विकास चाहते थे इसलिए उन्होंने जिस पाठ्यक्रम की रूपरेखा बनायी वह एकांगी नहीं थी। उनके प्रस्तावित पाठ्यक्रम के अनुसार बच्चों को हस्तशिल्प, चर्मकार्य, गृहविज्ञान, संगीत, गणित, कताई–बुनाई, बागवानी, कृषि, मातृभाषा, मत्स्यपालन, स्वास्थ्य विज्ञान, व्यायाम, खेलकूद का ज्ञान अवश्य कराया जाय।

उनके मत में– मैं बच्चों की शिक्षा एक उपयोगी हस्तशिल्प के शिक्षण से आरम्भ करना चाहूँगा। मुझे विश्वास है कि मन व आत्मा का उच्चतम विकास शिक्षा की इस व्यवस्था के अन्तर्गत सम्भव है।

शिक्षण विधि

महात्मा गाँधी तत्कालीन प्रचलित शिक्षणविधियों से सन्तुष्ट नही थे उनका मानना था कि शिक्षण विधि ऐसी हो जिसमें बालक–

- सक्रिय हों
- निरीक्षण करें
- प्रयोग करें
- अनुसंधान/स्वाध्याय करे

और अन्त में उसे व्यवहार/आचरण में आत्मसात कर लें। शिक्षक को, बच्चों पर पुस्तकीय बोझ लादना। नहीं चाहिए, प्रश्नोत्तर, वाद–विवाद, भाषण, भ्रमण स्थानीय उद्योग के माध्यम से पढ़ाना सर्वोचित है। शिक्षा का माध्यम मातृभाषा हो, उनका मत था बच्चे के मानसिक विकास के लिए मातृभाषा उसी प्रकार आवश्यक है, जिस प्रकार बालक के शारीरिक विकास के लिए माता का दूध।

अनुशासन

गाँधी जी दमनात्मक के बजाए प्रभावात्मक अनुशासन के पक्ष में थे। उत्तम आचरण व उदाहरण बच्चों में सही आदतों का विकास करते है। नकारात्मक व शारीरिक दण्ड से बच्चों एवं शिक्षकों में आत्मीयता का सम्बन्ध नहीं जुड़ सकेगा जी प्रभावी शिक्षण के लिए बहुत जरूरी है।

शिक्षक

शिक्षक से गाँधी जी की अपेक्षा थी कि वह विद्वान व सदाचारी हो अपने विषय के प्रति प्रवीणता के साथ–साथ उसमें मानवीयता भी अवश्य हो ताकि वह छात्रों का योग्य मार्गदर्शक बन सके।

छात्र

बालक शिक्षा का केन्द्रबिन्दु है। उसे स्वाध्यायी व लगनशील होना जरूरी हो छात्रों को सदैव सादा जीवन व उच्च विचार रखना चाहिए।

Downloaded From www.dietmathura.org

स्त्री शिक्षा

गांधी जी स्त्रियों की शिक्षा के प्रबल पक्षधर थे उनके अनुसार एक शिक्षित स्त्री सभ्य समाज की रचना करने में सक्षम होती है वह अपने सामाजिक एवं सांस्कृतिक दायित्वों को वहन करने में सदैव तत्पर रहती है।

जन शिक्षा

गाँधी जी देश की गरीबी से परिचित थे इसलिए शिक्षा की मुख्य धारा से वंचित भारतीय जनों के लिए प्रौढ़ शिक्षा की व्यवस्था का सुझाव दिया।

धार्मिक शिक्षा

गांधी जी का जीवन दर्शन धर्म से अनुप्राणित था उनका मानना था कि धर्म रहित जीवन रडार रहित पानी के जहाज के समान है। लेकिन वह संप्रदायिकता के खिलाफ थे, इसलिए शिक्षा ऐसी हो जिसमें सभी धर्मो के सामान्य सिद्धान्तों को स्थान मिले।

सह शिक्षा

गाँधी जी सह शिक्षा के बारे में खुले विचारों के थे उनके अनुसार निम्न प्राथमिक व उच्च प्राथमिक स्तर तक सहशिक्षा जरूरी है किशोरावस्था में माता–पिता के लिए विकल्प है कि वे अलग–अलग विद्यालयों में अपने बालक–बालिका को शिक्षा दिलवाये।

उन्होंने कहा– सह शिक्षा का प्रश्न खुला छोड़ दिया गया है यह समय की भावना के अनुसार स्वयं नियमित हो जायेगा।

प्रशिक्षु चर्चा करे
वर्तमान परिदृश्य में सहशिक्षा का किस स्तर से अनिवार्य होना जरूरी है और क्यों?

महात्मा गाँधी प्रयोगवादी थे उन्होंने अपने शैक्षिक दर्शन को मूर्त प्रदान करने के लिए 1937 में वर्धा शिक्षा सम्मेलन में बुनियादी/नये तालीम शिक्षा योजना को प्रस्तावित किया। इसके पीछे उनका तर्क था– ***वर्तमान ब्रिटिश शिक्षा विदेशी संस्कृति पर आधारित है और भारतीय संस्कृति को इसने पूर्ण*** बहिष्कृत कर दिया है। इसका मन, हृदय पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। इसमें हाथ के कार्य का कोई स्थान नहीं है।

उन्होंने नयी ***तालीम शिक्षा का अर्थ*** स्पष्ट करते हुए कहा हमारी बुनियादी शिक्षा पद्धति मस्तिष्क ***शरीर, आत्मा तीनों का विकास करती है। जब तक शिक्षा इन तीन शक्तियों का सामंजस्य युक्त विकास नहीं होता तो इसका कोई मूल्य नहीं।***

उन्होंने जिस बेसिक शिक्षा की रूपरेखा खींची उसकी विशेषताएं इस प्रकार है–

Downloaded From **www.dietmathura.org**

- बच्चों को शिक्षा अनिवार्य व निःशुल्क रूप में दी जाए।
- बच्चों को ही शिक्षा प्रणाली का मूलकेन्द्र बिन्दु समझा जाए।
- बच्चों को शिक्षा उनकी मातृभाषा के माध्यम से दी जाए।
- बच्चों की जो भी शिक्षा दी जाए वह हस्तशिल्प के माध्यम से दी जाए।
- पूरी शिक्षा स्वावलम्बी हो।
- बच्चों को अपने कार्य की पूर्ण स्वतन्त्रता हो

उपर्युक्त चर्चा से स्पष्ट है कि महात्मा गांधी ने एक मानवतावादी व्यवहारिक विचार के रूप में तत्कालीन शिक्षा व्यवस्था के दोषों को दूर करके शिक्षा का भारतीयकरण करने में महत्वूर्ण भूमिका निभाई यदि उनके शिक्षा सिद्धान्त उस समय से लागू होते तो आज की भ्रमित शिक्षा कार्यक्रम अनेकों विसंगतियों का शिकार न होता।

अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न

दिये गये विकल्पों में सही का चयन करें–

1. विवेकानन्द ने जन शिक्षा के लिए संस्था स्थापित की–

(क) ब्रहम समाज, (ख) रामकृष्ण समाज (ग) आर्य समाज (घ) वेदान्त समाज।

2. टैगोर जी द्वारा रचित पुस्तक थी–

(क) हिन्द स्वराज (ख) गीतांजलि (ग) शिक्षा दर्शन (घ) उपर्युक्त में से कोई नही।

3. गांधी जी द्वारा प्रस्तावित बेसिक शिक्षा कहलाती थी।

(क) नई तालीम (ख) बुनियादी शिक्षा (ग) मूल शिक्षा (घ) उपर्युक्त सभी।

4. बालकेन्द्रित शिक्षा के प्रवर्तक थे

(क) महात्मा गांधी (ख) गिज्जू भाई (ग) विवेकानन्द (घ) रवीन्द्र नाथ टैगोर।

दीघउत्तरीय प्रश्न

1. रवीन्द्र नाथ टैगोर एवं महात्मा गांधी जी के शैक्षिक विचारों को कितनी सीमा तक समेकित किया जा सकता है? समीक्षा करिए ?
2. स्वामी विवेकानन्द ने शारीरिक सबलता को शिक्षा का प्राथमिक लक्ष्य क्यों माना, भारतीय परिस्थितियों में यह कितना जरूरी है?

सत्रीय कार्य

- वर्तमान प्रचलित शैक्षिक योजनाओं में हस्तशिल्प व उद्योगों को कितना स्थान दिया गया तथा उसकी प्रासंगिकता पर अपने विचार लिखें।

Downloaded From www.dietmathura.org

पाश्चात्य शैक्षिक विचारक

प्लेटो

महान दार्शनिक, राजनीतिज्ञ, गणितज्ञ, समाज सुधारक एवं शिक्षाशास्त्री प्लेटो का जन्म 427 ई0पू0 एथेन्स में हुआ था। उसके पिता का नाम एरिक्दोन था। प्लेटों कुशल खिलाड़ी तथा सिपाही था। साहित्य में भी उसकी पर्याप्त रूचि थी। बीस वर्ष की अवस्था में वह सुकरात के सम्पर्क में आया और आठ वर्ष तक उसने सुकरात के निर्देशन में अध्ययन किया। 399 ई0पू0 में सुकरात को दिये जाने वाले प्राणदण्ड से उसको इतनी गहरी मानसिक वेदना हुई कि वह अपना देश छोड़कर एक लम्बी यात्रा पर निकल गया। अपने समय को उसने विभिन्न देशों के भ्रमण, अध्ययन, मनन लेखन आदि में व्यतीत किया। इस यात्रा के पश्चात् वह अपने देश वापस आया 367 ई0पू0 से अपनी मृत्यु तक एकेडमी में अध्ययन कार्य करता रहा। एकेडमी का द्वार स्त्री, पुरुषों दोनों के लिए खुला हुआ था। उसने इस संस्थान में लेखन कार्य भी किया। 347 ई0पू0 में 80 वर्ष की अवस्था में इस महान दार्शनिक एवं शिक्षा विचारक का देहान्त हो गया।

शिक्षण बिन्दु

संक्षिप्त परिचय

- शिक्षा का अर्थ
- शिक्षा के उद्देश्य
- पाठ्यक्रम
- शिक्षण विधि
- शिक्षक
- शिक्षार्थी
- विद्यालय
- अनुशासन

प्लेटों की रचनाये

दि रिपब्लिक, एपॉलाजी, क्रिटियाज,
दि स्टेटमैन, प्रोटोगोराज, दि लाज, क्राइटो

प्लेटो के शैक्षिक विचार

प्लेटो ने शिक्षा को एक महान वस्तु माना है। उसने अपने ग्रन्थ 'दि लॉज' में लिखा है–''शिक्षा प्रथम तथा श्रेष्ठतम वस्तु है जिसे सर्वोत्तम मनुष्य ही प्राप्त कर सकते हैं।'' प्लेटो राज्य के स्थायित्व के लिए शिक्षा को वास्तविक साधन मानता है। उसके अनुसार, समाज के नागरिकों के चरित्र को नियमों द्वारा सुधारना व्यर्थ है। इसके लिए शिक्षा का होना परम आवश्यक है। दूसरे शब्दों में शिक्षा ही उत्तम चरित्र का निर्माण कर सकती है।

Downloaded From www.dietmathura.org

शिक्षा का अर्थ

प्लेटो के अनुसार शिक्षा–''नैतिक प्रशिक्षण की प्रक्रिया है। वह शिक्षा को सद्गुणों (बुद्धिमता, साहस, संयम, तथा न्याय) को प्रकट करने वाली प्रक्रिया मानता है। प्लेटो ने शिक्षा के अर्थ को स्पष्ट करते हुए लिखा है''–''शिक्षा से अभिप्राय उस प्रशिक्षण से है जो बालकों को उचित आदतों के निर्माण द्वारा सद्गुण की प्रथम प्रवृत्ति उत्पन्न करता है जो आप में जीवन के आरम्भ से अन्त तक उस वस्तु के प्रति घृणा उत्पन्न करता है, जिससे आपको घृणा करनी चाहिए और उस वस्तु के प्रति प्रेम उत्पन्न करता है जिससे आपको प्रेम करना चाहिए। मेरी दृष्टि में यही सच्ची शिक्षा है।''

शिक्षा के उद्देश्य

प्लेटो के अनुसार शिक्षा का मुख्य उद्देश्य पूर्णता की अवस्था को प्राप्त करना है। उनके अनुसार शिक्षा का समस्त कार्य आत्मा में ज्ञान को रखना नहीं है, वरन् उन सर्वोत्तम गुणों को बाहर निकालना है, जो आत्मा में अन्तर्निहित हैं और यह कार्य आत्मा को लक्ष्यों की ओर निर्देशित करके हो सकता है।

इस प्रकार शिक्षा की समस्या आत्मा को उचित वातावरण प्रदान करना है। संक्षेप में प्लेटो के अनुसार शिक्षा के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित है–

- राज्य की एकता की रक्षा करना।
- गुणों अथवा नागरिक दक्षता का विकास करना।
- सौन्दर्यात्मक संवेदनशीलता का विकास करना।
- सत्यं शिवं सुन्दरं के प्रति प्रेम उत्पन्न करना तथा अनुभूति प्राप्त करना।
- व्यक्ति के व्यक्तित्व का सामंजस्यपूर्ण विकास करना।
- बालकों को सामंजस्यपूर्ण जीवन व्यतीत करने के लिए तैयार करना।
- स्वशासित व्यक्तियों का निर्माण करना।

पाठ्यक्रम

पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में प्लेटो ने शिक्षा को तीन भागों में बाँटा है, एवं तथा उसके अनुरूप पाठ्यक्रम निर्धारण पर बल दिया है।

Downloaded From www.dietmathura.org

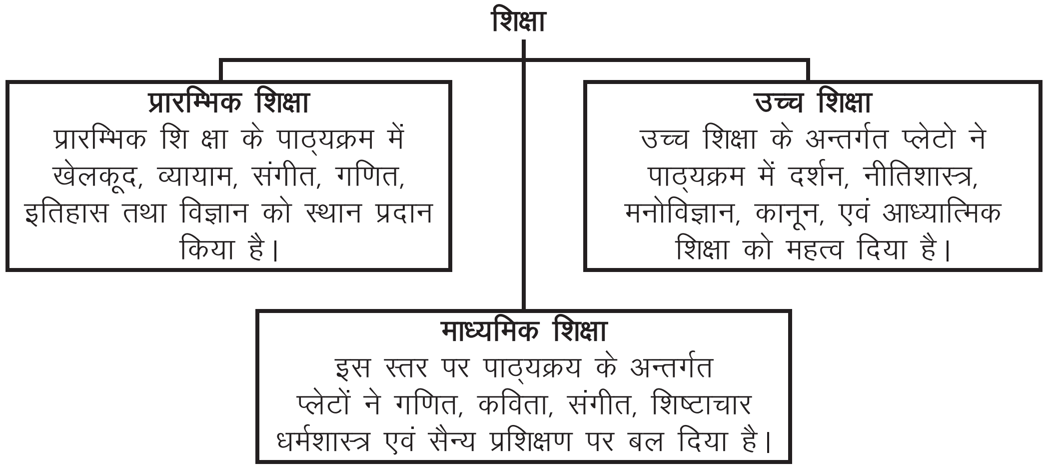

शिक्षण विधि

प्लेटो ने शिक्षण विधि में अपने गुरू सुकरात की संवाद विधि को ही अपनाया था। संवाद से तात्पर्य विचारवान व्यक्तियों का वाद–विवाद या तर्कयुक्त स्पष्टीकरण से है। इसके अलावा प्लेटों ने बच्चों की शिक्षा के लिए 'खेल विधि', अनुकरण विधि एवं कहानी विधि को अपनाने पर बल दिया था। उच्च शिक्षा पर प्लेटों ने स्वाध्याय विधि तथा वार्तालाप विधि को स्वीकार करने पर बल दिया था। इसके साथ ही प्लेटो ने उच्च शिक्षा पर सम्यक् ज्ञानार्जन के लिए चिन्तन, मनन, एवं ध्यान को भी विशेष महत्व दिया ताकि इस स्तर के विद्यार्थी सत्य की खोज कर सके।

शिक्षक

प्लेटों ने शिक्षक के विषय में अलग से कही कुछ नहीं लिखा है क्योंकि स्वयं द्वारा स्थापित एकेडमी में स्वयं शिक्षक के रूप में कार्य करते हुये उसने अपने को एक आदर्श शिक्षक के रूप में प्रस्तुत किया था। इस कारण उसने अपेक्षा की थी कि सभी शिक्षकों में आदर्श गुणों का समावेश होना चाहिए और शिक्षक के रूप में अपने कर्त्तव्यों को निष्ठा, लगन एवं ईमानदारी से करना चाहिए जिससे दूसरे लोग अनुसरण कर सके।

> ***प्रशिक्षु चर्चा करें***
>
> *एक अच्छे शिक्षक में कौन–कौन से गुण होने चाहिए।*

अनुशासन

प्लेटो दण्डात्मक अनुशासन के समर्थक प्रतीत होते है। इसलिए वे बालक (छात्र) से अपेक्षा करते है कि वह शिक्षक के आदेशों का अनुपालन करे। यदि छात्र अनुशासनहीनता करे तो शिक्षक को उसे दण्डित करना चाहिए। प्लेटो का विश्वास था कि कठोर नियन्त्रण एवं अनुशासित जीवन जीने से ही

Downloaded From www.dietmathura.org

सद्‌गुणों का विकास सम्भव है। उनका मानना था कि बालक का जब तक पर्याप्त बौद्धिक विकास सम्भव न हो तब तक उसे बड़ों के निर्देशन में रहना चाहिए। सामाजिक अनुशासन के लिए उसने सामुदायिक तथा सहयोगी जीवन के साथ आदेशात्मक अनुशासन का भी समर्थन किया है।

विद्यालय

प्लेटो अपने गुरु सुकरात की भाँति यूनान के युवकों को सड़को पर धूम–धूम कर शिक्षा देने का समर्थक नहीं था। उसने 'एकेडमी' नामक संस्था को शिक्षा प्रदान करने का केन्द्र बनाया। इस संस्था अथवा शिक्षा केन्द्र के सम्बन्ध में व्यक्त किये गये विचारों से स्पष्ट होता है कि यह निश्चित स्थान पर शिक्षा प्रदान करने का समर्थक था। उसने विद्यालय को मानवीकरण तथा समाजीकरण करने वाली संस्था माना है, जिसका प्रमुख कार्य बालकों को सहयोगी एवं सामाजिक तथा सामुदायिक जीवन व्यतीत करने की कला सिखाना है तथा उसमें मानवीय गुणों का विकास करना है। इन विद्यालयों का प्रमुख कार्य यही होना चाहिए जिससे से सफल जीवन व्यतीत कर सके।

अभ्यास प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न.1 आधुनिक शिक्षा सिद्धान्तों को ध्यान में रखते हुए प्लेटों के शैक्षिक विचारों का मूल्यांकन कीजिए?

लघुउत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 2. प्लेटो के अनुसार पाठ्यक्रम का वर्णन कीजिए ?

प्रश्न 3. प्लेटों के अनुसार शिक्षा के क्या कार्य है ?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

सही विकल्प का चयन करो–

1. प्लेटो ने मुख्य रूप से किस शिक्षण विधि का प्रतिपादन किया है

   (क) प्रश्नोत्तर विधि

   (ख) संवाद विधि

   (ग) व्याख्यान विधि

2. प्लेटो ने अनुशासन के किस रूप का समर्थन किया है–

   (क) दण्डात्मक अनुशासन

   (ख) प्रभावात्मक अनुशासन

   (ग) मुक्त्यात्मक अनुशासन

Downloaded From www.dietmathura.org

रूसो

शिक्षा धर्म साहित्य और राजनीति पर अपनी सबल और मौलिक प्रतिभा की छाप छोड़ने वाले जीन जैक्स रूसों का जन्म 1712 ई0 में जेनेवा में हुआ था। उसके पिता एक घड़ीसाज थे। उसके जन्म के बाद ही उसकी माता का देहान्त हो गया था। अतः उसकी चाची ने उसका पालन पोषण किया था। उसके पिता ने उसकी ओर बहुत कम ध्यान दिया। 6 वर्ष की अवस्था से ही वह उपन्यास पढ़ने लगा था, जिन्होंने उसकी मूल प्रवृत्तियों एवं आत्माभिव्यक्ति की भावना को उद्दीप्त किया।

रूसों को विद्यालय की शिक्षा अपनी ओर आकृष्ट न कर सकी, क्योंकि उस समय की विद्यालय शिक्षा में कठोरता बहुत अधिक थी। इसके अतिरिक्त विद्यालय में अनुशासन की स्थापना हेतु कठोर दण्ड दिया जाता था। इन परिस्थितियों का रूसों के शैक्षिक विचारों पर बहुत प्रभाव पड़ा।

निरूद्देश्य और आवारागर्दी का जीवन व्यतीत करने के कारण समाज ने रूसों पर झूठे आरोप लगाये जिनसे क्षुब्ध होकर वह फ्राँस चला गया। वहाँ जाकर बीमार पड़ गया। इसी बीमारी में उसकी साहित्यिक अध्ययन की ओर रूचि बढ़ी। उसने लॉक, प्लेटो, हॉब्स, वाल्तेयर आदि के ग्रंथों का अध्ययन किया तथा स्वयं भी लेखक बनने के लिए प्रयास किया। इसी प्रयास काल में उसे एक प्रकार की अन्तर्दृष्टि प्राप्त हुई और उसने 1750 ई0 से लेखन कार्य प्रारम्भ किया।

रचनाएँ

- एमील
- सोशल कान्ट्रैक्ट
- द प्रोग्रेस ऑफ आर्दस एण्ड साइंस
- द ऑरिजिन ऑफ इनइक्विलिटी एमंग मैन
- द न्यू हेलो

इस महान युग प्रवर्तक शिक्षा सुधारक, राजनीतिक विचारक, समाज सुधारक तथा आधुनिक प्रजातन्त्र के जनक का सन् 1778 ई0 में देहान्त हो गया।

रूसों के शैक्षिक विचार

रूसों ने तत्कालीन शिक्षा की आलोचना करते हुये उसे कृत्रिम बताया था। उसने शिक्षा में सुधार के लिए प्राकृतिक सिद्धान्तों एवं विचारों का प्रतिपादन किया था। वह बालक को ऐसी शिक्षा देने का पक्षपाती था जो उसके मस्तिष्क, मन और शरीर का स्वतन्त्र विकास करें। रूसों के शैक्षिक विचारो का विवरण इस प्रकार है–

शिक्षा का अर्थ

रूसों प्रकृतिवादी विचारक था और उसकी शिक्षा निषेधात्मक थी। वह 12 वर्ष की आयु तक बालक को औपचारिक शिक्षा देने के पक्ष में नहीं था। उसने बालक को शिक्षा प्रक्रिया का केन्द्र एवं

Downloaded From www.dietmathura.org

मुख्य अंग बताया। रूसों के अनुसार शिक्षा को बालक की स्वाभाविक शक्तियों एवं योग्यताओं का विकास करना चाहिए। शिक्षा के अर्थ को स्पष्ट करते हुये रूसों ने लिखा है–''सच्ची शिक्षा वह है जो व्यक्ति के अन्दर से प्रस्फुटित होती है। यह उसकी अपनी अन्तर्निहित शक्तियों की अभिव्यक्ति है।''निषेधात्मक शिक्षा को स्पष्ट करते हुये रूसों ने लिखा है–'' मैं निषेधात्मक शिक्षा उस शिक्षा को कहता हूँ जो प्रत्यक्ष रूप से ज्ञान देने से पूर्व उन अंगों, जो ज्ञान के साधन है, को पूर्ण बनाने के लिए प्रवृत्त होती है और जो इन्द्रियों के उचित अभ्यास द्वारा तर्क के लिए मार्ग तैयार करने का प्रयास करती है। निषेधात्मक शिक्षा का अर्थ चिरकालिक निष्क्रियता नहीं है, वरन् इससे भिन्न है यह सद्गुण नहीं देती है, यह दुर्गुणों से रक्षा करती है यह सत्य को प्रकट नहीं करती है, यह त्रुटि से बचाती है। यह बालक को उस मार्ग की ओर उन्मुख करती है, जो उसे सत्य की ओर ले जायेगा। रूसों के शब्दों में ''प्रथम शिक्षा तब विशुद्ध रूप से निषेधात्मक होनी चाहिए। इसमें गुण अथवा सच्चाई के सिद्धान्तों की सीख न हो अपितु इसे हृदय की बुराई से एवं मस्तिष्क की त्रुटि से रक्षा करनी चाहिए।

चर्चा बिन्दु–

- क्या निषेधात्मक शिक्षा औचित्यपूर्ण है?

1. शिक्षा का उद्देश्य

रूसों के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य निम्नवत् है–**1. जीवन में पूर्णता–**रूसों के मतानुसार वास्तविक जीवन पूर्णतः जीवित रहने की अनुभूति है। जीवन की अधिक अनुभवी व्यक्ति वह नहीं है जो दीर्घायु है अपितु वह व्यक्ति है जिसने संसार में अपनी समस्त इन्द्रियों का प्रयोग करते हुय कर्म किया है क्योंकि कर्मेन्द्रियों एवं ज्ञानेन्द्रियों तथा उनकी क्षमताओं के अनुसार प्रयोग ही जीवन है। जीवन की पूर्णता तभी सम्भव है जब बच्चे प्रयास से अपनी विधि से प्रकृति की जानकारी प्राप्त करेगे।

2. मौलिक एवं स्वाभाविक शक्तियों का विकास

रूसों के अनुसार शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य बच्चों की मौलिक एवं स्वभाविक शक्तियों का विकास है। यह विकास तभी सम्भव है जब बच्चों को स्वतन्त्रता दी जाए और उनके साथ उदारतापूर्वक व्यवहार किया जाए।

3. भौतिक उद्देश्य

रूसों शिक्षा का मूल उद्देश्य भौतिक मानता है। उसके अनुसार बालक को वस्तुओं पर निर्भर होना चाहिए न कि व्यक्तियों पर। वस्तुओं की निर्भरता से नैतिकता या अनैतिकता का प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं होता तथा इस निर्भरता में अध्यापक द्वारा प्रदत्त ज्ञान की आवश्यकता नहीं है।

Downloaded From www.dietmathura.org

4. व्यवहारिक ज्ञान की प्राप्ति

रूसों के अनुसार बालक वस्तुओं के निरीक्षण से वास्तविक व्यवहारिक ज्ञान की प्राप्ति करे यही शिक्षा का मूल उद्देश्य है। यह ज्ञान रूसों की शिक्षा पद्धति के अन्तर्गत क्रिया द्वारा सीखने के सिद्धान्त के अनुकूल है। इस सिद्धान्त में निरीक्षण अनुभव तथा अन्वेषण पर बल दिया गया है। बालक को शिक्षा देने में इन्हीं के महत्व पर रूसो ने विशेष बल दिया है।

5. नैतिकता तथा संवेगो का विकास

नैतिकता एवं संवेगों का विकास करना शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है। रूसों का मत है कि बाल्यावस्था में बालक का स्वतन्त्र विकास होना चाहिए किन्तु 15 वर्ष की आयु के पश्चात् उसे नैतिक मूल्यों का बोध कराना चाहिए तथा उसे जीवन के भावनात्मक नैतिक पक्ष से भिज्ञ कराना चाहिए।

पाठ्यक्रम

रूसों ने मानव जीवन को चार अवस्थाओं में बाँटा है। रूसो ने पाठ्यक्रम निर्धारण में इन चारों दशाओं को ध्यान में रखकर पाठ्यक्रम प्रस्तावित किया है। अस्तु रूसो द्वारा प्रस्तावित शिक्षा का पाठ्यक्रम निम्नवत् है।

1. 1 से 5 वर्ष की शिक्षा

यह मानव जीवन की प्रथम अवस्था है जिसे शैशवावस्था कहा जाता है। रूसों ने इस अवस्था में दी जाने वाली प्रचलित शिक्षा का विरोध किया है। रूसों के अनुसार इस अवस्था में शिशुओं को प्रतिबन्धों से मुक्त रखना चाहिए। इस अवस्था में बच्चों को शारीरिक शिक्षा देनी चाहिए। बच्चों के बौद्धिक एवं नैतिक विकास पर भी थोडा ध्यान देना चाहिए। सामान्य विषयों का ज्ञान देने के स्थान पर बच्चों के स्वास्थ्य एवं ज्ञानेन्द्रियों के विकास की ओर ध्यान देना चाहिए। इस अवस्था में बच्चों को वार्तालाप से बहुत कुछ सिखाया जा सकता है। वार्तालाप में मातृभाषा का प्रयोग किया जाना चाहिए।

2. 5 वर्ष से 12 वर्ष तक शिक्षा

यह जीवन का अत्यधिक विषम काल होता है जिसे दो सिद्धान्तों द्वारा नियन्त्रित किया जाता है यथा– शिक्षा निषेधात्मक होनी चाहिए तथा नैतिक शिक्षा प्राकृतिक परिणामों द्वारा प्रदत्त हो। रूसों के अनुसार बच्चों के मस्तिष्क में कुछ भरने के बजाय उन्हें अनुभव द्वारा सीखने देना चाहिए। अनुभव से इन्द्रियों का मानसिक विकास होता है। इस काल में बच्चों को किसी विषय अथवा भाषा की शिक्षा नहीं देनी चाहिए बल्कि प्राकृतिक रूचि के माध्यम से बौद्धिक प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।

Downloaded From www.dietmathura.org

3. 12 वर्ष से 15 वर्ष तक शिक्षा

यह जीवन का वह काल है जिसमें व्यक्ति की शक्ति उसकी आवश्यकता से अधिक होती है। बालक की इन्द्रियाँ एवं शरीर पुष्ट हो जाता है। इस अवस्था में बालक को प्राकृतिक विज्ञान, भाषा, गणित, लकड़ी का काम, चित्रकला, संगीत, व्यवसायिक शिक्षा दी जानी चाहिए। रूसो के अनुसार जानने की उत्सुकता, अथवा रूचि एकमात्र पथ प्रदर्शन का कार्य करती है। वह ज्ञान जो प्राकृतिक इच्छा से होता है न कि मात्र इच्छा से, वह ज्ञान बुद्धिजन्य समझा जाता है और यही एक मात्र ध्येय एवं पथ–प्रदर्शन है। इन सबका परीक्षण इनकी व्यवहारिक उपयोगिता है।

4. 15 वर्ष से 20 वर्ष तक शिक्षा

यह काल बच्चों को नैतिक शिक्षा देने का है। रूसो के अनुसार इस अवस्था तक बालक के शरीर इन्द्रियों एवं मस्तिष्क का निर्माण हो चुका है। अब यह समय है कि उसके हृदय को एक आकार दिया जाए। अब युवक को अन्य के साथ जीवन व्यतीत करने के लिए तथा सामाजिक सम्बन्धों में शिक्षित किया जाना है।

रूसो ने इस अवस्था के पाठ्यक्रम में संगीत कला तथा कामशास्त्र को भी स्थान दिया गया है। स्व प्रेम जिसमें अच्छाई एवं बुराई दोनों अन्तर्निहित होती है। अब इन्हें इच्छाई की ओर उन्मुख करना है, इन सबका आधार संवेगात्मक जीवन है।

शिक्षण विधि

रूसो ने शिक्षण विधि के उन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया जिन पर आज का सम्पूर्ण शिक्षण शास्त्र निर्भर है। ये सिद्धान्त निम्नलिखित है–

- करके सीखना
- निरीक्षण द्वारा सीखना
- अन्वेषण द्वारा सीखना
- स्वानुभव द्वारा सीखना
- प्रयोग द्वारा सीखना

ध्यान देने योग्य

1. शिक्षण में करके सीखने की विधि उत्तम है।
2. क्रियापद्धति को भी अपनाया जाना चाहिए।
3. पदार्थो का ज्ञान स्थूल रूप में देना चाहिए।
4. खेल पद्धति भी शिक्षण की सुगम विधि है।
5. अनुभव तथा निरीक्षण विधि भी शिक्षा में सहायक हो सकती है।

अनुशासन

रूसो बालक की स्वतन्त्रता के समर्थक है और उस पर किसी प्रकार का वाहय नियन्त्रण नहीं चाहता है। उसे प्राकृतिक परिणामों द्वारा अनुशासन के सिद्धान्त में भी विश्वास है। इस प्रकार रूसो ने

Downloaded From www.dietmathura.org

अनुशासन के दो सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है–स्वतन्त्रता का सिद्धान्त तथा प्राकृतिक परिणामों द्वारा अनुशासन का सिद्धान्त।

> प्राकृतिक परिणाम द्वारा अनुशासित होने से तात्पर्य है कि प्रकृति हमें अच्छे कार्यो के लिए पुरस्कृत तथा बुरे कार्यों के लिए दण्डित करती है।

शिक्षक तथा शिक्षार्थी

रूसो ने शिक्षा प्रक्रिया में बालक को प्रमुख तथा शिक्षक को गौड़ स्थान दिया है। रूसो ने प्रकृति को ही बालक का सच्चा शिक्षक माना है। शिक्षक का कार्य केवल इतना चाहिए कि वह बालक के स्वभाविक विकास के लिए अनुकूल परिस्थितियों का निर्माण करे।

विद्यालय

रूसो के अनुसार विद्यालय एक कृत्रिम व कठोर अनुशासन वाली संस्था हो, बल्कि विद्यालय ऐसा हो जिससे बालक के विकास के लिए उचित वातावरण प्राप्त हो। बालक को स्वतन्त्र वातावरण दिया जाना चाहिए। रूसो ने तो निश्चित पाठ्यक्रम चाहता है और न निश्चित समय सारणी। रुसों विभिन्न प्रकार के बन्धनों से मुक्त विद्यालय में प्राकृतिक वातावरण की अपेक्षा करता है जो बालक के स्वभाविक विकास में सहायता प्रदान करें।

अभ्यास प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. रूसो के शैक्षिक विचारों की विवेचना कीजिए ?

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. रूसो के अनुसार निषेधात्मक शिक्षा से क्या तात्पर्य है?
2. रूसों की अनुशासन के विषय में क्या धारणा है ?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. निम्न में से कौन सी रचना रूसो की नहीं है ?

(क) दी लॉज　　(ख) दि न्यू हैलॉयज

(ग) एमील　　(घ) दि सोशल काण्ट्रेक्ट

2. रूसो के अनुसार शिक्षा का स्वरूप कैसा होना चाहिए ?

(क) आदर्शवादी　　(ख) प्रकृतिवादी

(ग) प्रयोजनवादी　　(घ) यर्थाथवादी

Downloaded From www.dietmathura.org

जॉन डीवी 1859–1952

प्रयोजनवाद का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण डीवी का शिक्षा दर्शन हैं। आधुनिक काल में संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में जनतन्त्रीय शिक्षा का सबसे बड़ा व्याख्याता जॉन डीवी को माना जाता है। डीवी का जन्म सन् 1859 में हुआ। 19 वर्ष की अवस्था में उसने दर्शनशास्त्र में सबसे अधिक अंक प्राप्त करके बरमाष्ट विश्वविद्यालय में बी0ए0 की डिग्री प्राप्त की। इसके बाद वह मिनेसोटा, मिशीगन और शिकाम विश्वविद्यालय में इसने दर्शनशास्त्र का अध्ययन किया तथा शिकागो में दर्शन को पढ़ाया। तभी से उसे शिक्षा के क्षेत्र में रूचि हो गयी। इसने बालको की शिक्षा के लिए शिकागों में प्रोग्रेसिव स्कूल नामक एक विद्यालय की स्थापना की, जिसमें करके सीखने के सिद्धान्त को कार्य के रूप में परिणित किया गया। इस विद्यालय में डीवी ने अपने प्रयोजनवाद दर्शन के आधार पर शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण प्रयोग किये। इसके पश्चात् वह शिकागो छोडकर वह कोलाम्बिया विश्वविद्यालय पहुँचा और वहाँ पर शिक्षा और दर्शन के क्षेत्र में अनेक महत्वपूर्ण सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया।

यहाँ पर सन 1930 तक कार्य करने के बाद डीवी ने अवकाश प्राप्त किया। सन् 1932 में उसने सामाजिक शिक्षा सम्बन्धी एवं मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। उसे महान दार्शनिक माना गया। और देश–विदेश में उसे सम्मान दिया गया। इसी समय उसे डॉक्टर की उपाधि से विभूषित किया गया। उसके विचारों का प्रभाव अमेरिका से बाहर रूस, तुर्की, चीन आदि दूर–दूर देशों में देखा गया आधुनिक जनतन्त्रीय शिक्षा प्रणाली पर डीवी के विचारो को अंमिट छाप है।

> डीवी अपने परिवार में अपने विचारो पर अमल करता था। उसके छः बच्चे थे उसने दर्शन और शिक्षा की समस्याओं के हल अपने बालकों के साथ खेलते–खेलते प्राप्त किये थे। इस प्रकार उसके विचार कोरे सिद्धान्त ही नहीं थे, बल्कि उसने स्वयं उन पर अमल करके प्रयोग किये थे। सन् 1952 में डीवी का स्वर्गवास हुआ। इस समय तक उसकी गणना संसार के महान् दार्शनिकों और शिक्षा–शास्त्रियों में होने लगी थी।

डीवी ने दर्शन शास्त्र पर अनेक पुस्तकें लिखी, जिनमें से मुख्य हैं–Demogacy and Education। उसने जनतन्त्र में शिक्षा व्यवस्था की व्याख्या की। विद्यालय और समाज के सम्बन्ध को लेकर उसने The school of Society की रचना की। आदर्श विद्यालय का चित्र उपस्थित करते हुये उसने School of Tomarrow तथा The school and the child नामक पुस्तकों की रचना की।

डीवी ने बहुत सी पुस्तकें और असंख्य निबन्ध लिखे हैं। उसकी अधिकांश रचनाएं शुद्ध दर्शन शास्त्र पर है। शिक्षा पर इसने निम्नलिखित प्रमुख रचनाएं प्रकाशित की हैं।

Downloaded From www.dietmathura.org

रचनाएँ
1896 इन्टरैस्ट एण्ड ऐफर्ल्टऐज रिलेटेड टु विल
1899 – दी स्कूल एण्ड सोसाइटी।
1902– दी चाइल्ड एण्ड दी करीक्यूलम।
1910– हाऊ वी थिन्क।
1913 –इन्टरेस्ट एण्ड एकर्ट इन एडूकेशन।
1916– डेमॉक्रासी एण्ड एडूकेशन।
1920– रिकन्स्ट्रक्शन इन फिलॉसफी।
1929–दी क्वेस्ट फॉर सरटोनिटी।
1929– सोर्सेज ऑव ए साइन्स ऑव एजुकेशन।

शैक्षिक विचार

शिक्षा का अर्थ

डीवी शिक्षा को एक अनिवार्य सामाजिक गति मानता हैं। उसके मतानुसार बिना शिक्षा के समाज प्रगति नहीं कर सकता। इसी के आधार पर सभ्यता की रक्षा व विकास होता है। ''शिक्षा अनुभव के पुनर्निमाण व पुनर्रचना का एक क्रम हैं जो कि मनुष्य की क्षमता में वृद्धि करने के द्वारा अनुभव को और भी अधिक सामाजिक महत्व प्रदान करती हैं।''

मनुष्य के वाहय व आन्तरिक अनुभव सदा परिवर्तित होते रहते हैं। उसे समय–समय पर नवीन अनुभवों व समस्याओं का सामना करना होता है। अतः उसके क्रिया कलाप भी उन्हीं के अनुसार बदलते रहते है। इसी प्रकार अनुभव का संशोधन, व पुनर्निमाण होता रहता हैं। डीवी इसी वृद्धि, परिवर्तन अथवा संशोधन को शिक्षा कह कर पुकारता हैं। वह यह नहीं मानता कि बच्चे के स्कूल जाने पर ही शिक्षा का आरम्भ होता हैं। शिक्षा तो उसके जन्म से ही प्रारम्भ हो जाती हैं। और जीवन भर चलती ही रहती हैं। शिक्षा जीवन की तैयारी न होकर स्वयं जीवन हैं।

शिक्षा का उद्देश्य

डीवी के अनुसार शिक्षा का एक मात्र उद्देश्य बालक की शक्तियों का विकास हैं। वह विकास किस प्रकार से होगा, इसके लिए कोई सामान्य सिद्धान्त निश्चित नहीं किया जा सकता, क्योंकि भिन्न–भिन्न रूचियों और योग्यताओं के बालकों में विकास भिन्न–भिन्न प्रकार से होता हैं। डीवी शिक्षा के लक्ष्य को उन्मुक्त छोड़ देना चाहता है, क्योंकि यदि पहले से निश्चित कर लिया जायेगा और बालक को उसी ओर ले जाने की कोशिश की जायेगी तो उससे हानि हो सकती हैं। शिक्षा बालक के लिए है, बालक शिक्षा के लिए नहीं हैं। ''शिक्षा का उद्देश्य'' ऐसा वातावरण तैयार करना हैं जिसमें कि प्रत्येक

Downloaded From www.dietmathura.org

बालक को समस्त मानव जाति की सामाजिक जागृति में सक्रिय रहकर योगदान करने का अवसर मिले।''

प्रयोजववाद की दृष्टि से शिक्षा का उद्देश्य बालक में सामाजिक कुशलता (Social Efficiency) उत्पन्न करना है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी हैं और समाज से बाहर रहकर उसका विकास नहीं हो सकता। सामाजिक जीवन में सभी का विकास होता है। इसलिए शिक्षा का उद्देश्य सामाजिक जीवन में दक्षता प्राप्त करना है।

फलवादी शिक्षा का उद्देश्य जनतन्त्रीय मूल्यों की स्थापना हैं। बालक में जनतन्त्रीय मूल्यों का विकास किया जाना चाहिए। शिक्षा के द्वारा हम ऐसे समाज का निर्माण करना चाहते हैं जिसमें व्यक्ति–व्यक्ति में कोई भेद न हो, सभी पूर्ण स्वतन्त्रता और सहयोग से काम करें। प्रत्येक मनुष्य को अपनी स्वाभाविक प्रवृत्तियों इच्छाओं और आंकाक्षाओं के अनुसार विकसित होने का अवसर मिले। सभी को समान अधिकार दिये जायें। ऐसा समाज तभी बन सकता है, जबकि व्यक्ति और समाज के हित में कोई मौलिक अन्तर न माना जाये। अरस्तू के अनुसार शिक्षा के द्वारा मनुष्य में परस्पर सहयोग और सामंजस्य की स्थापना होनी चाहिए। विद्यालय जनतन्त्रीय समाज का एक सूक्ष्म रूप हैं। इस विकास में नैतिकता मुख्य है। नैतिक विकास में सक्रियता होती हैं। इससे व्यक्ति में कुशलता और चरित्र का निर्माण होता हैं। फलवादी शिक्षा का उद्देश्य व्यावहारिक हैं। उसमें व्यक्ति को जीवन के लिए तैयार करना होता हैं। जिससे की वह अपने विभिनन आवश्यकताओं को सन्तुष्ट कर सकें। यहा पर जीवन से तात्पर्य केवल व्यक्तिगत जीवन नहीं, बल्कि सामाजिक जीवन ही हैं। डीवी ने तत्कालीन प्रचलित शिक्षा प्रणाली की आलोचना को क्योंकि वह जनतत्रीय जीवन से दूर ले जाती हैं। डीवी ने प्रगतिशील प्रगति शील शिक्षा की नींव रखी जिसका उद्देश्य बालक के व्यक्ति का विकास करना और शिक्षा द्वारा जनतन्त्र को स्थापित करना था।

प्रशिक्षु चर्चा करें–

शैक्षिक उद्देश्यों का निर्धारण क्यों आवश्यक है?

Downloaded From www.dietmathura.org

शिक्षा के उद्देश्य

डीवी शिक्षा के उद्देश्यों को पूर्व निर्धारित नहीं मानते हैं। उनका मानना है कि शिक्षा के पूर्व निर्धारित कोई भी उद्देश्य वेश काल एवं परिस्थितियों में सभी बालकों के लिए उचित एवं उपयोगी नहीं हो सकते हैं। फिर भी डिवी ने शिक्षा के निम्नलिखित सामान्य उद्देश्यों को निर्धारित किया है–

- **बालक का सर्वांगीण विकास**–डिवी के अनुसार शिक्षा का मुख्य उद्देश्य बालक का सर्वांगीण विकास करना हैं ताकि वह समाज में भावी जीवन में समायोजन कर सकें।
- **बालक को महत्ता**–प्रयोजनवादियों ने शिक्षा के उद्देश्यों के निर्धारिण में बालक को महत्ता दी है। उनका मत है कि बालक अपने मूल्यों एवं आदर्शों का स्वयं निर्माण करता है। इसके लिए शिक्षा को उन परिस्थितियों का सृजन करना है जिसमें मनुष्य/बालक अपने आदर्शों एवं मूल्यों का निर्माण स्वयं कर सकें।
- **गत्यात्मक निर्देशन**–प्रयोजनवादी शिक्षा का एक उद्देश्य बालक को गतिशील बनाना भी है ताकि वह स्वयं दिशा में प्रगति कर सकें।
- **बालक का सामाजिक विकास**–प्रयोजनवादी शिक्षा का अन्य उद्देश्य बालक का सामाजिक विकास करना है ताकि बालक समाज के साथ समायोजन कर सके और सामाजिक दायित्वों का निर्वहन कर सकें।

शिक्षा का पाठ्यक्रम

डीवी शिक्षा प्रक्रिया के दो अंग मानता था–मनोवैज्ञानिक और सामाजिक। मनुष्य की मनोवैज्ञानिक और सामाजिक प्रवृत्तियों को शिक्षा के लिए अनिवार्य स्वीकार।

अ. मनोवैज्ञानिक

शिक्षा का पाठ्यक्रम और विधि बालक की मूल प्रवृत्तियों और शक्तियों के आधार पर निश्चित की जानी चाहिए। बालक की शिक्षा उसकी रूचियों के अनुसार होनी चाहिए।

ब. सामाजिक अंग

समस्त शिक्षा प्रजाति की सामाजिक चेतना में शक्ति के भाग लेने से प्रारम्भ होती हैं। इसलिए विद्यालय में ऐसा वातावरण बनाया जाना चाहिए। इससे उसके आधार में सुधार होता हैं। और उसके व्यक्तित्व तथा शक्तियों का विकास होता हैं। डीवी ने निम्नलिखित चार सिद्धान्तों को ध्यान में रखना आवश्यक माना है।

Downloaded From www.dietmathura.org

उपयोगिता

बालक का पाठ्यक्रम ऐसा हो, जिसकी उपयोगिता हो अर्थात् भिन्न–भिन्न अवस्थाओं में उसे जिन वस्तुओं और विषयों में रूचि हो उन्हीं के आधार पर पाठ्यक्रम बनाया जाना चाहिए। बालक की चार प्रकार की रूचियों दिखलाई पड़ती हैं। यथा बातचीत और विचारों का आदान–प्रदान, खोज, रचना और कलात्मक अभिवृत्ति। इन रूचियों के आधार पर उसके पाठ्यक्रम की रचना की जानी चाहिए। इस प्रकार पाठ्यक्रम में पढ़ना–लिखना, गिनना, हस्तकला, प्रगति, विज्ञान, संगीत तथा अन्य कलाओं का ज्ञान सम्मिलित किया जाना चाहिए।

नमनीयता

इस प्रकार पाठ्यक्रम नमनीय होना चाहिए। उसको पूर्ण–रूपेण सुनिश्चित और कठोर बनाना उचित नहीं हैं। वह बालक की रूचियों और अवस्थाओं के अनुसार बदलता रहना चाहिए।

अनुभवात्मक

पाठ्यक्रम बालक के वर्तमान अनुभव से सम्बन्धित होना चाहिए। विभिन्न दिशाओं को समस्याओं के रूप में प्रस्तुत करने से बालक को नये–नये अनुभव होते हैं। और उसका अनुभव का भण्डार बढ़ता हैं। नये अनुभवों से पुराने अनुभवों का पुर्निर्माण होता है।

जीवन से निकटता

पाठ्यक्रम में उन्हीं वस्तुओं और विषयों को सम्मिलित किया जाना चाहिए, जिनका बालक की विशिष्ट अवस्था के वास्तविक जीवन से सम्बन्ध हैं, वर्तमान जीवन से सम्बन्धित होने के कारण विभिन्न विषयों में एकता आ जाती हैं और इस प्रकार भाषा गणित और इतिहास, भूगोल आदि में समन्वय स्थापित किया जा सकता हैं। डीवी के तत्कालीन शिक्षा प्रणाली में ज्ञान को विभिन्न विषयों में बाँटने के प्रयास की तीव्र अलोचना की।

अनुशासन

डिवी अनुशासन की परम्परागत धारणा का विरोधी है। उसे बालक के आचरण को कृत्रिम साधनों द्वारा नियमित करने में कोई विश्वास नहीं हैं। उसने अनुशासन की स्थापना में सामाजिक जीवन को महत्व पर बल दिया है। विद्यालय में अनुशासन का अर्थ सामाजिक अनुशासन हैं। अतः डिवी सामाजिक अनुशासन में बालक की स्वाभविक भावनाओं को विद्यालय की सहयोगी क्रियाओं के माध्यम से अनुशासित करने का समर्थक है। उनका विचार है कि बालक इस प्रकार के प्रशिक्षण से अपने चरित्र का विकास करेगा जो व्यक्तिगत एवं सामाजिक दोनों ही रूपों से उपयोगी होगा। डिवी का विश्वास है

Downloaded From www.dietmathura.org

कि यदि बालक की क्रियायें उद्देश्यपूर्ण है और उनको दूसरों के सहयोग तथा सम्पर्क द्वारा पूर्ण किया जाता है तो उसका अनुशासनात्मक प्रभाव होगा।

शिक्षण विधि

डिवी ने परम्परागत शिक्षण विधियों का विरोध किया है। इसके स्थान पर उसने ऐसी विधियों पर बल दिया है जिसमें बालक क्रिया द्वारा, स्वानुभव द्वारा, खोज द्वारा, तथा प्रयोग द्वारा सीखे। डिवी ने सीखने में प्रयोजन की एकता पर बल दिया है। उसका विचार है कि वह एकता बालकों के समक्ष पाठ्यवस्तु को समन्वित रूप से प्रस्तुत करने से प्राप्त की जा सकती है। वह इस प्रकार से प्राप्त ज्ञान को ही उपयोगी मानता है। डिवी के अनुसार–'' विधि का अर्थ विषयवस्तु की उस व्यवस्था से हैं जो उसको उपयोगी करने के लिए सर्वाधिक प्रभावपूर्ण बनाती है। विधि विषय वस्तु के प्रतिकूल नहीं होती है वरन् यह तो वांछित परिणामों की ओर विषयवस्तु का प्रभावशाली निर्देशन हैं।''

शिक्षक

डिवी प्रकृतिवादियों की भाँति शिक्षक के दायित्वों को कम नहीं करता। वह शिक्षक से अपने छात्रों को उचित समस्याओं वाली परिस्थितियों में रखने की आशा करता है ताकि वे अपने मूल्यों का निर्माण कर सकें। इसके अतिरिक्त शिक्षक छात्रों से यह भी आशा करता है कि शिक्षक छात्रों की रूचियों को इस प्रकार प्रेरित करें कि वे समस्याओं को कुशलता बुद्धिमानी तथा सहयोग से हल कर सकें। अतः शिक्षक सामाजिक वातावरण के निर्माता के रूप में होता हैं। इस लिये डिवी ने शिक्षक को कुशल तक्षक की संज्ञा दी है। शिक्षक को विद्यालय में ऐसे सामाजिक वातावरण का सृजन करना चाहिए जिसमें बालक अपने आपको ढालकर अपना सामाजिक विकास कर सके। शिक्षक को अपने विचार बालकों पर लादने नहीं चाहिए, वरन् उसमें रूचियों का ऐसा प्रस्फुटन करना चाहिए ताकि वे अपनी समस्याओं का सहयोग कुशलता एवं बुद्धिमता से स्वयं निराकरण करने में समर्थ हो सकें।

विद्यालय

डिवी ने विद्यालय को एक सामाजिक संस्था माना है। विद्यालय सामाजिक जीवन का वह रूप है, जिसमें वह समस्त क्रियाओं केन्द्रित है जिन्हें बालक ने मानव जाति के पैतृक क्योंकि रूप में प्राप्त किया है। और जिसमें वह स्वयं सक्रिय रूप से भाग लेकर तथा अपना योगदान प्रदान करके समाज का हित करता है। इस सम्बन्ध में डिवी ने लिखा है कि ''विद्यालय एक सामाजिक संस्था है क्योंकि शिक्षा सामाजिक प्रक्रिया है, इसलिये विद्यालय सामाजिक जीवन का केवल रूप है, जिसमें वे समस्त साधन केन्द्रित होते है, जो बालक को प्रजाति की पैतृक सम्पत्ति में अपना भाग प्राप्त करने तथा उसे अपनी शक्तियों को सामाजिक हितो के लिए उपयोग में लाने के लिए तैयार करते हैं।''

Downloaded From **www.dietmathura.org**

अभ्यास प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न–1 जॉन डिवी के शिक्षा सम्बन्धी विचार क्या हैं ? तथा उन्होंने आधुनिक शिक्षा प्रणाली को किस प्रकार प्रभावित किया है ?

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. डिवी के पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में क्या विचार हैं ?

2. डिवी के शैक्षिक उद्देश्यों पर प्रकाश डालिये ?

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. डीवी के अनुसार शिक्षक है–

(क) एक बाधा　　(ख) एक सामाजिक मनोवैज्ञानिक आवश्यकता

(ग) एक आदर्श　　(घ) विषय विशेषज्ञ

प्रश्न–2 निम्नलिखित में से कौन सी डीवी की रचना नहीं है ?

(क) द सोशल कान्ट्रैक्ट　　(ख) हाऊ वी थिंक

(ग) डेमोक्रेसी एण्ड एजूकेशन　　(घ) द स्कूल एण्ड सोसाइटी

Downloaded From www.dietmathura.org

फ्रॉबेल

फ्रॉबेल का जन्म 21 अप्रैल सन् 1782 में हुआ था। फ्रॉबेल जब नौ माह का था तब ही माँ का देहान्त हो गया। उनके पिता पादरी थे। पिता की उपेक्षा ने फ्रॉबेल को आत्मनिष्ठ बना दिया। अपने विद्यार्थी जीवन में उसे अनेक अभाव का सामना करना पड़ा जिसकी वजह से वह एक अच्छा विद्यार्थी नही बन सका। 15 वर्ष की अवस्था में उसे एक वन रक्षक के साथ कार्य करने का अवसर मिला जहाँ उनके अन्दर प्रकृति प्रेम उत्पन्न हुआ। 17 वर्ष की आयु में उसने जेना विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया किन्तु धन के अभाव में वह वहाँ अध्ययन न कर सके। 1802 ई0 में उसके पिता का भी निधन हो गया। इससे उसने आत्मनिर्भर होने के लिए कई नौकरियाँ की, परन्तु किसी में भी उसका मन नहीं लगा। कुछ समयोपरान्त डॉ0 हेठ ग्रूहर के सहयोग से वह फ्रेन्कफर्ट के एक नार्मल स्कूल में कला बढ़ाने लगा। कुछ इसके बाद वह पेस्टॉलाजी की संस्था में अध्यापक नियुक्त हुआ। इस नियुक्ति ने फ्रौंबेल के जीवन की दिशा बदल दी। सन् 1808 में वह पेस्टॉलाजी की शैक्षिक व्यवस्था को समझने के लिए वरडून गया। 1811 ई0 में गॉटिन्जेन में और उसके बाद बार्लिन विश्वविद्यालय में अध्ययन किया।

सन् 1816 ई0 में फ्रॉबेल ने अपने शिक्षा सम्बन्धी विचारों को लेखबद्ध करके 'Education of Man' नामक पुस्तक तैयार की जिसका प्रकाशन 1826 ई0 में हो सका। सन् 1837 में ब्लेकेनबर्ग (Blankenberg) में एक विद्यालय की स्थापना की। सन् 1839 ई0 में उसने इस विद्यालय को बालोद्यान या ज्ञपदकमतहवतजमद नाम दिया। फ्रॉबेल को अपने इस किन्डरगार्टन से विशेष सफलता मिली जिससे उत्साहित होकर फ्रॉबेल ने अन्य स्थानों पर भी किण्डरगार्टन स्कूल खोले। विभिन्न स्थानों पर अपनी शिक्षण विधि की विशेषताओं का उल्लेख करते हुये व्याख्यान दिये और अपनी शिक्षण विधि के सम्बन्ध में शिक्षकों को व्यवहारिक प्रशिक्षण भी दिया। तत्कालीन जर्मन सरकार ने फ्रॉबेल के कार्य को समाजवाद का प्रचार कार्य समझकर इसे प्रतिबन्धित कर दिया। इस अन्यायपूर्ण कृत्यों को सहन करने में असमर्थ फ्रॉबेल को गम्भीर आघात लगा और इससे उसका निधन हो गया।

जिस उत्कृष्ट शिक्षण पद्धति की स्थापना फ्रॉबेल ने की, उसका संसार के विभिन्न देशों में आज भी अनुसरण किया जाता है।

रचनायें–

- Education of man
- Mother and play Songs
- Education by Development
- Pedagogics of kindergarten

Downloaded From www.dietmathura.org

शैक्षिक विचार

शिक्षा का अर्थ

फ्रॉबेल शिक्षा को विकास की प्रक्रिया मानता है। वह शिक्षा को एक सन्तति से दूसरी सन्तति को परम्परागत अनुभवों को सौंपना नहीं मानता और न ही इसको कुछ शक्तियों के विकास के रूप में देखता है। उसके अनुसार शिक्षा अपने उच्चतम स्तर पर विकास की प्रक्रिया को जानना या अनुभव करना है। उसका विश्वास है कि प्रत्येक बालक में अपने पूर्ण विकास की सम्भावना निहित होती है। जिस प्रकार बीज में सम्पूर्ण वृक्ष का रूप निहित होता है, उसी प्रकार बालक में सम्पूर्ण व्यक्ति या मनुष्य का रूप निहित होता है। जिस प्रकार स्वभाविक वातावरण में बीज बढ़कर सम्पूर्ण वृक्ष बन जाता है उसी प्रकार बालक पूर्ण मानव बन जाता है। परन्तु शिक्षा को इस सम्बन्ध में कुछ कार्य करना पड़ता हैं शिक्षा को मनुष्य को स्वयं के सम्बन्ध में स्पष्टता प्राप्त करने के लिए अग्रसर एवं निर्देशित करना चाहिए। जिससे वह प्रकृति का सामना तथा ईश्वर से एकता स्थापित कर सके।

शिक्षा के उद्‌देश्य

शिक्षा का उद्‌देश्य न तो बच्चे के मस्तिष्क को शब्दों का भण्डार बनाना है और न मानव जीवन का एकांगीपन प्राप्त करना है। फ्रॉबेल के अनुसार शिक्षा द्वारा बालक को इस बात का ज्ञान कराना है कि विभिन्न पदार्थों में एक चिरन्तन एकता निवास करती है और सब सजीव तथा निर्जीव पदार्थ–दैवी उद्‌देश्य को पूर्ण करने और आत्मज्ञान तथा श्रेष्ठतम पूर्णता प्राप्त करने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहते हैं। फ्रॉबेल इस बात पर भी बल दिया है कि शिक्षा का उद्‌देश्य बालक को ऐसी परिस्थितियों में ले जाना है, जिसमें वह अपने 'अन्तर' को अधिक से अधिक प्रदर्शित कर सके और स्वतन्त्रतापूर्वक स्वयं की अभिव्यक्ति कर सके। बच्चो को केवल अभिव्यक्ति ही नहीं, वरन् कुछ सृजन भी करना चाहिए। सुनियोजित शिक्षा प्रणाली द्वारा बच्चे में सृजनात्मक और अभिव्यंजनात्मक भावनाएँ साथ–साथ उत्पन्न की जानी चाहिए।

फ्रॉबेल के अनुसार–शिक्षा का मुख्य उद्‌देश्य भक्तिपूर्ण शुद्ध, कंलकरहित, पवित्र जीवन की प्राप्ति करना है। शिक्षा का कार्य मनुष्य को स्पष्टता का मार्ग दिखाना है, जिससे वह प्रकृति का सामना करने तथा ईश्वर से एकता प्राप्त करने में सफल हो सके।

पाठ्‌यक्रम

शैक्षिक उद्देश्यों को ध्यान में रखकर फोवेल ने पाठ्‌यक्रम के अन्तर्गत निम्नलिखित 4 अध्ययनक्रमों को निर्धारित किया है–

Downloaded From www.dietmathura.org

- धर्म तथा धार्मिक निर्देश–एकता तथ ईश्वर सम्बन्धी भावनाये उत्पन्न करने के लिए ।
- प्राकृतिक विज्ञान तथा गणित–आध्यात्मिक अन्तर्दष्टि तथा विकास का ज्ञान कराने के लिए
- भाषा–अभिव्यक्ति एवं सम्प्रेषण के लिए
- कला– संवेगात्मक व रागात्मक विकास के लिए

शिक्षण विधि

फ्रॉबेल की शिक्षण विधि बालक के विकास प्रक्रिया से सम्बद्ध है। शिक्षक को मात्र विद्यार्थी को उत्तेजित करना है, उसका निरीक्षण करना है। विद्यार्थी उत्तेजित होकर स्वक्रिया करने लगेगा। उनके अनुसार बालक प्रकृति प्रेमी, आत्मप्रेरित तथा विकासशील होते हैं। अतः उन्होंने अपनी शिक्षण विधि के अन्तर्गत तीन प्रकार की क्रियाओं का उल्लेख किया है–

1. **आत्मक्रिया**–फ्रॉबेल के अनुसार बालक कुछ प्रवृत्तियों के साथ जन्म लेता है जो उसे कुछ न कुछ कार्य करने के लिए प्रेरित करती है। अतः यदि उसके अनुसार कार्य करने के लिए प्रेरित किया जाए और अवसर प्रदान किया जाए तो वह अपने व्यक्तित्व का विकास और वास्तविक प्रयोग कर सकता है। पर यह आवश्यक है कि उसे अपनी सक्रियता के लिए स्वतन्त्र वातावरण प्रदान किया जाए।

2. **सामाजिक क्रियाएँ**–फ्रॉबेल सामाजिक क्रियाओं को अपनी शिक्षण पद्धति का आधार बनाया हैं उसका विश्वास है कि आत्मक्रिया की अनुभूति सामाजिक वातावरण में ही सम्भव है। उनका कहना है कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है अतः बालक की शिक्षा का सम्बन्ध समाज से स्थापित किया जाए। इस प्रकार फ्रॉबेल ने बालक के विकास में शिक्षा के सामाजिक पहलू पर भी बल दिया है।

3. **खेल**–फ्रॉबेल के अनुसार शिक्षा खेल द्वारा अच्छी तरह प्रदान की जा सकती है। क्योंकि खेल में बालक की सहज रूचि होती है और वह इसके द्वारा अपनी सहज स्वाभाविक प्रवृत्तियों को प्रकट करता है फ्रॉबेल का कथन है–''बालक के विकास का सर्वोच्च रूप खेल ही है क्योंकि यह स्वक्रियात्मक होता है तथा अन्तःकरण का वास्तविक प्रतिनिधि है और आन्तरिक आवश्यकताओं को प्रकट करने के लिए अन्तःकरण का प्रतिनिधित्व करता है। यह प्रसन्नता, स्वतन्त्रता, सन्तोष तथा वाह्य जगत में शान्ति प्रदान करता है।

> ***चर्चा बिन्दु***–*छोटे बच्चों के शिक्षण में खेल विधि क्यों उपयुक्त है?*

Downloaded From www.dietmathura.org

अनुशासन

फ्रॉबेल का विश्वास है कि अनुशासन द्वारा **'आत्मज्ञान'** तथा आध्यत्मिक पूर्णता सम्भव है। वह अनुशासन की व्यवस्था के लिए शिक्षक की जिम्मेदारी को महत्वपूर्ण मानता है। शिक्षक को अपने छात्रों में प्रेम, सहानुभूमि, नम्रता, सहयोग, आज्ञाकारिता आदि नैतिक गुणों का विकास करना चाहिए। उसे बालक को सीमित स्वतन्त्रता प्रदान करनी चाहिए। परन्तु उसे वाह्य प्रतिबन्धों एवं शारीरिक दण्ड का प्रयोग नहीं करना चाहिए। इस प्रकार फ्रॉबेल ने की सम्पूर्ण अनुशासन पद्धति का आधार बच्चों में व्यवस्था के प्रति प्रेम, पारस्परिक सहयोग एवं सद्भावना है।

विद्यालय

फ्रॉबेल ने अपनी शिक्षा संस्था को 'किण्डरगार्डन' के नाम से पुकारता है। Kindergarten जर्मन भाषा का शब्द है जो दो शब्दों से मिलकर बना है। Kinder अर्थात् बालक और yorten अर्थात् उद्यान इस प्रकार फ्रॉबेल ने पौधे की तुलना बालक से और शिक्षक की तुलना माली से तथा विद्यालय की तुलना उद्यान से की है। जिस प्रकार माली उद्यान के पौधे के देखभाल करके उसकी स्वभाविक वृद्धि में सहायता देता है, उसी प्रकार शिक्षक विद्यालय में उपयुक्त वातावरण का निर्माण करके बालक के स्वभाविक विकास में सहयोग देता है।

> **किण्डरगार्टन**—खेल आनन्द और स्वतन्त्रता में सरोबार बाल विद्यालय लघु समाज और बालकों का समुदाय है। यह खेल, सहयोग, स्वयं क्रिया और आत्म अभिव्यक्ति के अन्य साधनों द्वारा बालक को अपनी रचनात्मक शक्तियों का प्रयोग करने, अपने व्यक्तित्व का निर्माण करने, सत्य न्याय और उत्तरदायित्व के गुणों को सीखने एवं सामाजिक जीवन के कुछ मूल्यों और विधियों को समझने का अवसर प्रदान करता है।

संक्षेप में किण्डरगार्टन या विद्यालय को समाज का लद्यु रूप तथा ऐसा स्थान बताया जहाँ बच्चे जीवन व्यतीत करके जीवन का अध्ययन करते हैं।

Downloaded From www.dietmathura.org

अभ्यास प्रश्न

दीर्घउत्तरीय प्रश्न

प्रश्न– शिक्षा के सिद्धान्त तथा व्यहार में फ्रॉबेल के योगदान की विवेचना कीजिए?

लघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न– फ्रॉबेल के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य क्या है ?

प्रश्न–2 किण्डरगार्टन से क्या तात्पर्य है?

वस्तु निष्ठ प्रश्न–

1. फ्रॉबेल के अनुसार कौन सा खेल अनुपयोगी है ?

   (क) गत्यात्मक खेल (ख) समूह गान

   (ग) एकाकी नृत्य (घ) उपहारों का प्रयोग

2. किण्डरगार्टन से क्या अभिप्राय है?

   (क) बच्चों का घर (ख) बच्चो का खेल स्थान

   (ग) बाल उद्यान (घ) दुकान

Downloaded From www.dietmathura.org

मॉरिया मॉन्टेसरी

जीवन परिचय

सन् 1870 ई0 में इटली के एक धनी परिवार में मारिया मॉन्टेसरी का जन्म हुआ था। उच्च स्तर की शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् वे अपने देश की पहली महिला डॉक्टर बनी। मॉन्टेसरी को रोम विश्वविद्यालय में ही मन्दबुद्धि एवं असाधारण बच्चों की शिक्षा का एवं चिकित्सा का कार्यभार सौपा गया। बालकों के मानसिक विकास के अध्ययन में उन्होने विशेष रूचि दिखायी और कम बुद्धि वाले बालको की प्रगति का अध्ययन किया। कम बुद्धि वाले बालकों को प्रशिक्षित करने के लिए एक विशेष बुद्धि पद्धति का निर्माण किया। साधारण बालकों की शिक्षा में भी उन्होंने इस पद्धति का प्रयोग किया। अपने प्रयोगों के आधार पर वे इस निष्कर्ष पर पहुँची कि मन्द बुद्धि को भी साधारण बुद्धि बालक की तरह सभ्य शिक्षित एवं व्यवहार कुशल बनाया जा सकता है। अपने अनुभवों को साकार रूप देने के लिए प्रयोगात्मक मनोविज्ञान तथा सामाजिक मनोशास्त्र का अध्ययन किया और अपने अध्ययन के आधार पर अपनी इस नवीन शिक्षा प्रणाली को जन्म दिया। सन् 1992 इस महान शिक्षा विशारद ने अपने नश्वर शरीर का परित्याग किया।

रचनाये

- The Montessori Method
- The advanced montenssori method
- the discovery child
- The Secret of childhood
- child training

शैक्षिक विचार

शिक्षा का अर्थ

डॉ0 मॉरिया मॉन्टेसरी शिक्षा को एक ऐसी प्रक्रिया मानती है जो बालक को अपना स्वभाविक विकास करने में सहायता देती है। इसके लिए उपयुक्त वातावरण अपेक्षित है, जिसमें किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए। बालक को स्वेच्छा से कार्य करने की पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए। इससे बालक अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए स्वयं प्रयास करना सीखेगा और बालक सफल होकर आत्मनिर्भर बन सकेगा। शिक्षा का अर्थ स्पष्ट करते हुये मॉन्टेसरी ने लिखा है–''बालक के जीवन के स्वाभाविक विकास में दी जाने वाली सक्रिय सहायता को शिक्षा समझा जाना चाहिए।''

Downloaded From www.dietmathura.org

शिक्षा के उद्देश्य

डॉ मॉरिया मॉन्टेसरी विशेष रूप से 3 वर्ष से 7 वर्ष तक आयु के बच्चों की शिक्षा से सम्बन्धित रही है। इसलिए उन्होंने बच्चों की शिक्षा पर ही ध्यान केन्द्रित कर रखा था। उनके अनुसार बच्चों की शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्य हो सकते है–

- बच्चों की जन्मजात शक्तियों एवं क्षमताओं के विकास में सहायता करना।
- बच्चों की कर्मेन्द्रियों एवं ज्ञानेन्द्रियों को प्रशिक्षित कर उनका बौद्धिक विकास करना।
- बच्चों को अपने पर्यावरण का ज्ञान कराकर उनमें समायोजन की क्षमता विकसित करना।
- बच्चों का नैतिक विकास करना।
- बच्चों को भावी जीवन के लिए तैयार करना।

पाठ्यक्रम

डॉ मॉरिया मॉन्टेसरी ने पाठ्यक्रम में क्रियात्मक एवं रचनात्मक कार्यों को स्थान दिया क्योंकि उन्होंने 3 वर्ष से 7 वर्ष के मन्द बुद्धि एवं आसाधारण बालकों की सेवा एवं शिक्षा की व्यवस्था पर अपना ध्यान केन्द्रित किया था। उन्होंने **कक्षा–**1 से कक्षा 5 तक के बच्चों के लिए कार्यो की रूपरेखा निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया–

कक्षा–1 छोटी मेज व कुर्सियों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना, ठंडी एवं गर्म, मोटी एवं पतली, ऊँची एवं नीची, चिकनी व खुदरी वस्तुओं में अन्तर करना आदि।

कक्षा–2 हाथ मुँह थोना, कपड़े पहनना व उतारना, उचित स्थान पर बैठना, सही ढंग से भोजन करना, आस–पास के स्थान को स्वच्छ रखना, छोटी बड़ी व विभिन्न रंगों की वस्तुओं में अन्तर करना आदि।

कक्षा–3 दृष्टि, गति व स्पर्श आदि के अभ्यास करना, सीधी रेखा पर चलने हेतु शरीर पर नियन्त्रण करना, अक्षरों की जानकारी करना व ड्राइंग बनाना आदि।

कक्षा–4 बर्तन धोना, खाना परोसना, कमरे की वस्तुओं को उचित रूप से उचित स्थान पर रखना, विभिन्न गतियों को पहचानना, विभिन्न उपकरणों एवं वस्तुओं से गिनती करना सीखना, लिखने पढ़ने एवं गणित का ज्ञान, ड्राइग बनाना आदि।

कक्षा–5 उपरोक्त कार्यों की पुनरावृत्ति, शारीरिक स्वच्छता पर विशेष ध्यान देना, समय पर ध्यान देना, शिष्टाचार का अभ्यास एवं व्यवहार करना, भौगोलिक, ऐतिहासिक एवं शारीरिक व वैज्ञानिक शब्दों की जानकारी करना, खेल के माध्यम से व्याकरण की जानकारी करना आदि।

Downloaded From www.dietmathura.org

बाल घर/विद्यालय

डॉ मॉरिया मॉन्टेसरी के अनुसार विद्यालय एक प्रकार से घर के समान है इसलिए डॉ मॉरिया मॉन्टेसरी ने इसे 'बालघर' कहा है। यहाँ घर के सुख साधन उपलब्ध रहते हैं। बालघर में खेल का मैदान व सुन्दर उद्यान अवश्य होते है तथा बालघर शान्त वातावरण में स्थित होते है। इन बालघरों में एक बहुत बड़ा कमरा होता है, जिसमें सभी बालक एकत्र होते है तथा बहुत से छोटे–छोटे कमरे विशेष कार्यों के लिए होते है। इन कमरो की साफ–सफाई, सजावट एवं देख–रेख वे स्वयं करते है। बालघर में फर्नीचर आदि भी छोटे–छोटे होते है। जिन्हें बालक अपनी आवश्यकतानुसार प्रयोग में ला सके। इन विद्यालयों में कोई समय सारणी नहीं होती है। बालक स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य करता हुआ अपना विकास करता है।

शिक्षक

डॉ मॉरिया मॉन्टेसरी के अनुसार–शिक्षक का कार्य एक निर्देशक की भाँति होता है। डॉ मॉरिया मॉन्टेसरी ने स्त्री शिक्षक को अपनी शिक्षण पद्धति में विशेष स्थान दिया है। शिक्षिका का कार्य धैयपूर्वक बालक की गतिविधियों का निरीक्षण करना है और आवश्यकता पड़ने पर सहायता देना है उसकी भूमिका बालकों के प्रति सहानुभूति रखने वाली साथी या मित्र की भाँति होती है। स्त्री शिक्षक नियुक्त करने का कारण यही है कि उसमें ममता, सहयोग, सहानुभूति संरक्षण की भावना अधिक रहती है। शिक्षिका को बाल मनोविज्ञान का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए साथ ही शिक्षा के विविध उपकरणों के प्रयोग का भी ज्ञान हो।

> **चर्चा बिन्दु**–प्राथमिक स्तर की कक्षाओं में पुरुष शिक्षक की अपेक्षा महिला शिक्षक प्रभावशाली होती है, क्यों?

विद्यार्थी

मान्टेसरी शिक्षा विधि में बालक शिक्षा का केन्द्र है। उनका कथन है कि यदि कोई शैक्षिक कार्य सफल हो सकता है तो वही जो बालक के पूर्ण व्यक्तित्व के विकास में सहायता प्रदान करता है। बालक के अन्दर विकास की अनेक सम्भावनायें बीज रूप में निहित होती है। इसका विकास स्वतन्त्र वातावरण में ही हो सकता है। अतः बालक की रूचि और इच्छा को महत्व देना आवश्यक है। डॉ मॉरिया मॉन्टेसरी ने एक स्थान पर कहा है–''बालक एक शरीर है जो बढ़ता है, एक आत्मा है जो विकसित होता है। विकास के इन दोनों स्वरूपों को न हमें कुरूप बनाना है और न दबाना चाहिए। परन्तु उस समय के लिए प्रतीक्षा करनी चाहिए जब किसी शक्ति का क्रमानुसार प्रकटीकरण हो।'' स्पष्ट

Downloaded From www.dietmathura.org

है कि बालक को उसकी रूचि के अनुसार स्वतन्त्रतापूर्वक एवं स्वभाविक रूप से विकसित होने में सहायता देनी चाहिए।

शिक्षण विधि

शैक्षिक सिद्धान्त

- आत्म विकास का सिद्धान्त
- ज्ञानेन्द्रिय प्रशिक्षण का सिद्धान्त
- स्वतन्त्रता का सिद्धान्त
- व्यक्तिग विकास का सिद्धान्त
- मॉसपेशियो के प्रशिक्षण
- खेल विधि द्वारा शिक्षा का सिद्धान्त

मॉण्टेसरी ने अपने शिक्षण सिद्धान्तों के अनुसार शिक्षण विधि को तीन भागों में बाँटा है–

1. **कर्मेन्द्रियों की शिक्षा**–डॉ मॉरिया मॉन्टेसरी प्रणाली में तीन से सात वर्ष के बच्चों को शिक्षा दी जाती है। डॉ मॉरिया मॉन्टेसरी विद्यालयों में बच्चों से इस प्रकार कार्य कराये जाते है जिससे वे आनन्द प्राप्त कर सके। वहाँ वे हाथ मुँह धोना स्वयं कपड़ों पहनना, साफ, सफाई, वस्तुओं को सम्भाल कर रखना आदि दैनिक जीवन के कार्य सफलतापूर्वक सीख जाते है। इस प्रकार की शिक्षा उन्हें सभ्य, संस्कृत, तथा व्यवहार कुशल बनाती है। इस प्रकार वे कर्मेन्द्रियों के प्रयोग द्वारा पूर्ण विकास की ओर बढ़ते हैं।
2. **ज्ञानेन्द्रियों की शिक्षा**–डॉ मॉरिया मॉन्टेसरी के अनुसार इन्द्रिय अनुभव ही बालक की शिक्षा का आधार है। ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से बाह्य संसार का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। इसके लिए उन्होंने विशेष उपकरणों का निर्माण किया।
3. **भाषा तथा गणित की शिक्षा**– डॉ मॉरिया मॉन्टेसरी ने लिखने पढ़ने की शिक्षा में मौलिकता का परिचय दिया। इस प्रणाली में पहले लिखना और बाद में पढ़ना सिखाने के लिए कहते है। बालक पहले लकड़ी के तख्तो पर कटे अक्षरों में अंगुलियाँ फेरता है। अंगुलियाँ फेरते–फेरते उसकी मॉसपेशियाँ सघ जाती है। इसके साथ वह शिक्षिका के साथ ध्वनि से भी परिचय प्राप्त करता है। और फिर स्वयं उच्चारण करना सीखता है। इस प्रकार लिखना सीखते–सीखते पढ़ना भी सीख जाता है। पढ़ने के बाद अंक गणित का ज्ञान कराने के लिए भी कई शिक्षा के उपकरण प्रयोग में लाये जाते है।

Downloaded From www.dietmathura.org

अभ्यास प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. शिक्षा के अर्थ उद्देश्य एवं शिक्षण विधियों पर मॉण्टेसरी के विचारों पर प्रकाश डालिये?

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. मॉण्टेसरी विद्यालय के पाठ्यक्रम की विवेचना कीजिए?
2. मॉण्टेसरी के बालघर की अवधारणा को स्पष्ट करे ?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. मॉण्टेसरी शिक्षण प्रक्रिया में 'बालघर' से तात्पर्य है–

   (क) विद्यालय   (ख) घर

   (ग) उद्यान   (घ) दुकान

2. मॉण्टेसरी ने मुख्य रूप से किन बच्चों की शिक्षा पर ध्यान दिया ?

   (क) प्रतिभाशाली बालक   (ख) मानसिक रूप से मन्दिर

   (ग) विकलांग बालक   (घ) समस्यात्मक बालक

सत्रीय कार्य

पाश्चात्य विचारकों के शैक्षिक विचारों की तुलना की चार्ट के माध्यम से प्रस्तुत करें।

Downloaded From www.dietmathura.org

शिक्षा व समाज का अन्तः सम्बन्ध

> ''शिक्षा अतीत का चित्र प्रस्तुत करने का उत्तम कार्य करती है और उस चित्र को प्रस्तुत करके अतीत को सुरक्षित रखती है। यह वर्तमान समय में भूतकाल की उपलब्धियों की रक्षा करने का उत्तम कार्य करती है। यह ज्ञान और शक्ति से वर्तमान संग्रह में वृद्धि करके और इस प्रकार भविष्य को भूत से अच्छा बनाने की सम्भावना का सर्वोत्तम कार्य करती है। –**हार्न**

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। उसे समाज में एक कुशल सामाजिक प्राणी के रूप में सफलता प्राप्त करने के लिए दूसरे व्यक्तियों के साथ परस्पर सामंजस्य स्थापित करना पड़ता है। साथ ही उस समाज के मूल्यों, आदर्शो और मान्यताओं के अनुसार अपने व्यवहार में परिवर्तन करना पड़ता है। इस व्यवहार परिवर्तन के कार्य में शिक्षा उनकी सहायता करती है। वह जिस समाज का सदस्य होता है, वही इस शिक्षा का स्वरूप निश्चित करता है। शिक्षा व समाज के अन्तः सम्बन्ध का अध्ययन करने से पूर्व शिक्षा व समाज के अर्थ को समझ लेना आवश्यक है।

प्रमुख शिक्षण बिन्दु

- भूमिका / प्रस्तावना
- शिक्षा से तात्पर्य
- समाज से तात्पर्य
- शिक्षा व समाज का अन्तः सम्बन्ध
- समाज का शिक्षा पर प्रभाव
- शिक्षा का समाज पर प्रभाव
- वर्तमान भारतीय समाज व शिक्षा

शिक्षा से तात्पर्य

आजीवन चलने वाली शिक्षा अपने शाब्दिक अर्थ में विकास की एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा मानव तथा समाज का कल्याण होता है। शिक्षा की आधुनिक धारणा के अनुसार शिक्षा बालक के अन्दर निहित समस्त शक्तियों / गुणों को सामाजिक वातावरण में विकसित करने की कला है।

पेस्टालॉजी–''शिक्षा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों के स्वभाविक, समरस तथा प्रगतिशील विकास की प्रक्रिया है।''

विवेकानन्द–''शिक्षा मनुष्य में अन्तर्निहित पूर्णता का प्रदर्शन / विकास है।''

संक्षेप में शिक्षा एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है जो मानव के सर्वांगीण विकास को ध्यान में रखते हुये उसे एक कुशल एवं जिम्मेदार नागरिक के रूप में तैयार करती है।

समाज से तात्पर्य

मनुष्य ने अपने लम्बे इतिहास में एक संगठन का निर्माण किया है। इस संगठन के अन्तर्गत हमारे कुछ कर्त्तव्य हैं तो कुछ अधिकार। इस संगठन के अन्तर्गत हमें एक निश्चित प्रकार से रहना और व्यवहार करना पड़ता है तथा उनमें परस्पर कुछ सम्बन्ध होते हैं। मनुष्यों के जिस संगठन में ये सम्बन्ध पाये जाते हैं, उसी को 'समाज' कहते हैं। अधिक स्पष्ट शब्दों में हम कह सकते हैं– समाज मनुष्य का सामाजिक सम्बन्धों के नाम है।

गिडिंग्स–''समाज स्वयं एक संघ है, संगठन है, औपचारिक सम्बन्धों का पुंज है जिसमें सहयोग देने वाले व्यक्ति परस्पर सम्बन्धित होते हैं।''

Downloaded From www.dietmathura.org

राइट–''समाज का आशय केवल व्यक्तियों के समूह से नहीं, समूह में रहने वाले व्यक्तियों के जो पारस्परिक सम्बन्ध हैं, उन सम्बन्धों के संगठित स्वरूप से है।''

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर समाज की निम्नलिखित विशेषतायें होती हैं –

- समाज एक अमूर्त संस्था है।
- समाज के सदस्यों में परस्पर निर्भरता विद्यमान होती है।
- समाज में व्यक्तियों के सम्बन्ध केवल सकारात्मक नहीं होते हैं।
- समाज के व्यक्तियों में परस्पर संचेतना होती है।
- समाज पारस्परिक सम्बन्धों का पुंज है।
- समाज में समानता व असमानता दोनों विद्यमान होती हैं।

शिक्षा व समाज का अन्तःसम्बन्ध

विद्यालय समाज की ही एक इकाई है। दोनों के सुचारू रूप से संचालन के लिए परस्पर सहयोग नितान्त आवश्यक है। व्यक्ति के विकास के लिए समाज की सभी इकाइयों में परस्पर सहयोग आवश्यक है। अतः विद्यालय एवं समाज में परस्पर अन्तःसम्बन्ध होता है। इनके परस्पर सहयोग से उत्पन्न वातावरण मानव के विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक तथा लाभप्रद होता है। संक्षेप में शिक्षा तथा समाज का सम्बन्ध अटूट हैं। हम देखते हैं कि जब किसी समाज ने शिक्षा की व्यवस्था की है तो सबसे पहले अपनी आवश्यकताओं तथा आदर्शों को सामने रखा है। स्पष्ट है कि जैसा–समाज होगा वैसी शिक्षा होगी। अर्थात् जिस समाज में जैसे आदर्श होंगे उस समाज की शिक्षा भी उन्हीं आदर्शों के अनुरूप होगी। इतिहास इस बात का साक्षी है कि विभिन्न–विभिन्न समाजों में समय–समय पर अलग–अलग तरह से विभिन्न प्रकार की शिक्षा दी गई और आज भी वर्तमान समय के आदर्शों मूल्यों के अनुरूप दी जा रही है। कतिपय उदाहरणों के माध्यम से समाज व शिक्षा के अन्तःसम्बन्धों को व्यक्त किया जा सकता है–

1. प्राचीन एवं मध्यकालीन समाज

प्राचीन व मध्यकालीन समाज धर्मप्रधान था। अतः शिक्षा भी धार्मिक थी। तत्कालीन धर्म प्रधान समाज के अनुरूप धार्मिक सिद्धान्तों का अनुसरण करते हुए व्यक्ति के धार्मिक व चारित्रिक विकास पर बल दिया जाता था।

आधुनिक समाज

आधुनिक समाज पर विज्ञान का विशेष प्रभाव है। अतः शिक्षा के द्वारा इस बात पर बल दिया जाता है कि व्यक्ति की चिन्तन, तर्क, निर्णयन आदि मानसिक शक्तियों का विकास हो। ध्यान देने की बात है कि वर्तमान समाज के विभिन्न रूप हैं जिनके अपने आदर्श तथा सिद्धान्त हैं जो उसी के अनुरूप शिक्षा की व्यवस्था करते हैं–

Downloaded From **www.dietmathura.org**

- आदर्शवादी समाज के अन्तर्गत आध्यात्मिक मूल्यों को महत्व दिया जाता है। ऐसे समाज में शिक्षा का चरित्र तथा गठन आदर्शवादी होता है अर्थात् व्यक्ति की आध्यात्मिक उन्नति पर विशेष रूप से बल दिया जाता है।
- भौतिकवादी समाज के अन्तर्गत भौतिक सम्पन्नता को मुख्य स्थान दिया जाता है। अतः भौतिकवादी समाज में शिक्षा का मुख्य लक्ष्य समाज को भौतिक सम्पदा से परिपूर्ण बनाने में सहयोग देना है जिससे समाज की भौतिक उन्नति सम्भव हो सके।
- प्रयोजनवाद के अनुसार सत्य, आदर्श, मूल्य आदि देश काल, परिस्थितियों के अनुसार बदलते रहते हैं और शिक्षा के स्वरूप में भी निरन्तर समयानुसार परिवर्तन होते रहना चाहिए।
- फासिस्ट समाज/निरकुंश समाज के अन्तर्गत व्यक्ति की अपेक्षा राज्य को महत्व दिया जाता है तथा राज्य के हितों को ध्यान में रखते हुये शिक्षा की व्यवस्था की जाती है। इस प्रकार के समाज में शिक्षा के माध्यम से व्यक्यिों को समान रूप से विकास का अवसर नहीं मिलता है।
- जनतन्त्रात्मक समाज के अन्तर्गत व्यक्ति के व्यक्तित्व को विशेष महत्व दिया जाता है तथा लोकतन्त्र के आदर्श स्वतन्त्रता, समता, न्याय, बन्धुत्व, धर्म निरपेक्षता आदि गुणों को शिक्षा के माध्यम से समाज व व्यक्ति के अन्दर विकसित करने का प्रयास किया जाता है।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि प्रत्येक समाज की शिक्षा प्रणाली उसके आदर्शों, आवश्यकताओं, आकांक्षाओं तथा विचारधाराओं के अनुसार होती है। इसके अतिरिक्त शिक्षा व समाज के मध्य अन्तःसम्बन्धों को हम परस्पर एक दूसरे पर डालने वाले प्रभाव के माध्यम से भी समझ सकते हैं।

समाज का शिक्षा पर प्रभाव

इसके अन्तर्गत हम निम्नलिखित विचार बिन्दुओं पर बल देते हैं–

समाज की प्रकृति तथा आदर्श का प्रभाव

हम जानते हैं कि जिस समाज की जैसी प्रकृति तथा आदर्श होंगे शिक्षा भी उसी के अनुरूप होगी। यह हमारा समाज निरकुंश प्रकृति का है तो हमारी शिक्षा व्यवस्था में भी आज्ञा पालन तथा अनुशासन पर विशेष बल दिया जायेगा। इसके विपरीत यदि हमारा समाज जनतान्त्रिक है तो शिक्षा में समानता, स्वतन्त्रता, सहभागिता आदि पर विशेष बल देते हुये व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन के आदर्शों को प्राप्त करने का विशेष प्रयास किया जाएगा। हमारे देश में भी जनतन्त्र है। अतः भारतीय समाज में जनतान्त्रिक आदर्शों को ध्यान में रखते हुये शिक्षा के विभिन्न अंगों को निर्धारित करते हुये निःशुल्क व अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था की जाती है।

सोचें और बताएँ– जनतान्त्रिक समाज में शिक्षा का उद्‌देश्य क्या होना चाहिए?

-
- **राजनीतिक व आर्थिक दशाओं का प्रभाव**
- विभिन्न समाज की राजनीतिक, आर्थिक दशाओं का भी शिक्षा पर विशेष रूप से प्रभाव पड़ता है। समाज की राजनीतिक पृष्ठभूमि व आर्थिक स्थिति के अनुरूप शिक्षा को निर्धारित करने का प्रयास किया जाता है।

Downloaded From www.dietmathura.org

- **सामाजिक दृष्टिकोण व सामाजिक परिवर्तन का प्रभाव**
- सामाजिक दृष्टिकोण भी शिक्षा को प्रभावित किये बिना नहीं रह सकता है। अगर समाज रूढ़िवादी प्रकृति का है तो वहाँ परम्परागत शिक्षा पर बल दिया जाता है और अगर समाज प्रगतिशील है तो शिक्षा भी नवाचार से सम्पन्न होगी। इसके अलावा विभिन्न सामाजिक परिवर्तनों के अनुरूप शिक्षा में भी बदलाव आता है अर्थात् अगर समाज की दिशा व आवश्यकता बदल जाती है तो शिक्षा का स्वरूप भी बदल जाता है।

शिक्षा का समाज पर प्रभाव

जिस प्रकार समाज का शिक्षा पर प्रभाव पड़ता है उसी प्रकार शिक्षा भी निम्नलिखित तरीकों से समाज को प्रभावित करती है–

- सामाजिक विरासत का संरक्षण
- सामाजिक भावना की जागृति
- समाज का राजनैतिक विकास एवं आर्थिक विकास
- सामाजिक नियन्त्रण का कार्य
- सामाजिक परिवर्तन
- सामाजिक सुधार
- बालक का समाजीकरण

चर्चा करे– शिक्षा बालक के समाजीकरण में किस प्रकार सहायक है ?

वर्तमान/आधुनिक भारतीय समाज व शिक्षा

आधुनिक भारतीय समाज अभी भी अनेक दृष्टियों से पिछड़ा हुआ समाज है। आज भी भारतीय समाज में अनेक कुरीतियाँ जैसे– भेदभाव, साम्प्रदायिकता, ऊँच–नीच की भावना, दहेज प्रथा, कन्या भ्रूण हत्या, अशिक्षा आदि व्याप्त हैं। अतः आज ऐसी शिक्षा की परम आवश्यकता है जो न केवल बालकों का शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक व सामाजिक विकास करे अपितु बालकों को इस योग्य भी बना सके कि वे समयानुकूल भारतीय समाज की माँगों के अनुसार नवीन आदर्शों तथा मूल्यों की रचना करते हुये सामाजिक दोषों को दूर कर सकें। शिक्षा के द्वारा प्रत्येक बालक को उसके कर्त्तव्यों तथा अधिकारों का उचित ज्ञान देते हुये उसे जनतांत्रिक जीवन के लिए तैयार किया जा सकता है। यही नहीं शिक्षा के द्वारा ही विभिन्न भेदभावों को दूर करके प्रजातन्त्र के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है। शिक्षा के द्वारा हमें भारतीय समाज में विद्यमान कुरीतियों को जड़ से नष्ट करना है तथा बालकों को उचित मार्गदर्शन द्वारा कुशल नागरिक बनाना है तथा ऐसे आदर्शों व मूल्यों की रचना करनी है जो हमारे समाज की प्रगति के लिए आवश्यक हो। अतः शिक्षा को इस सम्बन्ध में समाज की पूरी सहायता करनी चाहिए।

विचार करें– शिक्षा द्वारा सामाजिक कुरीतियों का निवारण किस प्रकार किया जा सकता है?

Downloaded From www.dietmathura.org

अभ्यास प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. ''शिक्षा और समाज एक दूसरे के पूरक हैं।'' स्पष्ट कीजिए।

2. ''विभिन्न प्रकार के समाजों में प्रदान की जाने वाली शिक्षा विभिन्न होती है।'' इस कथन की व्याख्या कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. समाज को परिभाषित करते हुए उसका अर्थ स्पष्ट कीजिए।

2. समाज शिक्षा को किस प्रकार प्रभावित करता है ?

3. विद्यालय व समाज के अन्तःसम्बन्ध को स्पष्ट कीजिए।

अति लघु उत्तरीय प्रश्न

1. शिक्षा का अर्थ स्पष्ट कीजिए।

2. समाज की एक उपयुक्त परिभाषा दीजिए।

3. आदर्शवादी समाज में शिक्षा का स्वरूप कैसा था ?

4. समाज की किन्हीं दो विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. ''शिक्षा मनुष्य में अन्तर्निहित पूर्णता का विकास है।'' यह कथन किसका है–

(क) विवेकानन्द (ख) पेस्टालॉजी (ग) महात्मा गांधी (घ) ड्यूवी

Downloaded From www.dietmathura.org

शिक्षा के प्रभावी कारक

प्रायः यह विश्वास किया जाता है कि बालक को शिक्षा केवल विद्यालय तथा कालेजों में ही दी जाती है परन्तु वास्तविकता यह है कि बालक इनके अतिरिक्त अनेक कारकों या साधनों के माध्यम से शिक्षा प्राप्त करता है। प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री जॉन डीवी के अनुसार शिक्षा का अर्थ है जीवन अथवा विकास। उनका मत है कि जीवन या विकास का अच्छा या बुरा होना वंशानुक्रम तथा वातावरण पर निर्भर करता है। वंशानुक्रम निश्चित होता है परन्तु वातावरण को अच्छा या बुरा बनाया जाता है। अतः जीवन या विकास का अच्छा या बुरा होना वातावरण पर ही निर्भर करता है। इस दृष्टि से बालक के जीवन तथा विकास के लिए उपयुक्त वातावरण प्रस्तुत करना ही शिक्षा है। परिवार, समुदाय, राज्य, धर्म, स्कूल, पुस्तकालय, सिनेमा, रेडियो, टी0वी0 आदि जनसंचार के साधन आदि ऐसे तत्व या कारक हैं जो बालक को हर प्रकार का वातावरण प्रस्तुत करते हैं। ये सभी कारक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से एवं चेतन व अचेतन दोनों रूपों में शैक्षिक प्रभाव डालते हैं। संक्षेप में इनका विवरण निम्नलिखित है–

प्रमुख शिक्षण बिन्दु
- शिक्षा के प्रभावी कारक के रूप में परिवार
- शिक्षा के प्रभावी कारक के रूप में समाज
- शिक्षा के प्रभावी कारक के रूप में विद्यालय
- शिक्षा के प्रभावी कारक के रूप में राज्य
- शिक्षा के प्रभावी कारक के रूप में जनसंचार के साधन

शिक्षा के प्रभावी कारक के रूप में परिवार

घर, कुटुम्ब अथवा परिवार मानव समाज की प्राचीनतम एवं आधारभूत इकाई या एक ऐसा समूह है जिसमें बूढ़े, जवान, पति, पत्नी तथा उनके बच्चे होते हैं जिनका आपस में परस्पर रक्त सम्बन्ध होता है अर्थात् जिनके बीच निकटवर्ती सम्बन्ध हो तथा जो एक दूसरे को किसी न किसी प्रकार से प्रभावित करें। परिवार को बालक की प्रथम पाठ्शाला तथा माँ को उसकी प्रथम शिक्षिका कहा जाता है। नवजात शिशु अपने जीवन की यात्रा परिवार से प्रारम्भ करता है तथा इसी संस्था में रहते हुये उसे विभिन्न प्रकार की शिक्षा प्राप्त होती है। जैसे–जैसे बालक की आयु में वृद्धि होती जाती है वैसे–वैसे परिवार द्वारा उसमें उन सभी मानवीय गुणों का विकास होता जाता है जिनकी आवश्यकता उसे आगे चलकर एक सुयोग्य एवं सच्चरित्र नागरिक के रूप में पड़ती है। बालक को बनाने व बिगाड़ने का दायित्व अब भी परिवार का ही है।

चर्चा करें– ''परिवार को बच्चों की प्रथम पाठशाला माना जाता है''। क्यों ?

परिवार में रहते हुये बालक को यूं तो अनेक सुविधाएँ मिलती रहती हैं परन्तु प्रत्येक परिवार दो महत्वपूर्ण बातों की पूर्ति अवश्य करता है– स्नेह तथा सामाजीकरण। परिवार ही ऐसा स्थान है जहाँ बालक को वास्तविक स्नेह मिलता है। परिवार में ही बालक में 'अपनेपन' की भावना विकसित होती है। तथा वह अपने आपको सुरक्षित समझता है। यही अपनापन तथा मनोवैज्ञानिक सुरक्षा बालक के विकास के लिए परम आवश्यक है।

Downloaded From www.dietmathura.org

परिवार एक छोटी सी सामाजिक संस्था है जिसमें रहते हुये बालक परिवार के सदस्यों के सम्पर्क में आता है, उनसे परस्पर विचारों का आदान–प्रदान करता है तथा उनसे प्रभावित होता है। इस प्रभाव से बालक समाज के तौर–तरीके सीखता है तथा अपने व्यक्तित्व का निर्माण करता है। परिवार में रहते हुये बालक अपने भावों तथा विचारों को प्रकट करने के लिए एक आवश्यक शब्दावली बना लेता है। यही है उसकी मातृभाषा, जिसके माध्यम से उसके ज्ञान भण्डार में वृद्धि होती रहती है। परिवार में ही बालक माता से प्रेम, भाई–बहनों से भ्रातृत्व भावना तथा पिता से न्याय आदि नैतिक आदर्शों की शिक्षा प्राप्त करता है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि पारिवारिक शिक्षा बालक के व्यक्तित्व की एक आधारशिला बन जाती है जिसे वह जीवन पर्यंन्त कभी नहीं भूलता है। पारिवारिक वातावरण के कारण ही प्रत्येक बालक सामान्य ज्ञान, रुचियों, भाषा व्यवहार तथा नैतिकता की दृष्टि से भिन्न होता है।

बालक के विकास में परिवार का कार्य

- शारीरिक विकास
- मानसिक विकास
- संवेगात्मक विकास
- सामाजिक विकास
- धार्मिक विकास
- संस्कृति का हस्तान्तरण
- भाषा का विकास
- नैतिकता तथा चरित्र का विकास
- व्यक्तित्व का विकास
- रुचियों तथा आदतों का विकास

विचार करें–**"बच्चों के व्यक्तित्व पर परिवार का वातावरण महत्वपूर्ण प्रभाव डालता है।" क्यों एवं कैसे?**

शिक्षा के प्रभावी कारक के रूप में समाज

शिक्षा तथा समाज का अटूट सम्बन्ध है। प्रत्येक समाज अपनी आवश्यकताओं, आकांक्षाओं तथा आदर्शों को सामने रखते हुए शिक्षा प्रक्रिया को इस प्रकार नियोजित करता है कि वह अपने आदर्शों को प्राप्त कर ले तथा उस समाज के सभी व्यक्ति उपयोगी नागरिक बन जाएँ।

यह सर्व विदित है कि प्रत्येक समाज अपनी प्रकृति के अनुरूप ही शिक्षा का नियोजन करता है। समाज की विशेषता, आवश्यकता, मान्यता, मूल्य शिक्षा में व्यवस्थित करके ही उद्देश्य का निर्धारण किया जाता है। इसी कारण शिक्षा को सामाजिक प्रक्रिया का दर्जा प्राप्त होता है। प्राचीन भारतीय समाज की प्रकृति को दृष्टिगत रखकर ही प्राचीन भारतीय शिक्षा का विधान किया गया था। सम्पूर्ण शिक्षा में धर्म एवं अध्यात्म का बोलबाला था। संस्कारों को विशेष महत्व दिया गया था। शिक्षा का अन्तिम उद्देश्य मोक्ष की प्राप्ति था। मोक्ष की प्राप्ति हेतु शारीरिक विकास, मानसिक, बौद्धिक, नैतिक एवं चारित्रिक विकास को लक्ष्य के रूप में शिक्षा में प्रतिष्ठित किया गया था। पाठ्यचर्या मे सांसारिक एवं आध्यात्मिक विषयों का अनुपम सम्मिश्रण था। देवालय, मकतब, मस्जिद, चर्च शिक्षा के केन्द्र के रूप में जाने जाते थे। गुरू शिष्य दोनों में नैतिकता एवं सच्चरित्रता का समावेश था किन्तु भारत में अंग्रेजी साम्राज्य के पदार्पण के साथ ही भौतिकवादी प्रवृत्तियों का भारतीय समाज में अभ्युदय हुआ। यह प्रक्रिया स्वतन्त्रता के पश्चात् भी बड़ी तीव्र गति से चल रही है। वर्तमान समय में कोई भी समाज निम्नलिखित प्रकार से अपने तत्कालीन आदर्शों, मूल्यों को प्राप्त करने हेतु शैक्षिक विकास में भूमिका अदा कर सकता है–

Downloaded From www.dietmathura.org

- विद्यालयों की स्थापना
- तत्कालीन परिस्थितियों के अनुरूप शिक्षा के उद्देश्यों का निर्धारण
- शिक्षा पर नियन्त्रण।
- सार्वभौमिक शिक्षा की व्यवस्था
- पाठ्यक्रम का निर्माण
- व्यवसायिक तथा औद्योगिक शिक्षा की व्यवस्था।
- प्रौढ़ शिक्षा।
- विद्यालयों के लिये धन की व्यवस्था।
- नागरिकों तथा विद्यालयों में परस्पर सहयोग (शिक्षक अभिभावक सम्पर्क/सहयोग)

चर्चा के बिन्दु– शिक्षा के विकास में समाज की क्या भूमिका है?

शिक्षा के प्रभावी कारक के रूप में विद्यालय

प्राचीन युग में मानव का जीवन अत्यन्त सरल था। उस युग में ज्ञान की इतनी वृद्धि नहीं हुई थी जितनी आज हो गयी है। इसका कारण यह है कि उस युग में मानव की आवश्यकताओं सीमित थी तथा उन्हें परिवार एवं अन्य औपचारिक साधनों के द्वारा पूरा कर लिया जाता था। परन्तु धीरे–धीरे मानव जीवन इतना जटिल होता गया कि उसका सम्पूर्ण ज्ञान बालक को परिवार तथा अन्य औपचारिक साधनों के द्वारा देना कठिन हो गया। अतः एक ऐसी नियमित संस्था की आवश्यकता अनुभव होने लगी जो सामाजिक तथा सांस्कृतिक सम्पत्ति को सुरक्षित रख सके तथा उसे विकसित करके भावी पीढ़ी को हस्तान्तरित कर सके। इस दृष्टि से विद्यालय का जन्म हुआ। जॉन डीवी के शब्दों में– विद्यालय एक ऐसा विशिष्ट वातावरण है जहाँ बालक के वाँछित विकास की दृष्टि से उसे विशिष्ट क्रियाओं तथा व्यवसायों की शिक्षा दी जाती है। संक्षेप में स्कूल/विद्यालय वे संस्थाएँ हैं जिनको सभ्य मानव ने इस दृष्टि से स्थापित किया है कि समाज में सुव्यवस्थित तथा योग्य सदस्यता के लिए बालकों की तैयारी में सहायता मिले।

शिक्षा के प्रभावी कारक के रूप में विद्यालय के कार्यों को मोटे–तौर पर दो भागों में बाँटते हैं–

विद्यालय के औपचारिक कार्य

इसके अन्तर्गत सर्वप्रथम कार्य बालकों का मानसिक विकास करना है, तत्पश्चात् संस्कृति का संरक्षण और अगली पीढ़ी को हस्तान्तरण, सामाजिक भावना का विकास, चरित्र निर्माण, नेतृत्व के गुण प्रदान करना और व्यवसायिक प्रशिक्षण आदि हैं।

विद्यालय के अनौपचारिक कार्य

विद्यालय के अनौपचारिक कार्यों की सूची निश्चित नहीं है। इसके अन्तर्गत शारीरिक विकास, खेलकूद, सांस्कृतिक कार्यक्रम, समाज सेवा कार्य, रचनात्मक शक्ति का विकास आदि वे सभी कार्य आते हैं जो बालक के सर्वांगीण विकास में सहायक हो सकता है।

चर्चा के बिन्दु– बालकों के व्यक्तित्व का सन्तुलित विकास हो। इसके लिए विद्यालय का वातावरण कैसा होना चाहिए?

Downloaded From www.dietmathura.org

शिक्षा के प्रभावी कारक के रूप में राज्य

परिवार, समाज, विद्यालय के समान राज्य भी शिक्षा की महत्वपूर्ण संस्था के रूप में कार्य करता है। राज्य एक सामाजिक संस्था है। यह समाज का उद्देश्यपूर्ण संगठन है जो जनता के हित के लिए बनाया जाता है। आज के वर्तमान युग में सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक जटिलतायें इतनी बढ़ गई हैं कि राज्य के अतिरिक्त कोई दूसरा अभिकरण नहीं है जो व्यक्ति और समूहों के व्यवहार को नियंत्रित कर सके। जीवन का कोई भी पक्ष ऐसा नहीं है जो राज्य के प्रभाव से अछूता हो।

राज्य का विकास समाज ने अपने हितों की रक्षा के लिए किया है। इसे एक सुसंगठित राजनैतिक समुदाय की संज्ञा दी जा सकती है। समाज ने राज्य को शक्ति और अधिकार देकर समाज में सुरक्षा, न्याय और अनुशासन स्थापित करने का काम सौंपा है। हमारे देश में जनतंत्र या प्रजातांत्रिक शासन व्यवस्था है। जनतान्त्रिक राज्य की अपनी निजी शक्तियाँ सीमित होती हैं। ऐसा राज्य अपनी शक्ति को अपने निर्माणकर्त्ताओं में विकेन्द्रित कर देता है, जिसमें व्यक्ति तथा समाज दोनों की अधिक से अधिक उन्नति होती है। इस दृष्टि से जनतांत्रिक शासन व्यवस्था के अन्तर्गत शिक्षा के समस्त कार्य नागरिकों के हित के लिए नागरिकों पर छोड़ दिये जाते हैं। राज्य तो केवल शिक्षा के विकास हेतु अधिक से अधिक सुविधाएँ देता है। इस प्रकार जनतांत्रिक राज्य में शिक्षा की व्यवस्था समानता, स्वतन्त्रता, भातृत्व एवं आपसी समझौते के सिद्धान्तों पर आधारित होती है। प्रत्येक व्यक्ति को बिना किसी भेदभाव के यथाशक्ति शिक्षा प्राप्त करने के लिए अधिक से अधिक समान अवसर प्रदान किये जाते हैं। इससे व्यक्ति तथा समाज दोनों अधिक से अधिक विकास की ओर अग्रसर होते हैं। संक्षेप में जनतन्त्रीय राज्य सामाजिक शिक्षा के रूप में किसी साध्य को प्राप्त करने का साधन है एवं साध्य नहीं। भारत में शिक्षा को विकेन्द्रित कर दिया गया है। भारत में शिक्षा राज्य एवं केन्द्र दोनों सरकारों के अधीन एवं साझेदारी के अन्तर्गत है।

शिक्षा के प्रभावी कारक के रूप में राज्य के कार्य

- राष्ट्रीय शिक्षा की योजना का निर्माण
- नागरिकता का प्रशिक्षण
- राजनैतिक प्रशिक्षण
- सामाजिक प्रशिक्षण
- सांस्कृतिक प्रशिक्षण
- आर्थिक प्रशिक्षण
- विद्यालय पद्धति का सामान्य नियन्त्रण एवं निर्देशन
- शैक्षिक आयोगों की नियुक्ति
- शैक्षिक अनुसंधान को प्रोत्साहन
- स्कूलों की व्यवस्था
- प्रौढ़ शिक्षा

Downloaded From www.dietmathura.org

- विद्यालयों के लिए धन की व्यवस्था
- सार्वभौमिक व अनिवार्य निः शुल्क शिक्षा
- अभिभावकों को प्रोत्साहन
- कुशल शिक्षकों की व्यवस्था
- उत्तम पुस्तकों की व्यवस्था
- छात्रवृत्तियों की व्यवस्था

शिक्षा के प्रभावी कारक के रूप में जनसंचार के साधन

सामान्यतः जन संचार के साधन से अभिप्राय ऐसे अभिकरण से है जिनके प्रयोग से विभिन्न प्रकार की सूचनाएँ, स्पष्टीकरण, प्रश्न आदि दूरदराज के क्षेत्रों में लगभग प्रत्येक व्यक्ति तक पहुँचाने का प्रयास किया जाए। इस प्रकार के साधन या माध्यम हैं– रेडियो, दूरदर्शन, समाचार पत्र, पत्रिकाएँ आदि। जब इन साधनों का प्रयोग शिक्षा के लिए किए जाता है तब ये शिक्षा के साधन कहलाते हैं। इन साधनों के उपयोग से शिक्षा से जुड़े विभिन्न उद्देश्यों या शैक्षिक कार्यों को पूरा करने का प्रयास किया जाता है। उदाहरण के लिए राष्ट्र के परिप्रेक्ष्य में सबके लिए शिक्षा पहुँचाने के कार्य को इन साधनों के माध्यम से पूरा किया जा सकता है। आधुनिक युग में जनसंचार शिक्षा का बहुत ही शक्तिशाली साधन है। इसके माध्यम से बहुत कम समय में एक साथ बहुत अधिक लोगों को प्रभावित किया जा सकता है।

भारतीय समाज के सन्दर्भ में जनसंचार साधनों के प्रयोग से शिक्षा को निम्नलिखित रूप से प्रभावशाली बनाया जा सकता है–

- जनसंचार माध्यम से सब तक शिक्षा पहुँचाकर संविधान की धारा 45 के राष्ट्रीय लक्ष्य को पूरा करना।
- सामाजिक दृष्टि से जनसामान्य में जागरुकता पैदा करना।
- राष्ट्रीय एकता एवं अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव व समझ विकसित करने में सहायता करना।
- देश की विभिन्नता व विविधता से परिपूर्ण संस्कृति से जन सामान्य को अवगत कराना।
- सूचनाओं को शीघ्रता से दूर–दूर तक पहुँचाना।
- मनोवैज्ञानिक दृष्टि से पाठ्यवस्तु को सरल सुबोध व रुचिकर बनाना।
- सामाजिक परिवर्तन लाने हेतु पृष्ठभूमि तैयार करने में मदद करना।
- अवकाश के समय का सदुपयोग करना व मनोरंजन प्रदान करना।
- व्यक्ति में सृजनात्मकता, कल्पनाशीलता आदि गुणों को जागृत करना।
- सामान्य जन को कानूनी शिक्षा, पर्यावरण शिक्षा, यौन शिक्षा, जनसंख्या शिक्षा आदि की सामान्य जानकारी देना।

स्पष्ट है कि अनौपचारिक शिक्षा के साधन या कारक के रूप में जनसंचार के साधन/माध्यम शिक्षा प्रक्रिया को प्रभावशाली रुचिकर व सरल तरीके से लोगों के समक्ष प्रस्तुत करते हैं।

Downloaded From **www.dietmathura.org**

जनसंचार के साधन

जनसंचार के साधनों को मुख्यतः तीन भागों में बाँटा जा सकता है–

अ. मुद्रित साधन

आज हम अपने विचारों को समाचार पत्र एवं पत्रिकाओं, पैम्फलेटों आदि के माध्यम से जन–जन तक पहुँचाते हैं। ये जनसंचार के मुद्रित या लिखित साधन कहलाते हैं। भारत में इन साधनों का प्रयोग पर्याप्त मात्रा में हो रहा है।

ब. इलेक्ॅट्रानिक मीडिया

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के विकास से कुछ ऐसे यंत्रों का निर्माण हुआ है जिनके माध्यम से हम अपने विचारों को कम समय में जन सामान्य तक बड़ी सरलता से पहुँचा सकते हैं। इनमें रेडियो, टेलीविजन, टेलीफोन, मोबाइल, इण्टरनेट आदि प्रमुख हैं। इनको जनसंचार के इलेक्ट्रॉनिक साधन कहा जाता है।

स. सांस्कृतिक साधन

जनसंचार के ये साधन मुख्यतः समाज की संस्कृति से जुड़े होते हैं। ये संस्कृति का एक सन्तति से दूसरी सन्तति को हस्तान्तरण करते हैं। इनको सांस्कृतिक साधन के नाम से जाना जाता है। इसमें रामलीला, नौटंकी, स्वांग, कठपुतली, खेल, लोकगीत, लोकनृत्य आदि महत्वपूर्ण हैं।

जनसंचार साधनों की उपयोगिता

- सूचना प्रदान करने व जन जागरुकता हेतु
- कठिन प्रकरणों को सरल व क्रमबद्ध रूप में प्रस्तुत करने हेतु
- मनोरंजन हेतु
- समस्याओं के समाधान हेतु
- मानसिक शक्तियों यथा चिन्तन, कल्पना, जिज्ञासा के विकास हेतु
- राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं की जानकारी हेतु
- शैक्षिक कार्यक्रमों के प्रसारण हेतु
- तकनीकी ज्ञान के प्रसार हेतु
- सुदूर क्षेत्र में ज्ञान, सूचनाओं के आदान–प्रदान हेतु
- पाठ्यवस्तु को प्रस्तुत करने हेतु

Downloaded From **www.dietmathura.org**

अभ्यास प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. शिक्षा के प्रभावी कारक के रूप में परिवार, समाज एवं राज्य की भूमिका पर प्रकाश डालिए ?
2. जनसंचार साधनों से क्या तात्पर्य है? शिक्षा के क्षेत्र में इनकी उपयोगिता पर प्रकाश डालिए ?

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. शिक्षा के प्रभावी कारक के रूप में विद्यालय के क्या कार्य हैं?
2. राज्य और शिक्षा के सम्बन्ध पर प्रकाश डालिए ?

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

1. शिक्षा के प्रभावी कारक के रूप में राज्य के दो प्रमुख कार्य लिखिए।
2. जनसंचार से आप क्या समझते हैं?

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. शिशु की प्रथम पाठशाला कहा जाता है ?

(क) राज्य (ख) परिवार (ग) समाज (घ) समुदाय

2. जनसंचार के साधनों को मुख्यतः कितने भागों में बाँटा जा सकता है ?

(क) एक (ख) दो (ग) तीन (घ) चार

Downloaded From www.dietmathura.org

शिक्षा और सामाजिक परिवर्तन

"Education can be used as a powerful instrument of social, economic and political change". **- Education commission Report(1964)**

इक्कीसवीं सदी महान परिवर्तनों की धुरी है। इस महान परिवर्तन का सबसे बड़ा पक्ष यह है कि सृजनात्मकता एवं वैज्ञानिक आविष्कारों के परिणामस्वरूप अनेक नवाचार (Innovations) उदित हो रहे हैं। इन नवाचारों द्वारा व्यक्ति अपने चिन्तन, चेतना, कौशल, व्यवहार तथा क्रिया कलापों में बदलाव लाकर समाज के उज्जवल भविष्य की सुनिश्चित सम्भावनाओं को साकार करने के लिए सतत प्रयत्नशील हैं। नवाचारों के अभ्युदय से व्यक्ति की जीवन प्रक्रिया तथा चिन्तन की धाराएँ बदली हैं, जिसके परिणाम स्वरूप सामाजिक मूल्यों, मान्यताओं, आस्थाओं, प्रथाओं, मनोवृत्तियों, रुचियों तथा व्यक्ति की जीवन शैली में व्यापक बदलाव आया है। इस प्रकार वर्तमान समय में समाज में परम्परागत मान्यताओं, प्रथाओं, क्रियाविधियों में जो बदलाव या नवीनता परिलक्षित हो रही है वह सामाजिक परिवर्तन का द्योतक है। शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन की अधिष्ठात्री माना जाता है। शिक्षा स्वयं भी सामाजिक परिवर्तन से परिवर्तित हो जाया करती है क्योंकि बिना परिवर्तन के शिक्षा लोगों को परिवर्तित सामाजिक जीवन में व्यक्तियों, समसायिक जीवनादर्शों एवं गतिविधियों से परिचित कराने में अक्षम हो जाती है। सामाजिक परिवर्तन से शिक्षा समय–सापेक्ष बनती है। उसमें आधुनिक प्रवृत्तियों (Modern Trends) का संचार होता है। तभी वह समाज एवं व्यक्ति को परिवर्तनों का दिशा–बोध करा के कार्य–नियोजन की परिस्थितियां प्रदान करती है। अतः शिक्षा और सामाजिक परिवर्तन में घनिष्ठ सम्बन्ध है।

प्रमुख शिक्षण बिन्दु
- सामाजिक परिवर्तन का अर्थ एवं परिभाषा
- सामाजिक परिवर्तन की विशेषताएं
- सामाजिक परिवर्तन के प्रमुख कारक
- सामाजिक परिवतन में बाधा डालने वाले कारक
- शिक्षा तथा सामाजिक परिवर्तन
- सामाजिक परिवर्तन में शिक्षक की भूमिका

सामाजिक परिवर्तन का अर्थ एवं परिभाषा

साधारण अर्थों में सामाजिक परिवर्तन से आशय सामाजिक जीवन शैली और समाज की संरचना में होने वाले बदलाव से है। लेकिन विभिन्न समाजशास्त्रियों ने सामाजिक परिवर्तन के अर्थ को अलग–अलग 'सन्दर्भों' से सम्बन्धित किया है। **किंग्सले डेविस** ने अपनी पुस्तक ''ह्यूमन सोसाइटी'' में लिखा है कि– ''सामाजिक परिवर्तन से आशय मुख्यतः उन संशोधनों से है जो सामाजिक संरचना या ढाँचे में हुआ करते हैं।''

गिलिन और गिलिन का अभिमत है कि– ''सामाजिक परिवर्तन जीवन की मानी हुई रीतियों में होने वाले बदलाव को कहा जाता है, चाहे यह बदलाव भौतिक दशाओं अथवा सांस्कृतिक साधनों अथवा जनसंख्या की रचना अथवा सिद्धान्तों के बदलाव अथवा प्रसार में अथवा समूह के अन्दर ही आविष्कारों के परिणामस्वरूप हुए हों।''

Downloaded From www.dietmathura.org

मैकाइवर एवं पेज ने अपनी पुस्तक **"सोसाइटी"** में लिखा है कि – ''समाजशास्त्री होने के नाते हमारी विशेष रुचि प्रत्यक्ष रूप से सामाजिक सम्बन्धों में है। केवल इन सामाजिक सम्बन्धों में होने वाले परिवर्तन को ही एक सामाजिक परिवर्तन कहते हैं। ''**बॉटोमोर** ने अपनी पुस्तक ''सोसियोलॉजी'' में लिखा है कि ''सामाजिक परिवर्तन के अन्तर्गत वे परिवर्तन शामिल होते हैं जो सामाजिक संरचना, सामाजिक संस्थाओं, अथवा उनके पारस्परिक सम्बन्धों में घटित होते हैं।''

अतः स्पष्ट है कि सामाजिक परिवर्तन वह बदलाव हैं जो मानवीय सम्बन्धों, व्यवहारों, संस्थाओं, कार्यविधियों, सामाजिक संरचना, मूल्यों एवं मानव जीवन शैली में होते हैं।

सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया

- व्यक्ति के अनुभवों में परिवर्तन
- व्यक्ति की अभिवृत्ति में परिवर्तन
- व्यक्ति के विचार प्रतिरूपों में परिवर्तन
- सामाजिक सम्बन्धों में परिवर्तन
- सामाजिक संरचना में परिवर्तन
- सामाजिक परिवर्तन

सामाजिक परिवर्तन की विशेषताएँ

सामाजिक परिवर्तन का सम्बन्ध मानव जीवन तथा समाज की संरचना, व्यवस्था, सामाजिक सम्बन्धों आदि से होता है। विविध समाजशास्त्रियों के मतों के आलोक में सामाजिक परिवर्तन की विशेषताओं को निम्न रूप में व्यक्त किया जा सकता है–

1. सामाजिक परिवर्तन सार्वभौमिक एवं सर्वव्यापी रूप से प्रत्येक समाज में पाया जाता है। यह समय के साथ–साथ चलता है।
2. सामाजिक परिवर्तन प्रत्येक समाज में समान रूप से नहीं पाया जाता है। इसका स्तर कभी ऊँचा होता है तो कभी नीचा होता है। आदिवासी समाज में इसका स्तर प्रायः कम होता है।
3. सामाजिक परिवर्तन के स्वरूप, स्थिति आदि के बारे में पूर्वानुमान एवं भविव्यवाणी नहीं की जा सकती है।
4. सामाजिक परिवर्तन का सम्बन्ध वैज्ञानिक जागरुकता से होता है।
5. सामाजिक परिवर्तन एक जटिल प्रक्रिया है। इसका विकास होने में समय लगता है।
6. सामाजिक परिवर्तन समाज के प्रत्येक समुदाय को प्रभावित करता है।
7. सामाजिक परिवर्तन स्थायी न होकर निरन्तर गतिशील होता है।
8. सामाजिक परिवर्तन अमूर्त होते हैं।

सामाजिक परिवर्तन के प्रमुख कारक

सामाजिक परिवर्तन के प्रमुख कारक निम्नलिखित हैं–

- भौगोलिक कारक
- जैविक कारक

Downloaded From www.dietmathura.org

- सांस्कृतिक कारक
- मनोवैज्ञानिक कारक
- प्रौद्योगिक कारक
- शैक्षिक कारक

- **भौगोलिक कारक**

इसके अन्तर्गत भूकम्प, बाढ़, जलवायु, प्राकृतिक स्थिति सामाजिक परिवर्तन लाते हैं।

जैविक कारक–जैविक कारक के अन्तर्गत अनुवांशिकता, जन्म, मूलवंश एवं विकास की दशाएँ आती हैं।

सांस्कृतिक कारक– इसमें प्रथाएँ, विश्वास, आचरण की शैली, कला, कौशल, भाषा–साहित्य, ज्ञान–विज्ञान आदि आते हैं।

मनोवैज्ञानिक कारक– इसके अन्तर्गत मूल प्रवृत्तियों में परिवर्तन, रुचियों में परिवर्तन, अभिप्रेरण में परिवर्तन सामाजिक परिवर्तन को अंजाम देते हैं।

प्रौद्योगिकी कारक– इसमें विज्ञान का प्रसार, आविष्कार, यंत्र, उद्योग, व्यवसाय, नगरीकरण आदि आते हैं।

शैक्षिक कारक– इसके अन्तर्गत साक्षरता का प्रसार, उत्तम शिक्षा की व्यवस्था, कम्प्यूटर, इण्टरनेट, विशिष्ट शिक्षा केन्द्र, मुक्त विद्यालय एवं विश्वविद्यालय आदि सामाजिक परिवर्तन को मूल रूप देने का कार्य करते हैं।

सामाजिक परिवर्तन में बाधा डालने वाले कारक

कुछ कारक ऐसे भी हैं जो सामाजिक परिवर्तन में बाधक होते हैं। ऐसे प्रमुख निम्नलिखित हैं–

सामाजिक परिवर्तन में बाधा–डालने वाले कारक

- सांस्कृतिक जड़ता
- नवीनता का भय
- निहित स्वार्थ
- पृथकता की मात्रा

1. सांस्कृतिक जड़ता–सांस्कृतिक जड़ता सामाजिक परिवर्तन में प्रथम बाधा है। सांस्कृतिक जड़ता का तात्पर्य पूर्वजों से प्राप्त किए हुए उन मूल्यों, विश्वासों तथा परम्पराओं से है जिनके कुछ लोग दास बन जाते हैं तथा जिन्हें वे किसी भी हालत में छोड़ना नहीं चाहते। दूसरे शब्दों में, जब कुछ लोगों को यह अटल विश्वास हो जाता है कि जो बातें अथवा वस्तुएँ हमारे पूर्वजों के लिए ठीक थीं वही हमारे लिए भी ठीक हैं तो हम कहते हैं कि उन लोगों में सांस्कृतिक जड़ता उत्पन्न हो गई हैं। ऐसे लोग उन सभी बातों का विरोध करते हैं, जिनसे स्वीकृत आदर्शों तथा मान्यताओं को ठेस पहुचँती है। ध्यान देने की बात है कि जिस समाज में जितनी अधिक सांस्कृतिक जड़ता पाई जाएगी वह समाज सामाजिक परिवर्तन का उतना ही अधिक विरोध करेगा।

2. नवीनता का भय– सामाजिक परिवर्तन में दूसरी बाधा है नवीनता का भय। ऑगबर्न तथा निम्कॉफ के अनुसार समाज में अधिकतर लोग ऐसे होते हैं जो केवल उस प्रकार का जीवन ही व्यतीत करना चाहते

Downloaded From www.dietmathura.org

हैं, जिस प्रकार वे पीछे से व्यतीत करते आए हैं। उन्हें नवीन बातों को ग्रहण करते हुए इसलिए डर लगता है कि कहीं नवीन बातें उनके लिए अहितकर सिद्ध न हो जाएँ। अतः वे अपनी वर्तमान स्थिति से संतुष्ट रहते हुए प्राचीनता का ही राग अलापते रहते हैं। जब तक नवीन बातों को ग्रहण नहीं किया जाएगा तथा पुरानी बातें ज्यों की त्यों ही बनी रहेंगी तो सामाजिक परिवर्तन असम्भव है।

3. निहित स्वार्थ– स्वार्थ सिद्धि सामाजिक परिवर्तन में तीसरी बाधा है। प्रायः यह बात देखने में आती है कि कुछ ऐसे प्राचीन नियम तथा रूढ़ियाँ हैं जिनके द्वारा कुछ लोगों के निजी स्वार्थ पूरे होते हैं। चूँकि ऐसे लोग अपने स्वार्थों को नहीं त्याग सकते, इसलिए वे किसी प्रकार की कोई नवीनता अथवा परिवर्तन नहीं चाहते । इस प्रकार निहित स्वार्थ सामाजिक परिवर्तन के रास्ते में महान बाधा है।

4. पृथकता की मात्रा– सामाजिक परिवर्तन में पृथकता की मात्रा चौथी बाधा है। समाज में कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जो अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए अन्य लोगों की संस्कृतियों के सम्पर्क में नहीं आना चाहते। ऐसे लोगों में पृथकता की मात्रा जितनी अधिक होगी, वे उतनी ही शक्ति से सामाजिक परिवर्तन का विरोध करते रहेंगे।

सोचें और विचार करें– सामाजिक परिवर्तन हमारे लिए क्यों आवश्यक हैं?

शिक्षा तथा सामाजिक परिवर्तन

शिक्षा समाज की आवश्यकताओं को पूरा करती है तथा ऐसे विचारों का प्रसार करती है जिनके द्वारा समाज के विभिन्न क्षेत्रों में अनेक प्रकार के परिवर्तन होते रहें। दूसरे शब्दों में, शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है,जिसकी सहायता से समाज अपने बालकों को वैसा ही बना लेता है जैसा कि वह उन्हें बनाना चाहता है। इसीलिए प्रत्येक समाज अपनी–अपनी आवश्यकताओं तथा आकांक्षाओं के अनुसार शिक्षा की व्यवस्था करता है। सामाजिक परिवर्तन की दृष्टि से शिक्षा के कार्य निम्नवत हैं–

1. शाश्वत मूल्यों को स्थायी करना

समाज में कुछ शाश्वत मूल्य होते हैं। इन स्थायी मूल्यों के बल पर समाज स्थायित्व प्राप्त करता है। **राल्फ लिन्टन** ने इस सिद्धान्त पर प्रकाश डालते हुए बताया है कि जब कभी सामाजिक परिवर्तन के कारण उक्त सामाजिक मूल्यों में दुर्बलता आने लगती है तो समाज पतन की ओर अग्रसर होने लगता है। ऐसे समय पर शिक्षा इन शाश्वत मूल्यों की रक्षा करती है। इन्हें सामाजिक परिवर्तन के बुरे प्रभावों से बचाती है तथा लोगों को इनके सम्बन्ध में इस प्रकार से ज्ञान देती है कि उनका इन मूल्यों में विश्वास भी बना रहे और वे सामाजिक परिवर्तन को स्वीकार भी करते रहें। हमारे समाज में सत्य, अहिंसा, सहानुभूति, सहिष्णुता, सहयोग तथा सौहार्द आदि अनेक शाश्वत मूल्य पाये जाते हैं।

चर्चा के बिन्दु– आप अपने जीवन में किन–किन शाश्वत मूल्यों का सदैव अनुसरण करते हैं और क्यों?

2. परिवर्तन ग्रहण कराने में सहायता

Downloaded From www.dietmathura.org

शिक्षा समाज में भौतिक अथवा अभौतिक प्रविधियों का प्रचार एवं प्रसार करती है तथा लोगों को मानसिक रूप से तैयार करके ऐसे वातावरण का निर्माण करती है कि लोग वांछित परिवर्तनों को सरलतापूर्वक ग्रहण कर लें। ध्यान देने की बात है कि जब तक समाज को किसी प्रविधि से होने वाले लाभों का स्पष्ट ज्ञान नहीं होगा तब तक इसका समीकरण नहीं हो सकेगा। शिक्षा सामाजिक परिवर्तन के लिए उपयुक्त वातावरण उपस्थित करके इस महान कार्य को पूरा करती है।

3. नवीन परिवर्तनों के उदय में सहायक

शिक्षा सामाजिक बुराइयों को दूर करने के लिए नई–नई विचारधाराओं, आन्दोलनों तथा सामाजिक परिवर्तनों को जन्म देती है। उदाहरण के लिए भारतीय समाज में बाल–विवाह, तथा सती प्रथा आदि आन्दोलनों के परिणामस्वरूप ही अनेक सामाजिक परिवर्तन हुए।

4. संस्कृति का हस्तान्तरण

शिक्षा भावी पीढ़ी को संस्कृति का हस्तान्तरण करके समाज में स्थायित्व एवं निरन्तरता लाती है। यही नहीं, शिक्षा समाज को नाना प्रकार के सुधारों तथा परिवर्तनों के लिए भी प्रेरित करती है। इस दृष्टि से शिक्षा सामाजिक परिवर्तनों की जन्मदाता, प्रवर्तक तथा निर्देशक है एवं अविनाशी शक्ति के साथ–साथ रचनात्मक शक्ति भी है।

विचार करें– संस्कृति के हस्तान्तरण में शिक्षक की क्या भूमिका है?

5. एकता तथा समग्रता उत्पन्न करना

जब समाज के विभिन्न वर्गों में आपसी मतभेद के कारण संघर्ष होने लगता है तो शिक्षा लोगों में ऐसे विचारों को प्रसारित करती है जिनसे एकता तथा समग्रता उत्पन्न हो जाती है। हमारे देश में जातीयता, प्रान्तीयता तथा भाषायी आधार पर विविधता विद्यमान हैं। शिक्षा इस ओर ध्यान देकर राष्ट्रीय एकता स्थापित करती है।

सामाजिक परिवर्तन में शिक्षक की भूमिका

किसी समाज के सृजन और संचालन में शिक्षक की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है। इसी कारण शिक्षक को सामाजिक अभियंता की पदवी प्रदान की जाती है। शिक्षक अपनी योग्यता एवं देश, काल, परिस्थिति को समझते हुए समाज का नव–निर्माण करने के लिए सामाजिक परिवर्तन को अंगीकार करता है और उसे शिक्षा में स्थान देकर शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन से सम्पृक्त करता है। कक्षागत परिस्थिति में शिक्षक सामाजिक परिवर्तन से अपने विद्यार्थियों को केवल परिचित ही नहीं कराता अपितु सामाजिक परिवर्तन में निहित गुण–दोषों के मूल्यांकन की क्षमता का जागरण भी अपने विद्यार्थियों में करता है। इससे विद्यार्थी सामाजिक परिवर्तन के बहुउपयोगी तत्वों को आत्मसात करने की ओर प्रवृत्त होते हैं। सामाजिक परिवर्तन को उचित दिशा देने के साथ ही साथ शिक्षक सामाजिक परिवर्तन की प्रासंगिकता से समाज को रूबरू कराता है। इससे समाज में नवाचारों की प्रतिष्ठा एवं वैज्ञानिक

Downloaded From www.dietmathura.org

दृष्टिकोण के विकास में मदद मिलती है। समाज को यांत्रिकता से जोड़ने तथा सामाजिक परिवर्तन के अनुकूल जीवन यापन के तौर–तरीकों को सिखाने का काम भी शिक्षक ही करता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि सामाजिक परिवर्तन में शिक्षक की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है।

आधुनिक समय में भारत में सामाजिक परिवर्तन का जो स्वरूप परिलक्षित हो रहा है उसमें शिक्षक और उसकी दी जाने वाली शिक्षा का महत्वपूर्ण योगदान है। शिक्षक सामाजिक परिवर्तन की ओर लोगों का रुझान बढ़ाने के लिए समाज के लोगों की मनोवृत्ति का परिमार्जन करता है। सामाजिक परिवर्तन से प्राप्त होने वाले लाभों से लोगों को परिचित कराता है। सामाजिक परिवर्तन को अंगीकार करने वाले देशों की स्थिति का अभिज्ञान कराता है। इससे समाज में सामाजिक परिवर्तन को स्वीकार करने की संचेतना का जागरण होता है।

अतः स्पष्ट है कि ज्ञानवान समाज और सामाजिक परिवर्तन को अंजाम देने में शिक्षक की भूमिका अत्यन्त सराहनीय होती है। आधुनिक समय में समाज के लोगों में अपने अधिकारों के प्रति सजगता एवं सामाजिक परिवर्तन का जो परिदृश्य परिलक्षित हो रहा है उसमें शिक्षकों का अभीष्ट योगदान निहित है। वास्तव में शिक्षक एक सजग प्रहरी की भाँति समाज के लोगों में नवचेतना का जागरण करके समाज को अद्यतन तथा वैश्विक स्तर पर मुकाबला करने की क्षमता का विकास करके सामाजिक परिवर्तन में अभीष्ट योगदान देता है।

Downloaded From **www.dietmathura.org**

अभ्यास प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. सामाजिक परिवर्तन से आप क्या समझते हैं ? इसके प्रमुख कारकों का उल्लेख कीजिए।

2. ''शिक्षा सामाजिक परिवर्तन लाने का शक्तिशाली साधन है।'' सामाजिक परिवर्तन को परिभाषित करते हुए इस कथन की पुष्टि कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. सामाजिक परिवर्तन की किन्हीं दो परिभाषाओं का उल्लेख कीजिए।
2. सामाजिक परिवर्तन के पाँच कारण बताइए।
3. सामाजिक परिवर्तन लाने में शिक्षा की भूमिका स्पष्ट कीजिए।
4. सामाजिक परिवर्तन की प्रमुख विशेषताएँ बताइए।

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

1. सामाजिक परिवर्तन का अर्थ लिखिए।
2. सामाजिक परिवर्तन की एक परिभाषा लिखिए।
3. सामाजिक परिवर्तन में बाधा डालने वाले दो प्रभावी कारकों का उल्लेख कीजिए।

स्वयं करने के लिए

1. ''शिक्षक सामाजिक परिवर्तनों की सक्रिय संवाहक है।'' प्रशिक्षण कक्ष में सहभागियों के साथ समूह चर्चा करें।
2. शिक्षा से हमारे जीवन में क्या–क्या परिवर्तन हुए हैं?

- ....
....
- ....
....
- ....
....।

Downloaded From www.dietmathura.org

विद्यालय तथा समुदाय

> "A School is and ought to be a reflection of the life of the community. The public school in India must there fore be brought nearer to the pattern of Indian life." - **Humayun Kabir**

विद्यालय व समुदाय एक दूसरे के पूरक हैं। अतः विद्यालय का यह कर्तव्य है कि वह समुदाय व समाज के विकास में अपना योगदान दे और समाज तथा समुदाय का यह कर्तव्य है कि वह विद्यालय के विकास में सहयोग करें।

बालकृष्ण जोशी का कथन है कि ''किसी भी राष्ट्र की प्रगति का निर्माण विधान सभाओं, न्यायालयों और कारखानों में नहीं वरन् विद्यालयों में होता है।'' इस कथन से स्पष्ट होता है कि समुदाय (समाज) में विद्यालय का महत्वपूर्ण स्थान है। शिक्षा सामाजिक परिवर्तन लाती है और इसके द्वारा किसी भी समाज के स्तर में उन्नति लायी जा सकती है। शैक्षिक और सामाजिक विकास में दोनों का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है।

प्रमुख शिक्षण बिन्दु

- विद्यालय का अर्थ व परिभाषा
- समुदाय का अर्थ व परिभाषा
- विद्यालय व समुदाय का पारस्परिक सम्बन्ध
- विद्यालयः सामुदायिक केन्द्र के रूप में
- समुदाय का विद्यालय पर प्रभाव
- विद्यालय का समुदाय पर प्रभाव

विद्यालय का अर्थ व परिभाषा

'स्कूल' शब्द की उत्पत्ति 'schola' या 'Skhole' नामक यूनानी शब्द से हुई है, जिसका अर्थ है– अवकाश (Leisure)। यह बात कुछ विचित्र सी जान पड़ती है। इसका स्पष्टीकरण करते हुए, **ए0एफ0 लीच** ने लिखा है– ''वाद–विवाद या वार्ता के स्थान, जहाँ एथेन्स के युवक अपने अवकाश के समय को खेल–कूद, व्यवसाय और युद्ध के प्रशिक्षण में बिताते थे, धीरे–धीरे दर्शन और उच्च कलाओं के स्कूलों में बदल गये। एकेडेमी के सुन्दर उद्यानों में व्यतीत किये जाने वाले अवकाश के माध्यम से विद्यालयों का विकास हुआ।''

जॉन ड्यूवी के अनुसार– ''विद्यालय एक ऐसा विशिष्ट वातावरण है, जहाँ जीवन के कुछ गुणों और कुछ विशेष प्रकार की क्रियाओं तथा व्यवसायों की शिक्षा इस उद्देश्य से दी जाती है कि बालक का विकास वांछित दिशा में हो।''

टी0पी0 नन0 के अनुसार– '' विद्यालय को मुख्य रूप से इस प्रकार का स्थान नहीं समझा जाना चाहिए, जहाँ किसी निश्चित ज्ञान को सीखा जाता है, वरन् ऐसा स्थान जहाँ बालकों को क्रियाओं के उन

Downloaded From www.dietmathura.org

निश्चित रूपों में प्रशिक्षित किया जाता है, जो इस विशाल संसार में सबसे महान् और सबसे अधिक महत्व वाली है।

रॉस के अनुसार– ''विद्यालय वे संस्थाएँ हैं, जिनको सभ्य मनुष्य द्वारा इस उद्देश्य से स्थापित किया जाता है कि समाज में सुव्यवस्थित और योग्य सदस्यता के लिए बालकों की तैयारी में सहायता मिले।''

उपर्युक्त परिभाषाओं को देखने में विद्यालय की निम्नलिखित विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं–

1. विद्यालय एक विशिष्ट वातावरण है जिसमें बालकों के वांछित विकास के लिए विशिष्ट गुणों, क्रियाओं तथा व्यवसायों की व्यवस्था की जाती है।

2. विद्यालय वह स्थान है जहाँ संसार की महान् एवं महत्वपूर्ण क्रियाओं को स्थान दिया जाता है।

3. विद्यालय को बालकों के भावी जीवन की तैयारी हेतु स्थापित किया जाता है।

4. विद्यालय को सामुदायिक जीवन का केन्द्र बिन्दु होना चाहिए।

समुदाय का अर्थ व परिभाषा

साधारण बोलचाल की भाषा में 'समुदाय' व्यक्तियों का एक ऐसा समूह है, जो मिलकर सामान्य उद्देश्यों की प्राप्ति तथा सामान्य जीवन व्यतीत करने के लिऐ एक निश्चित भू–भाग में रहते हैं। अतः समुदाय के निर्माण के लिए सामान्य हित, निश्चित भू–भाग, सामान्य जीवन स्तर तथा एकता की भावना का होना अनिवार्य है। वस्तुतः समुदाय अति विस्तृत तथा व्यापक शब्द है और इसमें विभिन्न प्रकार के सामाजिक समूहों का समावेश होता है, उदाहरणार्थ– परिवार, धार्मिक संघ, जाति, पड़ोस, नगर, राज्य एवं राष्ट्र समुदाय के विभिन्न रूप हैं। सभ्यता की प्रगति तथा संचार एवं यातायात के तीव्र साधनों के विकास ने विश्व के लोगों को एक–दूसरे पर अधिक निर्भर बना दिया है जिसके कारण समुदाय की धारणा और अधिक विस्तृत हो गई है। आज हम विश्व–समुदाय की धारणा को व्यावहारिक रूप प्रदान करने के लिये प्रयत्नशील हैं। अतः समुदाय में एक वर्ग मील से कम का क्षेत्र भी हो सकता है या इसका घेरा विश्व भी हो सकता है। यह क्षेत्र का घेरा इस बात पर निर्भर करता है कि इसके सदस्यों में आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक समानताएँ हों। समुदाय के अर्थ को और आधिक स्पष्ट करने के लिये नीचे कुछ परिभाषाएं दी जा रही हैं–

1. मैकाइवर– ''समुदाय व्यक्तियों का ऐसा समूह है जो छोटे या बड़े समूहों में मिलकर रहते हुए विशेष निजी हित त्याग कर ऐसे हितों में सहभागी होते हैं जो इतने विस्तृत व पूर्ण होते हैं कि उनके जीवन का समावेश कर सकें।''

2. किंग्सले डेविस– ''समुदाय सबसे छोटा एक ऐसा क्षेत्रीय समूह है जिसके अन्तर्गत सामाजिक जीवन के समस्त पहलू आ सकते हैं।''

3. एच0डब्ल्यू0 जोरबाग– ''समुदाय वह स्थानीय क्षेत्र है जिसमें मनुष्य एक भाषा का प्रयोग करते हैं, एक सी रूढ़ियों का पालन करते हैं तथा एक सी भावना और मनोवृत्ति के होते हैं।''

Downloaded From www.dietmathura.org

विद्यालय व समुदाय का पारस्परिक सम्बन्ध

विद्यालय एक सामाजिक संस्था है। समाज स्वयं को जीवित रखने के लिए विभिन्न प्रकार की शिक्षा संस्थाओं की स्थापना करता है जिनके द्वारा समाज के विचारों, मान्यताओं, आदर्शों, क्रिया–कलापों, मानदण्डों तथा परम्पराओं को आने वाली पीढ़ी को प्रदान किया जा सके। इस तथ्य की पुष्टि हम **फ्रैंकलिन** के शब्दों से कर सकते हैं– ''समाज, शिक्षा– संस्थाओं को अपने सदस्यों में ऐसे ज्ञान कौशलों, आदतों तथा आदर्शों का प्रसार करने एवं सुरक्षित रखने के लिए स्थापित करता है जो उसके स्वयं के स्थायित्व एवं निरन्तर विकास के लिए परमावश्यक हैं।''

ध्यातव्य बिन्दु–विद्यालय तथा समुदाय के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध होता है ये दोनों अपनी–अपनी उन्नति एवं स्थायित्व के लिए एक–दूसरे पर निर्भर रहते हैं।

विद्यालय, समुदाय के जीवन एवं उसकी प्रगति पर बहुत प्रभाव डालता है। विद्यालय अपने विचारों एवं कार्यों द्वारा समुदाय का पथ–प्रदर्शन करके उसे प्रगति की ओर ले जाता है। हम इस तथ्य की पुष्टि **हॉवर्थ** के इन शब्दों द्वारा कर सकते हैं– '' विद्यालय, समाज के चरित्र का सुधार करने का साधन है। वह सुधार सामाजिक उन्नति की दिशा में है या नहीं, यह विद्यालय के संचालकों के विचारों और आदर्शों पर निर्भर रहता है।''

चर्चा करें– विद्यालय को सामुदायिक जीवन का केन्द्र बनाने के लिए क्या–क्या उपाय किये जा सकते हैं।

विद्यालय : सामुदायिक केन्द्र के रूप में

वस्तुतः शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है और समाज विद्यालय को यह कार्य सौंपता है कि वह युवकों का प्रशिक्षण तथा उनका पालन–पोषण इस ढंग से करे कि समाज के जिस समुदाय से वे सम्बन्ध रखते हैं उनके जीवन में वे प्रभावी ढंग से भाग ले सकें। स्वतः ही यह प्रश्न उठता है कि विद्यालय को ही यह कार्य क्यों सौंपा जाता है। इसके उत्तर में निम्नलिखित तथ्य प्रस्तुत किये जा सकते हैं–

1. बालकों को सामाजिक परम्पराएँ उसी प्रकार उत्तराधिकार में प्राप्त नहीं है, जैसे उन्हें अपने पिता की सम्पत्ति तथा जन्मजात क्षमताएं मिल जाती हैं।
2. बालकों को समाज की सांस्कृतिक विरासत जन्म के साथ नहीं मिलती वरन् उसे सीखना पड़ता है।

उपर्युक्त कारणों से उनको पुस्तकों, कार्य तथा सामाजिक सम्पर्कों से इस सामाजिक विरासत को सीखना पड़ता है। यदि बालकों को सामाजिक विरासत एवं सामाजिक निधि से अलग रखा गया तो उनके समस्त प्रयोग निष्फल होंगे। साथ ही वे अन्धकार में भटकते रहेंगे। इस कारण मानव के संचित अनुभवों का ज्ञान प्रदान करने का कार्य विद्यालय को सौंपा गया।

विद्यालय अपने उक्त कर्त्तव्य का निर्वाह तभी कर सकता है जब उसका बाह्य समाज के जीवन से सजीव सम्बन्ध हो। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि विद्यालय के बाहर के जीवन के साथ विद्यालय का सजीव सम्बन्ध होना आवश्यक है। साथ ही वह वर्तमान वास्तविकताओं से बालकों को अवगत

Downloaded From www.dietmathura.org

कराये। परन्तु भारतीय विद्यालय जीवन से पूर्णतः पृथक रहकर शिक्षा प्रदान कर रहे हैं। आज भारतीय विद्यालय के जीवन का ठोस परिस्थितियों से कोई सम्बन्ध नहीं है। इस कारण भारतीय विद्यालयों सामुदायिक जीवन की प्रगति एवं सुधार के लिए कोई कार्य नहीं कर रहे हैं। यदि विद्यालय को अपने इस कार्य को पूर्ण करना है तो उसे वृहत् समुदाय में एक छोटा समुदाय बनना होगा। विद्यालय को एक छोटा समुदाय बनाने के लिए स्वयं को सामुदायिक जीवन के केन्द्र के रूप में कार्य करना पड़ेगा। विद्यालय को सामुदायिक जीवन का केन्द्र बनाने के लिए निम्नांकित उपायों को काम में लाया जा सकता है–

(अ) समुदाय को विद्यालय के निकट लाना।

(ब) विद्यालय को समुदाय के निकट ले जाना।

(अ) समुदाय को विद्यालय के निकट लाना

समुदाय को विद्यालय के निकट निम्नलिखित उपायों को अपना कर लाया जा सकता है–

1. समुदाय के सदस्यों को आमन्त्रित करना– विद्यालय, सामुदायिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में कार्य करने वाले लोगों को आमन्त्रित करे, उदाहरणार्थ– वह सामाजिक कार्यकर्ता, डॉक्टर, किसान, सम्पादक, व्यापारी आदि को आमन्त्रित करे। किसान ग्रामीण जीवन की समस्याओं को समझाने में सहायता प्रदान कर सकता है। डॉक्टर अपने व्यवसाय से सम्बन्धित तथ्यों एवं उसकी समस्याओं से अवगत करा सकता है। इसी प्रकार विभिन्न पेशों से सम्बन्धित व्यक्ति अपने–अपने व्यवसायों के बारे में छात्रों को वास्तविक एवं प्रत्यक्ष ज्ञान से अवगत करा सकते हैं। औद्योगिक क्षेत्रों से आने वाले व्यक्ति छात्रों को औद्योगिक समस्याओं का ज्ञान प्रदान कर सकते हैं। इस प्रकार सामुदायिक जीवन के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डाला जा सकता है।

2. अभिभावक शिक्षक संघ– समुदाय को विद्यालय में लाने के लिए अभिभावक–शिक्षक संघ महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकता है। छात्रों के माता–पिता को शिक्षण–कार्य में अग्र लिखित प्रकार से सम्बद्ध किया जा सकता है–

(i) जो प्रकरण या इकाई स्थानीय समुदाय से सम्बन्धित हों, उनके प्रतिपादन के समय अभिभावकों को विद्यालय में बुलाया जाये। अभिभावक छात्रों के समक्ष प्रकरण से सम्बन्धित स्थानीय तथ्यों को प्रस्तुत करें।

(ii) विद्यालय किसी प्रकरण के सम्बन्ध में अभिभावकों से प्रश्नावली के माध्यम से सूचनाएँ प्राप्त कर सकता हैं।

चर्चा के बिन्दु– अभिभावक–शिक्षक संघ द्वारा बच्चों की उपस्थिति में क्या सहायता की जा सकती है?

3. मेलों, उत्सवों आदि को मनाना– विद्यालय में विभिन्न स्थानीय मेलों, उत्सवों एवं त्यौहारों को मनाकर समुदाय को विद्यालय के निकट लाया जा सकता है। इनमें भाग लेने तथा देखने के लिए स्थानीय

Downloaded From www.dietmathura.org

समुदाय को आमन्त्रित किया जाए। इससे विद्यालय तथा समुदाय एक दूसरे के निकट सम्पर्क में आ सकेंगे।

4. सामुदायिक समस्याओं का समाधान– विद्यालय जिस समुदाय में स्थित है उसे उस समुदाय की विभिन्न समस्याओं के समाधान के लिए कार्य करना चाहिए। इन सामुदायिक समस्याओं के समाधान से छात्र सामुदायिक जीवन की ठोस परिस्थितियों का ज्ञान प्रदान करने में समर्थ हो सकेंगे। उदाहरणार्थ– यदि विद्यालय ग्रामीण क्षेत्र में स्थित है तो उसे उसकी अमुक समस्याओं की ओर ध्यान देना चाहिए– सफाई की समस्या, स्वास्थ्य की समस्या, कृषि उत्पादन को बढ़ाने के लिए क्या करना चाहिए? बाजार की समस्या को किस प्रकार सुलझाया जा सकता है? आदि।

5. प्रौढ़–शिक्षा का केन्द्र– विद्यालय जिस समुदाय में स्थित है उसके अशिक्षित प्रौढ़ों को साक्षर बनाने के लिए विद्यालय को प्रौढ़ शिक्षा का केन्द्र बनाया जाये। वह विद्यालय समय के उपरान्त प्रौढ़ों को शिक्षित करने की व्यवस्था करे। इस व्यवस्था से एक तो वे साक्षर हो जायेंगे, दूसरे वे अपने अनुभवों से छात्रों को अवगत कराने में समर्थ होंगे। इस प्रकार से विद्यालय तथा समुदाय एक–दूसरे के निकट आ सकेंगे।

ब. विद्यालय को समुदाय के निकट ले जाना

विद्यालय को समुदाय के निकट ले जाने के लिए निम्नांकित उपायों को काम में लाया जा सकता है–

1. साक्षात्कार– प्रत्यक्ष ज्ञान की प्राप्ति के लिए साक्षात्कार आधार का कार्य करते हैं। छात्र समुदाय के विभिन्न लोगों से साक्षात्कार करके समुदाय के बारे में विभिन्न प्रकार की सूचनाएँ प्राप्त कर सकते हैं। साथ ही समुदाय के बहुत से लोग उसको प्रकाशित साहित्य तथा श्रव्य दृश्य सामग्री प्रदान करके महत्वपूर्ण सूचनाएँ प्रदान कर सकते हैं।

2. समाज–सेवा संघों का निर्माण– सैय्यदेन के अनुसार, हमें यह जान लेना ही काफी नहीं हैं कि हमारे चारों ओर के वातावरण में क्या दोष है। हमें दोषों को दूर करने में अपनी शक्ति का प्रयोग करना चाहिए। अतः विद्यालयों में समाज सेवा संघों का निर्माण करना चाहिए जिससे वे आवश्यकता पड़ने पर अपनी सेवाएं समुदाय के लिए अर्पित कर सकें। ये संघ पुस्तकें तथा छात्रवृत्तियाँ देकर गरीब और जरूरतमन्द छात्रों को सहायता करने का भी काम कर सकते हैं।

3. सामाजिक शिक्षा की व्यवस्था– विद्यालय को नगरों व ग्रामों में जाकर शिक्षाप्रद सांस्कृतिक कार्यक्रमों नाटक, भजन, कीर्तन आदि की व्यवस्था करनी चाहिए। इससे विद्यालय समुदाय की संस्कृति से अवगत हो सकेगा।

4. क्षेत्र–पर्यटन– क्षेत्र पर्यटनों (Field Trips) के माध्यम से छात्रों को समुदाय में ले जाया जा सकता है। पर्यटन का उद्‌देश्य मन बहलाव के लिए विद्यालय के बाहर जाना नहीं होना चाहिए। वरन् विषय का स्पष्टीकरण या समस्या का समाधान होना चाहिए। पयर्टनों के माध्यम से छात्र स्थानीय परिस्थितियों का प्रत्यक्ष रूप से निरीक्षण कर सकेंगे।

Downloaded From www.dietmathura.org

एम0पी0 मुफात के शब्दों में कह सकते हैं– ''माध्यमिक विद्यालय एक प्रमुख सामाजिक साधन हैं और वह समुदाय के भविष्य के निर्धारण में महत्वपूर्ण कार्य करेगा। सक्रिय एवं क्रियाशील जनता विद्यालय तथा समुदाय दोनों की आवश्यकताओं एवं समस्याओं को हल करने में सहायता दे सकती है।''

विचार करें– समुदाय विद्यालय को किस प्रकार प्रभावित करता है।

समुदाय का विद्यालय पर प्रभाव

समुदाय अपनी आवश्यकताओं, आकांक्षाओं आदि की पूर्ति के लिये विद्यालयों की स्थापना करता है। इस कारण समुदाय का विद्यालय पर विभिन्न प्रकार से प्रभाव पड़ता है। विद्यालय पर समुदाय के प्रभाव को अग्रलिखित रूपों में स्पष्ट किया जा सकता है–

1. समुदाय के आदर्शों, मान्यताओं व आवश्यकताओं का प्रभाव– प्रत्येक समुदाय के अपने आदर्श, मान्यताएँ तथा आवश्यकताएँ होती हैं। वह इनकी पूर्ति एवं स्वयं को जीवित रखने के लिये विद्यालय की स्थापना करता है। समुदाय की आवश्यकताओं एवं माँगों के बदलते रहने के कारण शिक्षा के क्षेत्रों में भी परिवर्तन होता रहता है। उदाहरणार्थ– आधुनिक युग में भारतीय समुदाय की आवश्यकताएँ एवं माँगें परिवर्तित हो चुकी हैं। आज का भारतीय समुदाय औद्योगीकरण की माँग कर रहा है। इस कारण भारतीय समुदाय के विद्यालय में कार्य–अनुभव को महत्वपूर्ण स्थान दिया जा रहा है। साथ ही समुदाय विभिन्न प्रकार के व्यावसायिक विद्यालयों की स्थापना कर रहा है। ''विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग'' ने इस तथ्य को निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किया है– ''विश्वविद्यालयों को छात्रों को राजनीति, प्रशासन, व्यवसायों उद्योग और वाणिज्य में नेतृत्व करने के लिए शिक्षा देनी चाहिए।''

उक्त उद्देश्य की प्राप्ति के लिए पाठ्यक्रम में उससे सम्बन्धित विषयों, क्रियाओं, व्यवसायों आदि को स्थान दिया गया है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि समुदाय के आदर्शों, मान्यताओं, आवश्यकताओं आदि का विद्यालय पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। वस्तुतः उनके आधार पर ही शिक्षा की रूपरेखा निर्धारित की जाती है।

2. समुदाय की राजनीतिक दशाओं का प्रभाव– समुदाय की राजनीतिक दशाओं का विद्यालय पर गहरा प्रभाव पड़ता है। किसी समुदाय में शिक्षा की व्यवस्था कैसी होनी चाहिए? इसका उत्तर उस समुदाय की राजनीतिक व्यवस्था के स्वरूप पर निर्भर करता है, उदाहरणार्थ भारतीय समुदाय ने लोकतान्त्रिक प्रणाली को अपनाया है। इस कार्य को पूर्ण करने के लिए विद्यालय का लोकतान्त्रिक सिद्धान्तों के अनुसार संगठन एवं संचालन किया जाता है। साथ ही विद्यालय वातावरण में स्वतन्त्रता, समानता एवं भ्रातृत्व नामक मूलाधारों को स्थान प्रदान किया जाता है।

3. समुदाय के गुणों व दोषों का प्रभाव– प्रत्येक समुदाय में गुण एवं अवगुण पाए जाते हैं। भारतीय समुदाय विभिन्न सामाजिक बुराइयों से ग्रस्त है। इनका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से विद्यालयों पर प्रभाव पड़ता है।

Downloaded From www.dietmathura.org

विद्यालय का समुदाय पर प्रभाव

समुदाय पर विद्यालय के प्रभाव का वर्णन निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत किया जाता है–

1. समुदाय की सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण– प्रत्येक समुदाय के अपने रीति–रिवाज, परम्पराएँ, विश्वास, नैतिकता, नियम, साहित्य आदि होते हैं जिनको उस समुदाय ने प्राचीन समय से लेकर आज तक अर्जित किया है। शिक्षा समुदाय की इस सांस्कृतिक विरासत को बनाए रखने तथा विकसित करने की प्रक्रिया है। विद्यालय इस सांस्कृतिक विरासत को आने वाली सन्तति को प्रदान करके, उसको बनाये रखते हैं। विद्यालयों के अभाव में इस जटिल एवं विस्तृत तथा विशाल विरासत को थोड़े से जीवन काल में सीखना सम्भव नहीं है।

2. समुदाय की आवश्यकताओं व मांगों की पूर्ति– प्रत्येक समुदाय की अलग–अलग आवश्यकताएँ एवं माँगें होती हैं। विद्यालय अपनी योजना तथा कार्यक्रम में आवश्यकतानुसार परिवर्तन करके समुदाय की माँगों एवं आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।

3. समुदाय के भावी स्वरूप का निर्धारण– विद्यालय समुदाय की आवश्कताओं एवं मागों की पूर्ति ही नहीं वरन् उसके भावी स्वरूप का भी निर्माण करता है। समुदाय की मांगें, आवश्यकताएँ, आदर्श आदि बदलते रहते हैं। अतः विद्यालय समुदाय के दोषों की आलोचना करके उनके समक्ष नवीन विचार एवं कार्यक्रम प्रस्तुत करते हैं। साथ ही वे भावी नागरिकों का निर्माण करते हैं। ये भावी नागरिक समुदाय की प्रगति एवं सुधार के लिए कार्य करके उसके भावी ढाँचे का निर्माण करेंगे। अतः विद्यालय ही समुदाय की प्रगति एवं सुधार कर, भावी समुदाय के स्वरूप का चित्र प्रस्तुत करते हैं।

विद्यालय एक सामाजिक संस्था है जिसे समाज अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए स्थापित करता है। हम इस तथ्य की पुष्टि **टी0पी0नन** के शब्दों से कर सकते हैं, ''एक राष्ट्र के लिए विद्यालय उसके जीवन के वे अंग हैं, जिनका विशेष कार्य है उसकी आध्यात्मिक शक्ति को दृढ़ बनाना, उसकी ऐतिहासिक निरन्तरता को बनाए रखना, उसके अतीत की सफलताओं को सुरक्षित रखना और उसके भविष्य की गारण्टी करना।''

Downloaded From www.dietmathura.org

अभ्यास प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. 'विद्यालय' से आप क्या समझते हैं? इसकी आवश्यकता और उद्देश्यों पर प्रकाश डालिए।
2. विद्यालय को समुदाय का केन्द्र किस प्रकार बनाया जा सकता है? स्पष्ट कीजिए।
3. समुदाय किसे कहते हैं? विद्यालय पर इसके प्रभाव को स्पष्ट कीजिए।

लघुउत्तरीय प्रश्न

1. ''विद्यालय समाज का लघु स्वरूप है।'' स्पष्ट कीजिए।
2. समुदाय विद्यालय की स्थापना क्यों करता है ?
3. विद्यालय विकास में शिक्षक—अभिभावक संघ की क्या भूमिका है ?
4. विद्यालय द्वारा छात्र—छात्राओं में किन—किन सामाजिक, नैतिक गुणों का विकास होता है?

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

1. विद्यालय की एक उपयुक्त परिभाषा दीजिए।
2. विद्यालय की किन्हीं दो विशेषताओं को बताइए।
3. समुदाय का अर्थ स्पष्ट कीजिए।

स्वयं करने के लिए

1. बालकों की शिक्षा में स्थानीय साधनों का प्रयोग किस प्रकार किया जा सकता है ?

- ....
- ....
- ....
- ....
- ....

Downloaded From www.dietmathura.org

उभरते समाज के प्रमुख मुद्दे

(i) शिक्षा का सार्वभौमीकरण एवं शैक्षिक अवसरों की समानता

प्रमुख शिक्षण बिन्दु
- अर्थ, संकल्पना
- शिक्षा के सार्वभौमीकरण के उद्देश्य
- आवश्यकता एवं महत्व
- समस्याएँ
- शैक्षिक अवसरों की समानता
- भारतीय शिक्षा में असमानताएँ
- शैक्षिक अवसरों में असमानता के कारण
- शैक्षिक अवसरों की समानता हेतु उपाय

शिक्षा मनुष्य के सर्वांगीण विकास की पूर्णता की अभिव्यक्ति है। शिक्षा एक ऐसी सामाजिक एवं गतिशील प्रक्रिया है जो व्यक्ति के जन्मजात गुणों का विकास करके उसके व्यक्तित्व को अभिसिंचित, पुष्पित एवं पल्लवित करती है। व्यक्ति को सामाजिक वातावरण के साथ सामंजस्य स्थापित करने योग्य बनाती है। इतना ही नहीं, यह प्रक्रिया व्यक्ति को उसके विवेकपूर्ण व्यवहार एवं कर्तव्यों का ज्ञान कराते हुए उसके विचारों में सकारात्मक परिवर्तन करती है।

'शिक्षा के सार्वभौमीकरण' का व्यापक अर्थ एवं सन्दर्भ है। इसका शाब्दिक अर्थ है– शिक्षा की किसी निश्चित स्तर तक सभी लोगों के लिए अनिवार्य एवं निःशुल्क रूप से उपलब्धता सुनिश्चित कराना। शिक्षा के सार्वभौमीकरण की संकल्पना नवीन नहीं है अपितु भारत में प्राचीन काल से ही विकसित हो चुकी थी। शिक्षा के सार्वभौमीकरण की संकल्पना अधोलिखित विद्वानों के कथनों से स्पष्ट हो सकती हैं–

''शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन का एक सशक्त माध्यम बनाने तथा इसे राष्ट्रीय विकास से सम्बद्ध करने की आवश्यकता है। शिक्षा को भारत के जनसाधारण से उस वर्ग की ओर उन्मुख करना है, जो गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने हेतु मजबूर हैं, ताकि उनमें आत्मचेतना जाग्रत हो सके और उनकी उत्पादक क्षमताएं प्रस्फुटित होकर उन्हें राष्ट्रनिर्माण के कार्य में प्रभावी रूप से सहयोगी बनने योग्य बनाया जा सके।'' **–जे0पी0 नायक**

''सामाजिक पुनर्निर्माण करने की दृष्टि से, जिसके लिए देश की प्रतिबद्धता है, प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण की समस्या का निःसन्देह निर्णयात्मक महत्व है।'' – **एस0 चक्रवर्ती**

प्रशिक्षुओं से चर्चा करें–
- सार्वभौमीकरण क्या है ?
- शिक्षा के सार्वभौमीकरण से क्या अभिप्राय है? सामूहिक परिचर्चा के बिन्दु श्यामपट्ट पर अंकित किये जाएँ।

शिक्षा के सार्वभौमीकरण के उद्देश्य

शिक्षा मानव की एक विशेष उपलब्धि है। अतीतकाल से ही मनुष्य ने जागरुक रहकर अपनी वाक्शक्ति का व्यक्ति और व्यक्ति के बीच, समुदाय तथा समुदाय के बीच, सन्तति और सन्तति के बीच

Downloaded From www.dietmathura.org

अपने व्यावहारिक अनुभव भण्डार का संचार करने के लिए उपयोग किया है। अतः शिक्षा के सार्वभौमीकरण के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

- ज्ञानार्जन
- बौद्धिक एवं मानसिक विकास
- शारीरिक विकास
- नैतिक व चारित्रिक विकास
- सांस्कृतिक विकास
- सामाजिक कुशलता का विकास
- व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास
- जीविकोपार्जन
- विवेकपूर्ण निर्णयन क्षमता का विकास
- अन्तर्वैयक्तिक संचार कौशल विकास
- वातावरणीय/सामाजिक समायोजन कौशल विकास

आवश्यकता एवं महत्व

शिक्षा प्रारम्भ में एक जैविकीय आवश्यकता के रूप में विकसित हुई। मनुष्य किन्तु अपनी मूल प्रवृत्तियों की जन्मजात कमजोरियों के बावजूद स्वयं को जीवित रखने तथा अपना विकास शनैःशनैः करने में सक्षम हो सका। वातावरण से निरन्तर संघर्ष करते हुए उसने जीना सीखा और क्रमशः सामूहिक प्रयासों के लिए अपना एक समाज गठित किया। समाज के प्रत्येक वर्ग, व्यक्ति को शिक्षा की सुलभता व सुगमता की आवश्यकता है। शिक्षा का सम्बन्ध किसी वर्ग या समूह से नहीं है बल्कि इसका सम्बन्ध देश की समस्त जनता से है। यह प्रत्येक स्तर पर जीवन का स्पर्श करती है। ब्रिटिश काल में प्राथमिक शिक्षा पर गठित आयोग ''हण्टर आयोग'' ने भी कहा है कि– ''शिक्षा को जनसाधारण की शिक्षा मानना चाहिए।''

शिक्षा के सार्वभौमीकरण की प्रगति एवं उससे सम्बद्ध उपलब्धियों का आंकलन उसकी आवश्यकता, महत्व एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के आधार पर ही भली प्रकार से किया जा सकता है। शिक्षा के सार्वभौमीकरण की आवश्यकता एवं महत्व के प्रमुख बिन्दु निम्नवत् हैं–

- साक्षरता में क्षैतिज विस्तार
- दैनिक जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति
- स्वशिक्षा
- व्यक्तित्व का विकास
- सफल जनतन्त्र का निर्माण
- राजनैतिक जागरुकता
- सामाजिक समानता में अभिवृद्धि
- सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक न्याय की भावना का विकास
- साम्प्रदायिकता का समूल नाश

Downloaded From www.dietmathura.org

शिक्षा के सार्वभौमीकरण के परिणामस्वरूप प्रत्येक व्यक्ति स्वयं को साक्षर बनाने के साथ ही साथ उसकी साक्षरता की उपलब्धि से उसका परिवार, समाज तथा राष्ट्र भी लाभान्वित होगा। इतना ही नहीं वह अपने परिवार एवं समाज के प्रौढ़ों को साक्षर बनाने का प्रयास करने में भी समर्थ हो सकेगा। साक्षर व्यक्ति अपनी दैनिक आवश्यकताओं के लिए आत्मनिर्भर बन जाता है। अपने घर का हिसाब–किताब, क्रय–विक्रय करने तथा समाचार–पत्रों से देश–विदेश के बारे में जानकारी प्राप्त कर लेता है। साथ ही साथ अंशकालिक शिक्षा, पत्राचार द्वारा शिक्षा या विभिन्न योजनाओं से व्यक्ति अपने व्यवसाय के साथ–साथ अपनी अभिवृत्ति, कौशल एवं आकांक्षाओं का विकास कर सकता है। अपना अध्ययन भी व्यवसाय के साथ निरन्तर जारी रखने में सक्षम हो सकता है। शिक्षा की सार्वभौमिकता व्यक्ति के विकास हेतु एक निश्चित आयु एवं अवधि तक शिक्षा प्राप्त करने के लिए महत्वपूर्ण है। मनुष्य को समाज की मुख्य धारा में शिक्षा की अपरिहार्यता ही जोड़ सकती है। सार्वभौमिक शिक्षा किसी भी प्रजातान्त्रिक देश के विकास जनतन्त्र की सफलता के लिए आवश्यक होती है। जनता के सक्रिय सहयोग एवं सहभागिता से जनतंत्र का आर्थिक विकास के लिए शिक्षा का अधिक से अधिक प्रसार आवश्यक है। शिक्षा अनिवार्य रूप से देश के प्रत्येक छात्र को बिना किसी भेदभाव के प्राप्त होनी चाहिए।

सार्वभौमिक शिक्षा का इसलिए भी महत्व है कि नागरिकों में कर्तव्य और अधिकारों के प्रति उत्तरदायित्व की भावना जागृत होती है। अतः सफल एवं वास्तविक लोकतंत्र के प्रतिनिधित्व के लिए शिक्षा का सार्वभौमीकरण अपरिहार्य हैं। इसके अतिरिक्त वर्तमान में अधिकांश व्यक्ति निरक्षता के कारण सामाजिक भेदभाव के प्रति प्रतिकार भी करने में असमर्थ होते हैं, साथ ही विकास के अवसरों का लाभ उठाने में भी सक्षम नहीं हो पाते। प्रतिभाशाली व्यक्ति भी राष्ट्र व समाज की चाह कर भी उचित सेवा (शिक्षा के अभाव) के कारण नहीं कर पाते हैं।

समस्याएँ

भारतीय संविधान के अनुच्छेछ 45 के अनुसार संविधान लागू होने से 10 वर्ष के अन्दर 6 से 14 तक की आयु के सभी छात्रों को निःशुल्क शिक्षा देने का संकल्प लिया गया, जो प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण के लिए परमावश्यक है। इस सार्वभौमिकता में अधोलिखित समस्याएँ हैं–

- सुविधाओं की सार्वभौमिकता का अभाव
- नामांकन की सार्वभौमिकता का अभाव
- शिक्षा को बीच में ही छोड़ने की सार्वभौमिकता

प्रशिक्षुओं से शिक्षा की सार्वभौमिकता में आने वाली समस्याओं पर वाद–विवाद कर चर्चा करें

घर से प्राथमिक विद्यालयों की दूरी के कारण छात्रों को पैदल जाना पड़ता है जो उनके लिए कष्टकारी व दुरूह जान पड़ता है। अभिभावक भी बच्चों के प्रति सशंकित रहते हैं। इतना ही नहीं अधिकांश बच्चे ऐसे भी हैं जिनका विद्यालय में 6 वर्ष की अवस्था में प्रवेश होता हैं। कहीं–कहीं तो प्रवेश के समय छात्र की आयु 10–11 वर्ष भी देखने को मिलती है। इसके अतिरिक्त छात्र शाला में आकर

Downloaded From www.dietmathura.org

कुछ समय के पश्चात् कई कारणों से विद्यालय छोड़ देता है। इससे अपरिपक्व अवस्था में ही छात्रों का शाला से किन्हीं कारणों से हटना शिक्षा के अपव्यय को बढ़ावा देता है।

प्रयास

स्वतंत्रता पूर्व एवं स्वतंत्रता पश्चात् शिक्षा के सार्वभौमीकरण के लिए समय–समय पर नियम, कानून, आयोग, समितियाँ बनाई गईं। भारतीय शिक्षा के ऐतिहासिक क्रम को निम्नप्रकार से अवलोकित किया जा सकता है, जिनका अन्तिम रूप से उद्‌देश्य प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से शिक्षा का सार्वभौमीकरण ही था। इनमें उल्लेखनीय हैं–

- वैदिक शिक्षा एवं बौद्ध कालीन शिक्षा
- मध्यकालीन इस्लामी शिक्षा
- 1813 का चार्टर एक्ट
- प्राच्य पाश्चात्य विवाद
- मैकाले का विवरण प्रपत्र, 1835
- लार्ड आकलैण्ड का विवरण प्रपत्र
- वुड डिस्पैच– 1854
- हण्टर कमीशन–1882
- शिमला शिक्षा सम्मेलन
- भारतीय विश्वविद्यालय आयोग, 1902
- भारतीय विश्वविद्यालय अधिनियम,1904
- लार्ड कर्जन का प्राथमिक शिक्षा नीति सम्बन्धी प्रस्ताव
- हर्टांग समिति 1929
- वुड–एबट रिपोर्ट– 1937
- वर्धा शिक्षा सम्मेलन–1937
- जाकिर हुसैन समिति
- सार्जेण्ट योजना– 1944

स्वतंत्रता उपरान्त

- विश्वविद्यालीय शिक्षा आयोग (1948–49)
- मुदालियर आयोग 1952
- कोठारी आयोग– 1964
- राष्ट्रीय शिक्षा नीति– 1968
- राष्ट्रीय शिक्षा नीति– 1986
- आचार्य राममूर्ति समिति– 1990
- यशपाल समिति– 1992–93
- नवोदय विद्यालय
- आपरेशन ब्लैक बोर्ड

Downloaded From www.dietmathura.org

- राष्ट्रीय साक्षरता मिशन
- सर्व शिक्षा अभियान 2001
- मध्याह्न भोजन योजना– 1995
- 86 वाँ संविधान संशोधन
- निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा अधिनियम, 2009

प्रशिक्षुओं से उक्त बिन्दुओं पर विस्तृत व गहन सामूहिक परिचर्चा कराएँ।

शिक्षा वैयक्तिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय प्रगति के लिए अपरिहार्य आवश्यकता है। शिक्षा की अनिवार्यता देश की सभ्यता एवं संस्कृति के विकास के लिए और राष्ट्रीय उद्देश्यों के अनुकूल समाज के नवनिर्माण के लिए अपेक्षित है। यदि प्रत्येक व्यक्ति को प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध नहीं होगी तो संस्कृति में जो सामाजिक परिवर्तन आ रहे हैं उनके अनुकूल मूल्यों और मान्यताओं में परिवर्तन नहीं आ सकते जिसके फलस्वरूप सांस्कृतिक विडम्बना उत्पन्न होकर सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया अवरुद्ध हो जायेगी। यही कारण है कि शिक्षा का सार्वभौमीकरण आवश्यक ही नहीं अपितु अपरिहार्य है।

शैक्षिक अवसरों की समानता

शिक्षा एक सांस्कृतिक अक्षय निधि है। शिक्षा आर्थिक विकास और परिवर्तन की प्रक्रिया में अत्यधिक महत्वपूर्ण और सर्वाधिक सशक्त तत्व है। यही कारण है कि शिक्षा का स्वरूप राष्ट्र के सामाजिक और आर्थिक लक्ष्यों के अनुसार होना चाहिए। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् अब तक शिक्षा सुविधाओं में उल्लेखनीय वृद्धि तो हुई है परन्तु सभी के लिए शिक्षा के अवसर सर्वसुलभ नहीं हो पाए हैं। शिक्षा प्रणाली में श्रेष्ठता लाने के लिए नई शिक्षा संस्थाओं में परिमाणात्मक वृद्धि तो हो रही है। किन्तु शिक्षा प्रणाली में गुणात्मक ह्रास दृष्टिगोचर हो रहा है बढ़ती शैक्षिक सुविधाओं का प्रयोग उन्नत क्षेत्रों व समाज के साधन सम्पन्न वर्गों के लोग करते रहे तथा अन्तर क्षेत्रीय और अन्तर सामूहिक असमानताएँ बढ़ती रहीं।

शिक्षा में अवसरों की समानता का अर्थ

शिक्षा में अवसरों की समानता की संकल्पना का सूत्रपात समान पहुँच की व्यवस्था से हुआ। **एम0एस0 गोरे (1975)** के अनुसार–अवसरों में समानता, समानता के निरपेक्ष लक्ष्य तथा इन कार्यों के लिए असमान पुरस्कार देने की सामाजिक आवश्यकता, जिनके लिए अपेक्षित कौशल, विशेषज्ञता, शारीरिक शक्ति या अन्य गुणों के स्तरों से सम्बन्धित मांगें असमान होती हैं, के मध्य एक समझौता है । उनके अनुसार अवसरों की समानता के प्रत्यय में 'गतिशीलता के माध्यमों तक समान पहुँच' निहित है।

हायमन व स्कैफ के अनुसार– शैक्षिक समता की अधिकांश परिभाषाएँ शिक्षा प्राप्त करने की प्रक्रिया तक पहुँच या उसके परिणामों में समानता पर बल देती है। कुछ विद्वान समता को अधिगम तक समान पहुँच के रूप में परिभाषित करते हैं। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि शैक्षिक समता का वास्तविक अर्थ है सभी विद्यार्थियों को ऐसे शैक्षिक अनुभव मिलना जो कुछ समान लक्ष्यों व विशिष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति

Downloaded From www.dietmathura.org

सुनिश्चित करते हों अर्थात् शैक्षिक समता विद्यालयी अध्ययन के लाभों का समान न्यायसंगत वितरण है। यह ध्यान रखना आवश्यक होगा कि समानता से तात्पर्य सभी के लिए एक समान शिक्षा नहीं है बल्कि प्रत्येक बालक की शारीरिक, मानसिक, सांवेगिक, नैतिक परिस्थितियों के अनुरूप शिक्षा को प्रासंगिक बनाना है। साथ ही समानता का तात्पर्य राज्य द्वारा व्यक्तियों की शिक्षा के सन्दर्भ में जाति, रूप–रंग, भाषा एवं प्रान्तीयता, धर्म आदि के मध्य भेदभाव न करने से भी है। शिक्षा के क्षेत्र में इस समानता की अवधारणाा को स्थापित करने के लिए निम्नलिखित प्रयास किये गये हैं–

- एक निश्चित अवधि तक भेदभाव रहित निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था।
- माध्यमिक स्तर पर विभिन्नीकृत पाठ्यक्रम व्यवस्था
- उच्च स्तर पर सभी के लिए अपेक्षित शैक्षिक उन्नति की व्यवस्था करना ताकि वे उचित योगदान देने में सक्षम हो सकें।

चर्चा बिन्दु– समाज में शिक्षा के स्तर पर किस प्रकार की असमानताएँ व्याप्त हैं ?

भारतीय शिक्षा में असमानताएँ

भारतीय समाज में अनेक असमानताएँ व्याप्त हैं। हमारे सामाजिक ढाँचे में असमानताओं की अनेक पर्तें पायी जाती हैं। यहाँ पुरुषों व स्त्रियों, ग्रामीण क्षेत्रों व शहरी क्षेत्रों, एक ही राज्य के उन्नत व पिछड़े क्षेत्रों, आर्थिक दृष्टि से कम व अधिक उन्नत प्रदेशों के बीच असमानताएँ पायी जाती हैं। अल्प संसाधनों वाले क्षेत्रों में निवास, दूसरों के अनुचित विचारों का विवेचन न करने की प्रवृत्ति, भौतिक अलगाव, आर्थिक शोषण की प्रवृत्तियाँ, औद्योगिक क्रांति की कमी व सामाजिक मान्यताएँ शिक्षा में असमानताओं की जननी व पोषक बनीं।

भारतीय समाज व शिक्षा में असमानताएँ

- स्त्री पुरुष असमानता
- विभिन्न वर्गों के मध्य असमानता
- क्षेत्रीय असमानता
- ग्रामीण शहरी असमानता
- आर्थिक दृष्टि से असमानता

शैक्षिक अवसरों में असमानता के कारण

अन्तर्निहित योग्यता या श्रेष्ठता किसी विशिष्ट नस्ल, जाति, धर्म की अर्थ क्या है नहीं है। हम विभिन्न वर्गों के लोगों को उपलब्ध सुविधाओं में समानता स्थापित करके अधिक अच्छे पुरस्कार की प्राप्ति के लिए समाज के लोगों के बीच स्वस्थ्य प्रतियोगिता की सुदृढ़ नींव रख सकते हैं। सक्रिय व सफल समता संवर्धन प्रयासों के लिए शैक्षिक असमानता के कारकों का अध्ययन जरूरी हैं ये कारक निम्नवत् हैं–

1 निर्धनता– निर्धनता किसी भी समाज के लिए अभिशाप होती है। हमारे देश में सामाजिक, आर्थिक विकास के विभिन्न स्तरों में विषमजातीय क्षेत्र हैं। इस दृष्टि से हमारे विद्यार्थी प्रशासकों की उदासीन अभिवृत्तियों व कभी–कभी अनाचारों, सीमित संसाधनों, वित्तीय, शैक्षिक, मनोवैज्ञानिक व सामाजिक समस्याओं के कारण उपलब्ध शिक्षा सुविधाओं का लाभ नहीं उठा पाते हैं। जो क्षेत्र आर्थिक रूप से पिछड़े होते हैं वहाँ शैक्षिक असमानतायें उच्चतम होती हैं।

चर्चा के बिन्दु– निर्धनता शिक्षा के प्रसार में सबसे बड़ी बाधा है। क्यों एवं कैसे?

Downloaded From www.dietmathura.org

2. शैक्षिक गुणवत्ता के स्तरीकृत प्रावधान

हमारे देश में मुख्यतः चार प्रकार की शैक्षिक संस्थाएँ हैं– पब्लिक स्कूल नगर पालिकाओं महानगर पलिकाओं, पंचायतों द्वारा संचालित स्कूल सरकार द्वारा संचालित स्कूल तथा राजकीय सहायता प्राप्त स्कूल चारों प्रकार के विद्यालय में कार्यरत शिक्षकों की योग्यताओं , वहाँ उपलब्ध भौतिक व शैक्षिक सुविधाओं, वहाँ के शैक्षिक कार्यक्रमों व वातावरण आदि में अन्तर होता है। इन विद्यालयों में मिलने वाली शिक्षा की गुणवत्ता में चाहे कोई दृश्य या पाठ्यक्रम में भिन्नता भले ही नजर न आए, परन्तु भिन्न–भिन्न आर्थिक स्थितियों के बालकों के मध्य विभेदनकारी सामाजिक नेटवर्क का निर्माण अवश्य हो जाता है। यह भावी आर्थिक अवसरों को सीमित कर सकता है।

3. सामाजिक सांस्कृतिक कारक– बुनियादी तौर पर शिक्षा का लक्ष्य है सभी का सर्वांगीण विकास। किन्तु अनेक प्रकार के सामाजिक, सांस्कृतिक कारकों की वजह से शिक्षा सर्वसुलभ नहीं हो पाती। आज भी वर्तमान भारतीय समाज के अन्तर्गत सभी लोगों को शिक्षा प्राप्ति के समान अवसर नहीं मिल पा रहे हैं।

4. शिक्षा संस्थाओं की अनुपलब्धता– जिन स्थानों पर कोई भी शिक्षा संस्था नहीं है वहाँ के बच्चे शिक्षा प्राप्ति के अवसर से वंचित रह जाते हैं। जब तक बच्चों के लिए सरलता से तय करने योग्य दूरी पर शिक्षा संस्थाओं की व्यवस्था नहीं होती है तो बच्चो का शिक्षा प्राप्त करना कठिन हो जाता है।

5. शारीरिक दोष– विकलांग तथा विभिन्न प्रकार के शारीरिक अथवा मानसिक से युक्त बालक/बालिकायें भी शिक्षा प्राप्ति के अवसरों में समानता नहीं प्राप्त कर पाते। इस प्रकार के बच्चों के लिए शिक्षा की उचित व्यवस्था प्रायः नहीं हो पाती है।

अस्तु शैक्षिक अवसरों में विषमताओं के लिए उत्तरदायी उपरोक्त वर्णित कारणों के अवलोकन से स्पष्ट है कि लोकतन्त्र की प्रगति हेतु सभी वर्गों के बीच शैक्षिक अवसरों में समानता लाने के प्रयासों को करने की महती आवश्यकता है जिससे सामाजिक न्याय के सिद्धान्त को बल मिल सके।

शैक्षिक अवसरों की समानता हेतु उपाय

समानता और न्याय पर आधारित समाजवादी व्यवस्था के निर्माण के लिए एक ऐसी शिक्षा प्रणाली विकसित करनी होगी जो सभी को शैक्षिक अवसरों की समानता सुनिश्चित कर सके। आवश्यकता इस बात की है कि शैक्षिक विषमताएँ दूर करने वाले कारणों को पहचानने तथा उनके प्रभाव को कम करने के लिए उचित कदम उठाने के प्रयास निरन्तर होते रहें। बालवाड़ी, शिशु परिचर्या केन्द्र, आँगनबाड़ी, आश्रम विद्यालय, औपचारिक शिक्षा केन्द्र, प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र आदि वंचित वर्ग की शिक्षा प्राप्ति में वरदान सिद्ध हो रहे हैं। संक्षेप में शैक्षिक समानता लाने के कुछ उपाय निम्नवत् हो सकते हैं–

- यथा सम्भव विद्यार्थियों के घर के पास शिक्षा संस्थाएँ स्थापित की जाएँ।
- छात्रावास सुविधाओं को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।
- छात्रों को यातायात साधन उपलब्ध कराया जाना चाहिए।

Downloaded From www.dietmathura.org

- निर्धन छात्रों को छात्रवृत्तियाँ अधिक संख्या में दी जानी चाहिए।
- शैक्षिक विकास की स्पष्ट व समान नीति तैयार की जानी चाहिए।
- शिक्षण शुल्क यथा सम्भव समाप्त कर देना चाहिए।
- पुस्तकें, ड्रेस, स्टेशनरी तथा स्कूल अल्पाहार निःशुल्क दिया जाना चाहिए।
- विद्यालयों में उपचारात्मक शिक्षण तथा पूरक शिक्षा कार्यक्रम संचालित होने चाहिए ताकि शैक्षिक निष्पत्ति से सम्बन्धित न्यूनतम मानदण्ड प्राप्त किया जा सके।
- दूरस्थ शिक्षा प्रणाली को सशक्त व सर्वसुलभ बनाना चाहिए।

निःसन्देह भेदभाव से मुक्त तथा समानता के आधार पर संचालित की जाने वाली समान विद्यालय प्रणाली ही शिक्षा के क्षेत्र में शैक्षिक अवसरों की पूर्ण समानता के संकल्प को पूरा करने में सहायक सिद्ध हो सकती है।

अभ्यास प्रश्न

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. शिक्षा के सार्वभौमीकरण की आवश्यकता व महत्व पर प्रकाश डालिए।
2. शिक्षा के सार्वभौमीकरण के सम्बन्ध में विभिन्न प्रकार के सरकारी प्रयासों के सम्बन्ध में सविस्तार वर्णन करें।
3. शैक्षिक अवसरों की असमानता को स्पष्ट करते हुए इसे दूर करने के उपायों का वर्णन कीजिए?

लघुत्तरीय प्रश्न

4. शिक्षा के सार्वभौमीकरण को परिभाषित कीजिए।

5. शिक्षा के सार्वभौमीकरण के पाँच उद्देश्य लिखिए।

6. शैक्षिक अवसरों की समानता से आप क्या समझते हैं ?

7. शैक्षिक असमानता का अभिप्राय बताइए।

8. शैक्षिक असमानता की उत्पत्ति के तीन कारको का वर्णन कीजिए।

अतिलघुउत्तरीय प्रश्न

9. शैक्षिक समानता की एक परिभाषा का उल्लेख कीजिए।

10. शैक्षिक अवसरों में असमानता के दो कारकों का उल्लेख कीजिए।

11. विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग का गठन कब किया गया ?

12. सर्व शिक्षा अभियान की शुरूआत कब हुई?

बहुविकल्पीय प्रश्न

13. कोठारी आयोग का गठन कब किया गया–

(क) 1963 (ख) 1964 (ग) 1969 (घ) 1975

Downloaded From www.dietmathura.org

शिक्षा का व्यावसायीकरण एवं इस पर नियन्त्रण

व्यावसायीकरण का अर्थ एवं परिभाषा

व्यावसायीकरण का सामान्य अर्थ किसी व्यवसाय विशेष से होता है। जिस व्यवसाय से सम्बन्धित व्यक्ति होता है उस व्यवसाय के सदस्य के रूप में उसे स्वीकार किया जाता है। व्यवसाय को जीविकोपार्जन से भी सम्बन्धित किया जाता है। जिस कार्य एवं गतिविधियों के उपयोग से व्यक्ति अपना भरण–पोषण करता है, सामान्यतः उस वृत्ति को ही व्यवसाय के नाम से सम्बोधित किया जाता है। व्यक्ति किसी न किसी व्यवसाय से अवश्य ही सम्बद्ध होता है।

प्रमुख शिक्षण बिन्दु

- व्यावसायीकरण का अर्थ, परिभाषा
- व्यावसायीकरण व शिक्षा का सम्बन्ध
- व्यावसायीकरण व समाज के मध्य अन्तःसम्बन्ध
- आवश्यकता एवं महत्व

व्यावसायीकरण को विभिन्न विद्वानों ने अपनी–अपनी तरह से परिभाषित करने का प्रयास किया है।

"व्यावसायीकरण शब्द से आशय समाज के उन दायित्वों एवं वर्गों के समूह से है जिसे व्यवसाय विशेष का नाम दिया जाता है, जो समाज और उसके सदस्यों के लिए कल्याणकारी होता है।"–**श्रीमती आर0 के शर्मा**

"व्यावसायीकरण से आशय उस जीविकोपार्जन सम्बन्धी व्यवसाय से है जिसे समाज के एक वर्ग विशेष द्वारा स्वीकार किया जाता है तथा समाज द्वारा उस व्यवसाय को स्वीकृति प्रदान की जाती है।"– **एस0 के0 दुबे**

उपरोक्त तथा अन्य विद्वानों द्वारा व्यावसायीकरण की परिभाषाओं से यह निष्कर्ष निकलकर आता है कि व्यावसायीकरण मानव समाज की एक आवश्यक व्यवस्था है, जिसे समाज के सदस्य के रूप में प्रत्येक व्यक्ति द्वारा स्वीकार किया जाता है।

व्यवसाय समाज से सम्बद्ध एक व्यापक एवं अनिवार्य तथ्य है। जब हम समाज के विषय में चर्चा करते हैं तो विभिन्न प्रकार के व्यवसायों का चित्र हमारे मस्तिष्क में उभरता है। वैदिक कालीन संस्कृति में व्यवसाय के आधार पर ही समाज में वर्ण व्यवस्था की संकल्पना अपनायी गयी थी। यद्यपि वर्ण व्यवस्था का सर्वप्रथम उल्लेख वैदिक ग्रंथों में मिलता है किन्तु यह वर्तमान समाज में भी अवलोकनीय है। आज भी विभिन्न प्रकार के संगठनों, संघों का निर्माण व्यवसाय के आधार पर किया जाता है।

प्रशिक्षुओं से व्यावसायीकरण की परिभाषाओं पर चर्चा–परिचर्चा के द्वारा इसके प्रमुख तत्वों की पहचान कराएँ।

शिक्षक संघ, व्यापारिक संघ, विभिन्न कर्मचारी एवं प्रशासनिक अधिकारी संघ आदि इसी ओर संकेत भी करते हैं। भारतीय समाज में व्यावसायीकरण की प्रकृति आज भी उतनी ही प्रभावशाली है जितनी कि वैदिक काल में थी। हाँ इसके स्वरूप में अवश्य ही परिवर्तन हुआ है।

व्यावसायीकरण एक व्यापक शब्द है। व्यावसायीकरण की परिभाषाओं एवं अवधारणा का विश्लेषण करने पर अधोलिखित विशेषताएं प्रस्फुटित होकर सामने दिखती हैं–

Downloaded From www.dietmathura.org

- व्यावसायीकरण एक ऐसी युक्तियुक्त व्यवस्था है जिसके अभाव में समाज एवं मनुष्य की उन्नति एवं प्रगति की सम्भावनायें शून्य हैं।
- व्यावसायीकरण के अभाव में मानव समाज वैश्विक स्तर पर अपनी पहचान बनाने में असमर्थ रहता है।
- व्यावसायीकरण प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से व्यक्ति, समूह व समुदाय के जीविकोपार्जन से प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से सम्बन्धित होता है।
- व्यावसायीकरण द्वारा व्यक्ति में व्यवसाय विशेष सम्बन्धी दक्षताओं एवं कौशलों का विकास किया जा सकता है।
- व्यावसायीकरण का सम्बन्ध प्रत्यक्षतः शिक्षा तथा समाज से घनिष्ठ रूप में होता है।
- व्यावसायीकरण आर्थिक विकास एवं औद्योगिक विकास के मार्ग को प्रशस्त करते हुए प्रतिस्पर्धा की भावना का विकास करता है।
- व्यावसायीकरण ऐसी अवधारणा है जिसमें प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से समाज एवं मानव कल्याण की भावना निहित रहती है।

व्यावसायीकरण व शिक्षा का सम्बन्ध

व्यावसायीकरण एवं शिक्षा एक–दूसरे से परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध रखते हैं। व्यावसायीकरण एवं शिक्षा एक ही सिक्के के दो पहलू हैं क्योंकि शिक्षा के द्वारा ही व्यावसायीकरण के विभिन्न मार्ग प्रशस्त होते हैं। शिक्षा एवं व्यावसायीकरण के मध्य युक्तियुक्त एवं सार्थक सम्बन्धों का विश्लेषण अधोलिखित बिन्दुओं के आधार पर किया जा सकता है। प्रमुख बिन्दु निम्नवत् हैं–

- शिक्षा के द्वारा ही छात्रों को अपने भावी जीवन के लिए उचित व्यवसाय के चयन हेतु, विवेकपूर्ण निर्णयन क्षमता विकास हेतु दिशा मिल सकती है।
- शिक्षा के द्वारा ही व्यावसायीकरण के विभिन्न क्षेत्रों का विकास किया जाता है।
- व्यावसायीकरण की प्रक्रिया का विकास समाज एवं देश की शिक्षा व्यवस्था पर निर्भर करता है। जिस देश की शिक्षा व्यवस्था जितनी उच्च स्तर की होगी, उस देश में व्यावसायीकरण भी विविधताओं से परिपूर्ण एवं तीव्र गति से होगा।
- वर्तमान परिवेश में भी व्यावसायीकरण से सम्बद्ध शिक्षा ही मानव कल्याण का मार्ग प्रशस्त करती है। अतः क्रिया प्रधान व रोजगारोन्मुख शिक्षा की वर्तमान समय में अधिक माँग है।
- शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य मानव को उचित व्यवसाय की ओर ले जाना है, जिसकी उसके पास योग्यता हो।
- शिक्षा ही वह एक मात्र युक्ति व माध्यम है जिसके द्वारा मानव की व्यावसायिक रुचियों, योग्यताओं, कौशलों, निपुणताओं को विकसित किया जाता है और जिसके द्वारा वह वातावरणीय समायोजन कर सफल व्यवसायी बनने में सक्षम हो सकता है।
- व्यवसाय विशेष के लिए प्रशिक्षण प्रदान करने की नवीनतम तकनीकी का अनुसन्धान शिक्षा जैसे माध्यम के द्वारा किया जाता है।
- शिक्षा के द्वारा ही व्यावसायीकरण के विभिन्न क्षेत्रों का ज्ञान मानव को प्रदान किया जाता है, जिससे वह अपनी इच्छानुसार क्षेत्र का चयन कर सके।

Downloaded From www.dietmathura.org

उपर्युक्त बिन्दुओं के अध्ययन एवं विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि शिक्षा एवं व्यावसायीकरण एक ही सिक्के के दो पहलू हैं तथा ये एक–दूसरे से घनिष्ठ रूप से प्रत्यक्षतः अन्तर्सम्बन्धित हैं। शिक्षा एवं व्यावसायीकरण में परस्पर अन्योन्याश्रयात्मक सम्बन्ध पाया जाता है।

चर्चा के बिन्दु– छात्र–छात्राओं के लिए व्यावसायिक शिक्षा क्यों आवश्यक है ?

व्यावसायीकरण एवं समाज के मध्य अन्तः सम्बन्ध

जहाँ एक ओर शिक्षा का सम्बन्ध व्यावसायीकरण से है वहीं दूसरी ओर व्यावसायीकरण एवं समाज भी एक ही सिक्के के दो पक्ष हैं। ध्यातव्य है कि जहाँ समाज की कल्पना की जाती है वहाँ व्यावसायीकरण के पक्ष को अनिवार्य रूप से स्वीकार करना पड़ता है। व्यवसाय के अभाव में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से समाज के सदस्यों का जीवन यापन सम्भव नहीं हो सकता है। व्यावसायीकरण एवं समाज में घनिष्ठ सम्बन्धों को निम्नलिखित बिन्दुओं द्वारा पहचाना जा सकता है। प्रमुख बिन्दु निम्नवत् हैं–

- वर्तमान समाज में व्यावसायिक शिक्षा को ही महत्व दिया जाता हैं क्योंकि व्यावसायिकता ही मानवीय आकांक्षाओं की पूर्ति का आधार निर्मित करती है।
- समाज में व्यवसाय से रहित क्रियाओं को निरर्थक क्रियाओं के ही अन्तर्गत सम्मिलित किया जाता है जबकि व्यावसायिक क्रियाओं को ही सार्थक क्रियाओं के रूप में सामाजिक मान्यता प्राप्त है।
- प्रत्येक समाज में रहने वाला व्यक्ति, समूह व समुदाय किसी न किसी रूप से व्यवसाय विशेष से सम्बन्धित होता है। अतः व्यावसायीकरण वह युक्ति युक्त आधार है जिससे समाज का स्वरूप निश्चित होता है।
- समाज का समग्र या समेकित विकास व्यावसायीकरण द्वारा ही सम्भव है क्योंकि यह समाज के प्रत्येक अंगों का सर्वांगीण विकास करता है।
- समसामयिक दौर में समाज में व्यावसायीकरण की प्रवृत्ति अधिक बलवती है क्योंकि प्रत्येक कार्य को व्यावसायीकरण के दृष्टिकोण से देखा जाता है।
- समाज के विकास एवं आर्थिक उत्थान के लिए व्यावसायीकरण की प्रमुख आवश्यकता होती है।
- समाज की भौतिक उन्नति का आधार व्यावसायीकरण ही है क्योंकि व्यावसायिक उन्नति ही समृद्धि का मार्ग प्रशस्त करती है।
- व्यावसायीकरण ही वह मार्ग है जिस पर चलकर समाज एवं समाज का प्रत्येक व्यक्ति आत्मनिर्भरता को प्राप्त करता है, जिसकी समसामयिक दौर में अपरिहार्यता है।

उपरोक्त के अध्ययन एवं विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि वर्तमान समाज में व्यावसायीकरण का सर्वोपरि स्थान है। यह समकालीन व समसामयिक समाज के विकास को एक मंच तैयार करने में न केवल सहायक सिद्ध होता है अपितु इसकी गति को भी तीव्र से तीव्रतर और तीव्रतम करता है। शिक्षा पर स्वतंत्रतापूर्व एवं स्वातंत्रोत्तर कानूनों, नियमों, समितियों, आयोगों, प्रपत्रों ने भी व्यावसायिक शिक्षा व्यवस्था के महत्व को प्रकाशित किया है।

Downloaded From www.dietmathura.org

आवश्यकता एवं महत्व

जहाँ तक व्यावसायीकरण की आवश्यकता एवं महत्व का प्रश्न है, वर्तमान समय में समाज एवं शिक्षा के क्षेत्र में व्यावसायीकरण की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। आज के बदलते परिवेश में समाज का प्रत्येक व्यक्ति, समूह व समुदाय ऐसी शिक्षा को तरजीह एवं सर्वाधिक मान्यता देता है जो व्यवसाय एवं रोजगारो विशेष से सम्बन्धित हो। प्रत्येक व्यक्ति व समाज का हर अंग वर्तमान युग में तकनीकी शिक्षा एवं उपयोगी शिक्षा को विशेष महत्व देता है। व्यावसायीकरण की आवश्यकता एवं महत्व को अधोलिखित प्रमुख बिन्दुओं द्वारा रेखांकित किया जा सकता है–

- व्यावसायीकरण के माध्यम से वैश्वीकरण की प्रवृत्ति को बल मिलता है, जो कि वर्तमान समय में प्रत्यक्ष रूप से परिलक्षित होती है।
- व्यावसायीकरण से तकनीकी शिक्षा एवं प्रायोगिक शिक्षा को प्रोत्साहन मिलता है जो समसामयिक सन्दर्भ में विशिष्ट माँग हैं।
- व्यावसायीकरण व्यक्ति के लिए जीविकोपार्जन का मार्ग प्रशस्त करता है, आज जिसकी सभी व्यक्तियों, समूहों एवं समुदायों को आवश्यकता ही नहीं अपितु अपरिहार्यता है।
- व्यावसायीकरण का वर्तमान समाज में महत्वपूर्ण उपयोग है। इसके अभाव में शिक्षा को सम्पूर्णता में उपयोगी नहीं माना जा सकता। शिक्षा को सम्पूर्णता में तभी अपनाया जा सकता है जब यह व्यावसायीकरण को उन्मुख कर सके।
- व्यावसायीकरण की प्रवृत्ति ही समाज की महत्वाकांक्षा को सन्तुष्ट करने में न केवल सहायक होती है अपितु यह राष्ट्र की उन्नति में भी विशेष योगदान करती है।
- व्यावसायीकरण के द्वारा व्यवसाय विशेष के लिए प्रशिक्षण की व्यवस्था होती है जिससे व्याक्ति में अन्तर्निहित क्षमताओं, कौशलों व निपुणताओं का पूर्णता से उपयोग किया जा सके।
- व्यावसायीकरण से समाज का आर्थिक एवं भौतिक विकास होता है जो कि वर्तमान समाज की परम आवश्यकता है ।
- व्यावसायीकरण की प्रवृत्ति, शिक्षा एवं समाज को वैश्विक परिदृश्य में प्रासंगिक बनाने के लिए न केवल आवश्यक है, बल्कि अपरिहार्य भी है।

उपरोक्त रेखांकित बिन्दुओं के अध्ययन एवं विश्लेषण से स्पष्ट है कि शिक्षा और समाज में व्यावसायीकरण की प्रवृत्ति का होना आवश्यक है। इसके द्वारा देश एवं समाज की उन्नति व विकास सम्भव है और तभी हम शिक्षा के सार्वभौमीकरण के वास्तविक लक्ष्य को प्राप्त करने में सक्षम हो सकेंगे।

अभ्यास प्रश्न

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. शिक्षा के व्यावसायीकरण को परिभाषित करते हुए उसकी प्रमुख विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।
2. वर्तमान परिप्रेक्ष्य में व्यावसायीकरण की आवश्यकता व महत्व पर प्रकाश डालिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

3. शिक्षा के व्यावसायीकरण की विशेषताएं लिखिए।
4. व्यावसायीकरण तथा शिक्षा एक –दूसरे से पूरक हैं। स्पष्ट कीजिए।

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

5. व्यावसायीकरण तथा समाज में क्या सम्बन्ध है ?
6. व्यावसायीकरण का क्या अर्थ है ?

Downloaded From **www.dietmathura.org**

बचपन छीनता बालश्रमः निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा में बाधक

व्यक्ति को बाल्यावस्था में सबसे अधिक सहायता, संरक्षण एवं देख–भाल के साथ–साथ प्रेम, सहानुभूति एवं सुरक्षा की आवश्यकता होती है ताकि उसका संतुलित एवं सर्वांगीण विकास हो सके। किसी भी देश के बच्चों के स्वास्थ्य की स्थिति उस राष्ट्र के वर्तमान एवं भविष्य के स्वास्थ्य की सूचक होती है। **अब्राहम लिंकन** का मानना है कि यह एक बच्चा ही है जो किसी व्यक्ति द्वारा प्रारम्भ किए गए कार्यों को भविष्य में पूरा करेगा। वह वहाँ पर बैठने जा रहा है जहाँ पर व्यक्ति आज विराजमान है और व्यक्ति के चले जाने पर बच्चा ही उसके द्वारा महत्वपूर्ण समझी जाने वाली क्रियाओं को सम्पन्न करेगा। वह व्यक्ति द्वारा अपनाई गई समस्त नीतियों को लागू करेगा। वह व्यक्ति द्वारा बनाए गए शहरों, प्रदेशों व राष्ट्रों को नियंत्रित करेगा तथा इनका स्वामित्व ग्रहण करेगा। वह व्यक्ति द्वारा रचित पुस्तकों के विषय में निर्णय लेगा तथा आवश्यकता पड़ने पर प्रशंसा तथा निन्दा करेगा। इस प्रकार मानवता का भाग्य बच्चों के हाथों में है।

प्रमुख शिक्षण बिन्दु
- बालश्रम का अर्थ एवं परिभाषा
- बाल श्रमिकों की समस्याएँ
- बालश्रमः निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा में बाधक
- बालश्रम उन्मूलन के उपाय

बच्चों के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए **राष्ट्रपिता महात्मा गांधी** ने कहा था कि यदि हमें इस विश्व में वास्तविक शांति की स्थापना करनी है एवं युद्ध के विरुद्ध वास्तविक लड़ाई छेड़नी है तो हमें बच्चों से प्रारम्भ करना पड़ेगा। यदि उनका विकास उनकी प्रवृत्ति के अनुसार होगा तो हमें संघर्ष नहीं करना पड़ेगा, हमें अर्थहीन आदर्श प्रस्ताव नहीं पारित करने पड़ेंगे और हम प्रेम से प्रेम एवं शांति से शांति के मार्ग पर अग्रसर होंगे। **पं0 जवाहर लाल नेहरू** कहा करते थे, ''मैं देश के हर बच्चे की आँखों में हिन्दुस्तान के भविष्य की तस्वीर देखता हूँ। आज के बच्चे ही कल के जिम्मेदार नागरिक होंगे। भारत के भाग्यविधाता होंगे। ''इन विचारकों की धारणाओं के विपरीत न केवल भारत, बल्कि संसार के सभी देशों की एक ज्वलंत सामाजिक समस्या 'बालश्रम' की है। बाल–श्रम मानवता के नाम पर कलंक है तथा नौनिहालों के लिए अभिशाप है जो उनसे उनका बचपन छीन रहा है।

बालश्रम का अर्थ एवं परिभाषा

'बाल–श्रमिक' वह बालक है जिसने अपनी आयु का चौदहवाँ वर्ष पूरा नहीं किया और किसी दूसरे व्यक्ति के पास मजदूरी लेकर या, बिना मजदूरी के कार्य कर रहा है। बाल–श्रम की कुछ प्रमुख परिभाषाएं निम्नलिखित हैं–

बालश्रम निषेध अधिनियम के अनुसार– ''चौहद वर्ष की आयु से कम उम्र के बालकों द्वारा किसी खतरनाक उद्योग, खान, कारखाने आदि में किया जाने वाला कार्य (जोखिम पूर्ण) 'बालश्रम' कहलाता है।''

भारतीय जनगणना में दी गई परिभाषा के अनुसार, ''एक बाल–श्रमिक वह है जो दिन का बड़ा हिस्सा शारीरिक श्रम करने में लगाता है तथा 14 वर्ष से कम आयु का होता है।''

Downloaded From www.dietmathura.org

मीनाक्षी अग्रवाल ने बाल–श्रमिकों को स्पष्ट करते हुए लिखा है, '' बालश्रमिक 14 वर्ष तक के बेसहारा अथवा शोषित बच्चों की वह श्रेणी है जो अपने या कुछ दूसरे लोगों के लिए आजीविका उपार्जित करने के लिए बाध्य हैं तथा जिनके द्वारा किया जाने वाला श्रम अनियमित और साधारणतया गैर–कानूनी होता है।''

चर्चा के बिन्दु– बालश्रम समाज के लिए अभिशाप है। क्यों एवं कैसे ?

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर बाल–श्रमिक को निम्नलिखित विशेषताओं के माध्यम से समझा जा सकता है–

- वह बालक जो अभी चौदह वर्ष का नहीं हुआ है अर्थात् 13 वर्ष 364 दिनों तक का है, मजदूरी के लिए श्रम करता है, बाल–श्रमिक है।
- इस आयु के बालकों द्वारा किया जाने वाला श्रम गैर–कानूनी है।
- ये बालक बेसहारा व शोषित श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं।
- साधारणतया सस्ती मजदूरी के लिए बाल–श्रमिकों को सेवा– नियोजित किया जाता है।

जनवरी, 2000 में विश्व बैंक द्वारा प्रकाशित एक रिपोर्ट के अनुसार, दुनिया में सबसे अधिक लगभग 6 करोड़ बाल–श्रमिक भारत में हैं जिसमें 1.5 करोड़ बंधुआ बाल–श्रमिक भी सम्मिलित हैं।

बाल–श्रमिकों की समस्याएँ

बाल–श्रम अपने आप में एक सामाजिक समस्या है। फिर भी, जहाँ तक उनसे जुड़ी समस्याओं का सवाल है, उसे निम्नलिखित रूपों में समझा जा सकता है–

1. स्वास्थ्य समस्या

अधिकांश बाल–श्रमिकों का स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता है। उनके शरीर में पर्याप्त प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा और अन्य विटामिन्स तत्वों की कमी पायी जाती है। अपर्याप्त और पौष्टिक भोजन न मिलने के कारण आम बाल–श्रमिक अस्वस्थ रहता है। उद्योगों व कढ़ाई कार्यों तथा खानों में काम करने वाले बाल–श्रमिकों में आँख व सांस सम्बन्धी रोग अधिक पाए जाते हैं। होटलों में काम करने वालों में अधिकांश को बचे व अपर्याप्त भोजन से ही काम चलाना होता है।

2. शिक्षा समस्या

बाल–श्रमिकों की एक प्रमुख समस्या शिक्षा से दूर होना है। कम आयु में ही मजदूरी करने व अर्थोपार्जन के चक्कर में ये बालक शिक्षा से पूरी तरह दूर चले जाते हैं। शिक्षा से उनका कोई मतलब नहीं रह जाता। ये बाल–श्रमिक शिक्षा को अपने से जोड़ने की बात सोच नहीं पाते। अध्ययनों से पता चलता है कि लगभग 80 प्रतिशत से अधिक बाल–श्रमिक निरक्षर हैं।

विचार करें– क्या शिक्षा प्राप्त करने से बाल–श्रमिकों की स्थिति में सुधार होगा? यदि हाँ तो कैसे? यदि

Downloaded From www.dietmathura.org

नहीं तो क्यों ?

3. आर्थिक समस्या

बाल–श्रमिकों की एक प्रमुख समस्या अर्थ से सम्बन्धित है। यद्यपि ये बालक अर्थोपार्जन के लिए ही कम आयु से ही श्रम व मजदूरी करने लगते हैं तथापि विडम्बना यह है कि जिस उद्देश्य से ये बालक श्रमिक बनते हैं, उसे भी दूसरा हड़प ले जाता है। एक तरफ मालिक बाल–श्रमिकों की सेवा पाने के उपरान्त उचित मजदूरी नहीं देते, दूसरी तरफ अभिभावकों के द्वारा सारी मजदूरी ले ली जाती है। उद्योगों, खानों व बागानों में काम करने वाले बाल–श्रमिकों की मजदूरी का अधिकांश हिस्सा दलाल उड़ा ले जाते हैं।

4. भावनात्मक व मानसिक शोषण

बाल–श्रमिकों की एक प्रमुख समस्या उनकी भावनाओं व मन से सम्बन्धित हैं। निजी घरों, दुकानों, होटलों व उद्योगों आदि से जुड़े बाल–श्रमिकों द्वारा बात–बात पर गाली सुनना, पीटा जाना व शारीरिक उत्पीड़न आदि आम घटना हैं। इन बाल–श्रमिकों के अभिभावक भी इन चीजों का विरोध नहीं कर पाते। इससे बालकों में प्रतिरोध की भावना पैदा होने लगती है। अधिकांश बाल–श्रमिक किसी न किसी तरह के मानसिक रोग से पीड़ित हो जाते हैं।

5. स्व की कमी

बाल–श्रमिकों में स्व व स्वाभिमान की भावना की कमी देखी जाती है। बचपन से दुर्व्यवहार को सहन करने के इतने आदी हो जाते हैं कि उत्पीड़न को वे एक सामान्य व्यवहार के रूप में देखने लगते हैं। इन्हें सभी तरह के अपमानों को सहने की आदत सी हो जाती है। फिर झूठ–बोलना, छोटी–मोटी चोरी करना या अन्य दुर्गुणों को सीख लेते हैं। फलस्वरूप उनमें स्व का विकास नहीं हो पाता।

6. अपराधी व्यवहार

बहुत से बाल–श्रमिक अपराध की ओर बढ़ जाते हैं, जिससे वे बाल–अपराधी के अन्तर्गत आ जाते हैं। बाल–श्रमिक जिस वातावरण में रहकर कार्य करते हैं, उससे उनमें अपराधी प्रवृत्ति का विकास होने की सम्भवना बढ़ जाती है। इनके द्वारा छोटी–मोटी चीजों की चोरी करना, जुआ खेलना, मार–पीट करना, मादक द्रव्यों का उपयोग करना आदि उनमें अपराधी व्यवहार को जन्म देता है।

चर्चा करें– समाज में बढ़ते बाल अपराधों का एक प्रमुख कारण बालश्रम है। कैसे ?

7. वैयक्तिक विघटन

बाल–श्रमिकों का तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों से सामंजस्य स्थापित नहीं हो पाता। बाल–श्रमिकों का शारीरिक व मानसिक शोषण होता है, जिससे उनमें निराशा व मानसिक तनाव का

Downloaded From www.dietmathura.org

विकास होता है तथा वे अपने जीवन को बोझ समझने लगते हैं। इन परिस्थितियों में वैयक्तिक विघटन की समस्या उभरती है।

8. सामाजिक विघटन

बाल–श्रम को सामाजिक विघटन का कारण व परिणाम, दोनों कहा जा सकता है। सामाजिक विघटन का ही लक्षण बालश्रम है फिर भी जिस समाज में बाल–श्रमिक बढ़ेंगे, वहाँ विघटन की समस्या बनेगी। **इलिएट एवं मैरिल** के अनुसार ''विघटित व्यक्ति दूसरों के साथ अपनी भूमिकाओं का सही ढंग से निर्वाह करने में असमर्थ होता है और इसलिए सामाजिक विघटन की प्रतिक्रिया की एक श्रृंखला को प्रस्तुत करता है।''

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि बाल–श्रमिकों की अनेक समस्याएँ हैं। बालश्रम अपने आप में एक समस्या है जो प्रकृति की सर्वाधिक सुकोमल अभिव्यक्ति बच्चों के मूल अधिकारों के विपरीत है। पाप–पुण्य, धर्म–सम्प्रदाय, छल–प्रपंच, घृणा–द्वेष से कोसों दूर ये बच्चे बालश्रम का शिकार होकर अपना बचपन खोने लिए अभिशप्त हैं। जो उम्र बच्चों के खेलने–कूदने, शारीरिक और मानसिक विकास की है, उस उम्र में बाल–श्रमिक अपना श्रम बेचने पर मजबूर हैं तथा अपने और अपने परिवार के जीवन–यापन हेतु हाड़–तोड़ मेहनत करके अपने भावी विकास की सभी संभावनाओं को समाप्त करते जा रहे हैं।

बालश्रमः निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा में बाधक

भारत सरकार ने बाल–श्रम के उन्मूलन हेतु अनेक पहल की है। संवैधानिक प्रावधानों, विभिन्न अधिनियमों, विभिन्न समितियों यथा गुरुपदा स्वामी समिति, हरबंस समिति, सनत मेहता समिति, सिंघवी समिति, राष्ट्रीय बालश्रम नीति 1987 आदि के माध्यम से बालश्रम के उन्मूलन का प्रयास किया है। सरकार की इसी कड़ी में एक बड़ी पहल निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा पाने का बच्चों का अधिकार अधिनियम 2009 है, जो इससे पूर्व संविधान (संशोधन) अधिनियम द्वारा शिक्षा पाने के अधिकार को मौलिक अधिकार के रूप में स्वीकार कर लिए जाने को कार्यरूप प्रदान किए जाने से सम्बन्धित है। इस अधिनियम के माध्यम से सबके लिए शिक्षा के लक्ष्य को प्राप्त करने का मार्ग प्रशस्त हो गया है। इस अधिनियम के लागू होने के साथ ही भारत के 6–14 वर्ष तक के आयु वर्ग के सभी बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा के दायरे में लाया गया है। लेकिन बाल–श्रमिक बच्चे इस शिक्षा का लाभ नहीं उठा पा रहे हैं। बाल–श्रम निम्नलिखित रूपों में निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा में बाधक है

1. निर्धनता

बालश्रम का मूल कारण निर्धनता है। बाल–श्रमिकों के माता–पिता की निर्धनता ही उन्हें इस ओर ले जाती है। जब किसी व्यक्ति को अपना पेट भरने का कोई उपाय नहीं सूझता, जीवन बोझ हो जाता है, तो वह हारकर अपने बच्चों द्वारा बाल–श्रमिक के रूप में अर्थोपार्जन के लिए बाध्य हो जाता है। निर्धनता एवं बाल–श्रम में घनिष्ठ सम्बन्ध है। गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले

Downloaded From www.dietmathura.org

अधिकांश व्यक्ति बच्चों द्वारा शिक्षा प्राप्त करने की अपेक्षा आर्थिक लाभ प्राप्त करना अधिक जरूरी समझते हैं।

2. पारिवारिक दशाएँ

पारिवारिक दशाओं का बाल–श्रम के साथ सम्बन्ध देखा जाता है। इनमें माता–पिता का असुखी वैवाहिक जीवन, पारिवारिक कलह, टूटा परिवार व अनैतिक परिवार आदि आते हैं। इन परिस्थितियों में बच्चे दिशाहीन व अनियंत्रित जीवन की ओर मुड़ जाते हैं। उनकी छोटी मोटी आवश्यकताओं की पूर्ति भी असंभव दिखती है। ऐसे परिवारों के बच्चे शिक्षा प्राप्त करने के बजाय बाल–श्रमिक बन जाते हैं, ताकि उनकी मौलिक आवश्यकता (भोजन, वस्त्र) की पूर्ति हो।

3. अशिक्षा

भारत में अभी भी शिक्षा की कमी है। गरीबी रेखा के नीचे जीवन व्यतीत करने वालों में अधिकांश निरक्षर हैं। निरक्षर होने के कारण व्यक्ति शारीरिक श्रम के माध्यम से आजीविका प्राप्त करते हैं। इनके लिए शिक्षा महत्वपूर्ण नहीं दिखती। फलस्वरूप ऐसे परिवार के बच्चों का बाल–श्रमिक के रूप में आजीविका उपार्जन स्वाभाविक हो जाता है। एक बार उसमें आ जाने के बाद इसे छोड़ पाना कठिन हो जाता है।

4. गैर–संवेदनशील शिक्षा– प्रणाली

केन्द्र सरकार एवं राज्य सरकारें चाहे जो भी दावा क्यों न करें, वे प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक शिक्षा प्रणाली की पारम्परिक कमजोरियों– विद्यालयी अधोरचना की कमजोर स्थिति, शिक्षकों की कमी, शिक्षकों में अनुपस्थितता की ऊँची दर आदि के चलते विद्यालयों में बच्चों को आकर्षित करने तथा उन्हें पढ़ाई पूरी करने तक रोके रहने की क्षमता सीमित होती है।

5. वित्तीय असमविशिता

ग्रामीण व शहरी, दोनों ही क्षेत्रों मे हाशिए पर रह रहे वर्गों के आधे से अधिक परिवार अभी भी वित्तीय समावेशन की परिधि में नहीं है। निर्धन परिवारों को संस्थागत स्रोतों से साख सुविधा उपलब्ध नहीं है, ताकि वे स्वयं अपना व्यवसाय प्रारम्भ कर सकें। वित्तीय सुविधाओं से वंचित परिवारों के बच्चे आसानी से श्रम बाजार में प्रवेश कर जाते हैं। श्रम बाजार में प्रवेश करने से उनकी शिक्षा बाधित होती है।

6. कानूनी दोष

बालश्रम की समस्या को रोकने के संदर्भ में विभिन्न सरकारी प्रयास हुए हैं। लेकिन वास्तविकता यही है कि इस व्यवस्था में यह समस्या उत्तरोत्तर बढ़ती ही जा रही है। इसका मूल कारण कानून में दोषपूर्णता है। यही कारण है कि भारत में बाल–श्रमिकों की समस्या दूर करने में ये सरकारी प्रयास उतने प्रभावी सिद्ध नहीं हुए, जितनी इनसे अपेक्षा थी।

7. उत्पादकों के स्वार्थ

Downloaded From www.dietmathura.org

भारत में ऐसे अनेक छोटे–मोटे उद्योग हैं जिनमें बाल–श्रमिकों से काम लेना लाभप्रद है। जैसे– प्लास्टिक उद्योग, माचिस उद्योग, कालीन उद्योग, घरेलू उद्योग आदि । इन उद्योगों के मालिक इन बाल–श्रमिकों के माता–पिता को मजदूरी के रूप में अच्छा–खासा रूपया देते हैं। ऐसी परिस्थिति में अभिभावक बच्चों की शिक्षा की अपेक्षा धनोपार्जन को प्राथमिकता देते हैं।

बालश्रम उन्मूलन के उपाय

स्पष्ट है कि बाल–श्रम निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा में अनेक प्रकार से बाधा उत्पन्न कर रहा है। केवल कानून बनाने से बाल–श्रम का उन्मूलन नहीं हो सकता। हमें दृढ़ इच्छा शक्ति एवं संकल्प से बाल–श्रम के मूल कारण 'निर्धनता' पर चोट करनी होगी। इसके अलावा निम्नलिखित उपायों पर अमल करके निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा के पीछे जो मंशा है उसे साकार किया जा सकता है–

1. बाल–श्रम से जुड़े बच्चों के माता–पिता को प्रौढ़ शिक्षा के माध्यम से जागरुक और उत्तदायित्वपूर्ण बनाया जाना आवश्यक है।
2. विज्ञाापन और प्रचार के माध्यम से जनभावनाओं को प्रेरित कर संवेदनशील बनाया जा सकता है। जन सहयोग एवं जन चेतना द्वारा इस बुराई को समाप्त करने में सहायता प्राप्त की जा सकती है।
3. बालश्रम उन्मूलन से सम्बन्धित कानूनों के प्रभावी क्रियान्वयन की आवश्यकता है।
4. ऐसे बाल–श्रमिक जो निराश्रित हैं, उनके लिए अलग आश्रमों की स्थापना करके उनकी स्थिति को सुधारकर शिक्षा के लिए प्रेरित किया जा सकता है।
5. बालश्रम के लिए लोगों के मन में परिवर्तन लाना आवश्यक है। बाल–श्रम एक बुराई है, यह भावना समाज में विकसित करने की आवश्यकता है। यह सामाजिक परिवेश की देन है। इसलिए समाज का दायित्व बनता है कि इस बुराई को उखाड़ फेंके।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि सामाजिक, आर्थिक प्रयास बाल–श्रम उन्मूलन में कारगर हो सकते हैं। फिर इस संदर्भ में सरकार एवं कानून की भूमिका महत्वपूर्ण हो सकती है। इन संगठित प्रयासों से बालश्रम जैसी घिनौनी समस्या समाप्त करने हेतु मार्ग प्रशस्त हो सकेगा, तभी निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा की सार्थकता भी सिद्ध हो सकेगी।

Downloaded From www.dietmathura.org

अभ्यास प्रश्न

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. बाल श्रम का अर्थ स्पष्ट कीजिए तथा इसकी प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

2. बाल श्रमिकों की समस्यायें बताइये।

3. निर्धनता व बालश्रम में क्या सम्बन्ध है?

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

4. सामाजिक विघटन क्या है ?

5. बालश्रम को परिभाषित कीजिए।

बहुविकल्पीय प्रश्न

6. राष्ट्रीय बालश्रम नीति कब घोषित की गई–

(क.) 1972 (ख.) 1980 (ग.) 1987 (घ.) 1990

स्वयं करने के लिए

- एक शिक्षक के रूप में बालश्रम के उन्मूलन में आप अपना योगदान कैसे दे सकते हैं–
- ....
....
....
....
....
....
.... ।

Downloaded From www.dietmathura.org

जनसंख्या शिक्षा

शिक्षा का एक प्रमुख उद्‌देश्य राष्ट्रीय आकांक्षाओं तथा आवश्यकताओं के अनुरूप उपयोगी नागरिक तैयार करना है। निःसन्देह राष्ट्रीय प्रगति तथा विकास में शिक्षा की एक सशक्त भूमिका होती है। छात्र–छात्राओं में समयानुकूल वांछित अभिवृत्तियों, कौशलों, मूल्यों, रुचियों आदि का विकास करके शिक्षा राष्ट्र के लिए उपयोगी नागरिक तैयार करने के कार्य में अपना योगदान देती है। स्वतन्त्रता के उपरान्त के विगत पैंतालीस वर्षों में भारत ने विकास की अनेक मंजिलें सफलतापूर्वक अर्जित की हैं। अनेक क्षेत्रों में भारत आत्मनिर्भर होता जा रहा है। परन्तु तीव्र गति से हो रही जनसंख्या वृद्धि ने न केवल हमारे राष्ट्र वरन संसार के समस्त देशों के सामने एक गम्भीर समस्या उत्पन्न कर दी है। ऐसा अनुभव किया जा रहा है कि विकास कार्यों का समुचित लाभ जनसाधारण तक न पहुंचने का एक प्रमुख कारण जनसंख्या का तीव्र गति से बढ़ना है। जनसंख्या विस्फोट से सभी राष्ट्र त्रस्त हैं। यही कारण है कि जनंसख्या के प्रभावी नियन्त्रण तथा जनसंख्या वृद्धि से उत्पन्न संकट के समाधान हेतु विचारक, शिक्षाविद् तथा नीति निर्माता प्रत्यनशील हैं।

प्रमुख शिक्षण बिन्दु

- जनसंख्या शिक्षा का अर्थ व परिभाषा
- जनसंख्या शिक्षा के उद्‌देश्य
- जनसंख्या शिक्षा की आवश्यकता व महत्व
- जनसंख्या शिक्षा की समस्याएँ
- जनसंख्या शिक्षा को सफल बनाने के सुझाव / उपाय।

चर्चा बिन्दु– विद्यालयों में जनसंख्या शिक्षा की क्या आवश्यकता है?

वास्तव में जनसंख्या की असीमित वृद्धि मानव जाति के लिए एक अभिशाप सिद्ध हो सकती है। ऐसी स्थिति में मानव जाति को संकट से बचाने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि पारिस्थितिकीय संतुलन को बनाए रखने के लिए प्रयास किये जायें। जनसंख्या शिक्षा इस दिशा में एक सार्थक कदम है।

जनसंख्या शिक्षा का अर्थ व परिभाषा

बीसवीं शताब्दी के छठे दशक में लोगों का ध्यान तीव्र गति से बढ़ती जनसंख्या वृद्धि के कुप्रभावों की ओर गया तथा यह अनुभव किया जाने लगा कि जनंसख्या वृद्धि के दूरगामी कुप्रभावों की ओर जनमानस का ध्यान आकर्षित करने की परम आवश्यकता है। उक्त परिप्रेक्ष्य में जनसंख्या शिक्षा का विशेष महत्व है। जनसंख्या शिक्षा के माध्यम से छात्र–छात्राओं में जनसंख्या वृद्धि की समस्याओं के प्रति चेतना को जागृत करने का प्रयास किया जाता है। जनंसख्या शिक्षा एक शैक्षिक प्रयास है जिसका स्वरूप अत्यन्त व्यापक है। जनसंख्या शिक्षा के अन्तर्गत मानव जनसंख्या का अध्ययन किया जाता है जिससे पर्यावरण पर कोई दुष्प्रभाव डाले बिना मानव जीवन में गुणात्मक सुधार लाया जा सके। जनसंख्या शिक्षा का उद्‌देश्य देश के भावी नागरिकों में छोटे परिवार के प्रति आस्था जागृत करना भी है जिससे वे समझ सकें कि सीमित परिवार ही उनकी व्यक्तिगत तथा समाज की सुख समृद्धि का मूल है।

Downloaded From www.dietmathura.org

जनसंख्या शिक्षा के अन्तर्गत छात्रगण जनसंख्या वृद्धि की प्रवृत्ति, जनसंख्या की विशेषताएँ, जनसंख्या वृद्धि के कारणों के साथ–साथ समस्त राष्ट्र व समस्त विश्व पर पड़ने वाले प्रभावों का ज्ञान प्राप्त करते हैं। जनसंख्या शिक्षा का सम्बन्ध सम्पूर्ण शिक्षा प्रणाली से है। औपचारिक व अनौपचारिक स्कूल शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा तथा उच्च शिक्षा में जनसंख्या शिक्षा को एकीकृत किये जाने की आवश्यकता है। विभिन्न विद्वानों ने जनसंख्या शिक्षा को भिन्न–भिन्न ढंग से परिभाषित किया है। जनसंख्या शिक्षा की कुछ परिभाषाएँ अधोलिखित हैं–

के0एस0राव के शब्दों में, ''जनसंख्या शिक्षा को विस्तृत रूप में एक ऐसी शिक्षा के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसका लक्ष्य समानता तथा आर्थिक न्याय की सामाजिक व्यवस्था को बनाने के लिए जनसंख्या जागृति प्रदान करना है तथा जो उन–दृष्टिकोणों के आन्तीकरण तथा विश्वासों पर बल देने की प्रक्रिया के द्वारा सम्पादित होती है जिन्हें व्यक्ति नियंत्रित कर सकता है तथा स्वयं अपने लिए, अपने परिवार के लिए तथा अपने राष्ट्र के लिए कार्यप्रणाली निश्चित कर सकता है।''

मनियलिस के शब्दों में, '' जनसंख्या शिक्षा को मानव जनसंख्या की प्रकृति एवं जनसंख्या परिवर्तन के प्राकृतिक एवं मानवीय प्रभावों को जानने की अध्ययन विधियों का विश्वसनीय ज्ञान या सीखने के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।''

उपरोक्त परिभाषाओं के अवलोकन से स्पष्ट है कि जनसंख्या शिक्षा की अवधारणा के कुछ मुख्य बिन्दु निम्नवत् हैं–

- तीव्र जनसंख्या की वृद्धि पारिस्थितिकीय संतुलन को छिन्न–भिन्न कर रही है।
- जनसंख्या सीमित करने का सर्वाधिक सबल तथा उपयुक्त माध्यम शिक्षा है।
- जनसंख्या शिक्षा एक शैक्षिक प्रयास है। यह यौन शिक्षा अथवा परिवार नियोजन का कार्यक्रम नहीं है।
- जनसंख्या शिक्षा एक सतत प्रक्रिया है जो शिक्षा के सभी स्तरों पर तथा सभी प्रकार के शैक्षिक कार्यक्रमों में दी जानी चाहिए।
- जनसंख्या शिक्षा मानव जनसंख्या का अध्ययन है जो मुख्यतः जनसंख्या वृद्धि के कुपरिणामों को प्रस्तुत करता है।
- जनसंख्या शिक्षा एक ऐसा शैक्षिक कार्यक्रम है जो जनसंख्या समस्या के प्रति तर्कपूर्ण दृष्टिकोण तथा उत्तरदायित्व की भावना को विकसित करता है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि जनसंख्या शिक्षा मानव जीवन को सम्पूर्ण विकास की ओर अग्रसर करने का एक प्रयास है।

विचार करें– तीव्र जनसंख्या वृद्धि का परिवार व समाज पर क्या प्रभाव पड़ता हैं ?

Downloaded From www.dietmathura.org

जनसंख्या शिक्षा के उद्देश्य

निःसन्देह जनसंख्या वृद्धि पर नियन्त्रण करना एक राष्ट्रीय लक्ष्य है। भारत जैसे विकासशील राष्ट्र में तेजी से बढ़ रही जनसंख्या, विकास कार्यक्रमों के प्रतिफल को व्यर्थ कर देती है। जनसंख्या वृद्धि के नियन्त्रण के राष्ट्रीय लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए भारतीय सन्दर्भ में जनसंख्या शिक्षा के प्रमुख उद्देश्य निम्नवत् होने चाहिए–

- छात्र–छात्राओं को जनसंख्या वृद्धि की प्रक्रिया व उसके कारणों का ज्ञान प्रदान करना।
- पर्यावरण पर जनसंख्या वृद्धि के दुष्परिणामों से छात्र–छात्राओं को अवगत कराना।
- व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र तथा विश्व के आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनैतिक जीवन पर जनसंख्या वृद्धि के फलस्वरूप पड़ने वाले कुप्रभावों से छात्र–छात्राओं को परिचित कराना।
- छात्र–छात्राओं में छोटे परिवार की वांछनीयता के विचार को सुदृढ़ करना जिससे वे भविष्य में छोटे परिवार के मानक को अपनाने का प्रयास कर सकें।
- छात्र–छात्राओं को परिवार के आकार तथा जीवन स्तर के बीच के सम्बन्ध को समझने की योग्यता विकसित करना।
- छात्र–छात्राओं में जनसंख्या वृद्धि की प्रक्रिया को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से समझने की योग्यता विकसित करना।
- छात्र –छात्राओं में देश की जनसंख्या नीति तथा जनसंख्या नियन्त्रण सम्बन्धी विभिन्न योजनाओं की जानकारी देना।

जनसंख्या शिक्षा की आवश्यकता व महत्व

वर्तमान समय में जनसंख्या शिक्षा का विरोध न केवल हमारे लिए आत्मघाती है वरन् इससे हमारे देश की सभी प्रकार की प्रगति की आशाएँ क्षीण होती हैं। भारत के सभी शुभ चिन्तक यह अनुभव करते हैं कि जनता को जनसंख्या सम्बन्धी कुछ शिक्षा अवश्य मिलनी चाहिए। महात्मा गाँधी ने सन्तति के जन्म को मर्यादित करने के लिए ब्रह्मचर्य या आत्म संयम को एकमात्र उपाय के रूप में स्वीकार किया। प्राचीन काल में भी गृहस्थ आश्रम में संयम पर बल दिया जाता था परन्तु आजकल जनसंख्या को सीमित रखने का एकमात्र उपाय परिवार नियोजन रह गया है। जनसंख्या शिक्षा भी इस दिशा में महत्वपूण योगदान दे सकती है।

चर्चा के बिन्दु– बढ़ती जनसंख्या राष्ट्रीय प्रगति में बाधक है। यदि हाँ तो क्यों? यदि नहीं तो क्यों ?

देश में विकास का जो लाभ समाज को मिलना चाहिए वह जनसंख्या में तीव्र वृद्धि के कारण नहीं मिल पाता है। 'मलैया' ने ठीक लिखा है– ''जनसंख्या के द्रुत गति से बढ़ने से विकास कार्यों में बड़ी रुकावट आती है। यद्यपि स्वास्थ्य विभाग द्वारा चलाए जा रहे परिवार नियोजन कार्यक्रम परिवार सीमित करने में सहायक हैं, तथापि हमें उन विद्यार्थियों को जनसंख्या शिक्षा भी देनी होगी जो आने

Downloaded From www.dietmathura.org

वाले वर्षों में माता–पिता बनेंगे। जनसंख्या शिक्षा द्वारा जनसंख्या वृद्धि, उससे होने वाली कठिनाइयों व उसकी हानियों का ज्ञान देकर विद्यार्थियों को छोटे परिवार का महत्व समझाया जा सकता है तथा जनसंख्या सम्बन्धी समस्याओं के प्रति उनकी सजगता में वृद्धि की जा सकती है। **टी0एस0 मेहता** ने निम्न के लिए जनसंख्या शिक्षा को आवश्यक बताया है–

- आधुनिक समाज की जटिल हो रही समस्याओं का प्रभावी ढंग से सामना करने के लिए युवकों व युवतियों को तैयार करना।
- उन्नत मानव जीवन को सुनिश्चित करना।
- सभी बच्चों को अनिवार्य निःशुल्क शिक्षा प्रदान करना।
- राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम को सफलतापूर्वक क्रियान्वित करना।
- आवास, जल– वितरण, स्वच्छता तथा खनिज साधनों की कमी से बचना।
- आधुनिक जीवन में निराशा से बचना।
- मानव जाति के अस्तित्व को सुनिश्चित करना।
- अपने प्रजनन व्यवहार के बारे में उत्तरदायित्वपूर्ण ढंग से निर्णय लेना।

जनसंख्या शिक्षा की समस्याएँ

जनसंख्या शिक्षा से सम्बन्धित प्रमुख समस्याएँ निम्न हैं–

जनसंख्या शिक्षा के प्रत्यय से सम्बन्धित भ्रान्तियाँ

जनसंख्या शिक्षा परिवार नियोजन की समानार्थक नहीं है और न यह यौन शिक्षा ही है। यह जन्म निरोध की शिक्षा भी नहीं है। कुछ लोग इसे यौन शिक्षा व परिवार नियोजन की शिक्षा मानते हैं न कि जनसंख्या के गति–विज्ञान की शिक्षा। इस कारण वे इस शिक्षा को अनुपयोगी व अनावश्यक मानते हैं व विद्यालय शिक्षा से असम्बन्धित रखने पर बल देते हैं।

छोटे परिवार के बारे में उपयुक्त अभिवृत्तियों की कमी

अनेक लोग बड़े परिवारों को उपयोगी मानते हैं। वे बच्चों को भगवान की देन समझते हैं। अनेक बार एक पुत्र की कामना में माता–पिता अपने परिवार को बढ़ाते चले जाते हैं। 'प्रोफेन बर्गर' ने शहरी भारतीयों के परिवार नियोजन सम्बन्धी व्यवहारों व अभिवृत्तियों का अध्ययन किया व यह पाया कि माता–पिता दो पुत्रों व एक पुत्री की कामना करते हैं। एन0 के बोस मेमोरियल भाषण (1992) में बोलते हुए 'आशीष बोस' ने ठीक ही कहा है– मेरे विचार में भारत में परिवार नियोजन उन क्षेत्रों में पूरी तरह से असफल रहा जहाँ निरक्षरता का स्तर विशेषकर महिलाओं में बहुत ऊँचा रहा।

Downloaded From www.dietmathura.org

अध्यापकों की कमी

आजकल शिक्षकों को भी जनसंख्या शिक्षा का सम्यक ज्ञान नही है। शिक्षकों को अपना–ज्ञान बढ़ाने के लिए पर्याप्त सामग्री उपलब्ध नहीं हो पाती है। अल्प–ज्ञान या समुचित ज्ञान न रखने वाले शिक्षक अपने विद्यार्थियों को जनसंख्या की गत्यात्मकता व अन्य सहयुक्त बातों के बारे में समुचित ज्ञान नहीं दे सकते।

जनसंख्या शिक्षा की पाठ्यवस्तु

जनसंख्या शिक्षा की विषयवस्तु में जनसंख्या वृद्धि की स्थिति, जनसंख्या वृद्धि व आर्थिक विकास में सम्बन्ध, अधिक सन्तानोत्पत्ति व माता का स्वास्थ्य, जनसंख्या व प्रति व्यक्ति आय में सम्बन्ध, पौष्टिक भोजन की उपलब्धता व जनसंख्या परिवार की सीमा व मनुष्य का विवेक, सीमित परिवार की आवश्यकता आदि प्रकरण शामिल किए जा सकते हैं। सोच समझ कर विषयवस्तु निर्धारित न करने के कारण विद्यार्थियों को पाठ्यवस्तु समझने में कठिनाई होती है। वे जनसंख्या सम्बन्धी बातें सीखने में रुचि भी नहीं लेते हैं।

जनसंख्या शिक्षा सम्बन्धी शोध कार्यों की कमी

भारत में जनसंख्या सम्बन्धी शोध कार्य बहुत प्रारम्भिक अवस्था में हैं। जनसंख्या वृद्धि के कारणों व प्रभावों के बारे में प्रामाणिक जानकारी का अभाव है। देश में चलाए जा रहे जनसंख्या शिक्षा कार्यक्रमों की प्रभावोत्पादकता का व्यापक मूल्यांकन न हो पाने के कारण जनसंख्या शिक्षा के लिए उपयुक्त पाठ्यक्रम के निर्माण व इसे प्रदान करने के लिए उपयुक्त शिक्षण– विधियों व सामग्री की खोज करने में असुविधा हो रही है।

जनसंख्या शिक्षा को सफल बनाने के सुझाव/उपाय

आजकल जनता व सरकार ने जनसंख्या शिक्षा की जरूरत स्वीकार कर ली है। वर्ष 1969 में बम्बई में जनसंख्या शिक्षा पर संगोष्ठी आयोजित की गई थी। इसके सुझावों में से प्रमुख सुझाव हैं जनसंख्या की शिक्षा समाजशास्त्र, स्वास्थ्य शिक्षा, भाषा, गणित, विज्ञान आदि विषयों द्वारा देना, विभिन्न शिक्षा स्तरों के लिए जनसंख्या शिक्षा की पाठ्यवस्तु, शिक्षण विधि व मूल्यांकन विधि का निर्धारण, शिक्षकों के लिए नियमित व अन्तः सेवा प्रशिक्षण की व्यवस्था, जनसंख्या शिक्षा के क्षेत्र में शोध कार्य को प्रोत्साहित करना, जनसंख्या समस्या के बारे प्रसार भाषण माला का आयोजन।

वर्तमान समय में जनसंख्या शिक्षा के प्रसार व सफल शिक्षण के लिए निम्न सुझाव अपनाए जा सकते हैं–

अध्यापक शिक्षा कार्यक्रमों में जनसंख्या शिक्षा को शामिल करना चाहिए ताकि शिक्षक जनसंख्या शिक्षा का समुचित ज्ञान प्राप्त कर सकें, कार्यक्रम के प्रति उपयुक्त अभिवृत्तियाँ विकसित कर सकें व शिक्षण मूल्यांकन हेतु उपयोगी विधियों को जान सकें।

Downloaded From www.dietmathura.org

- जनसंख्या शिक्षा की आवश्यकता पर शिक्षण संस्थाओं व समुदाय में संगोष्ठी आयोजित की जाए।
- जनसंख्या शिक्षा सम्बन्धी कार्यों में लगे संगठनों के कार्यों को समन्वित कर उपयोगी सुसंगठित कार्यक्रम का विकास करना चाहिए।
- समय–समय पर जनसंख्या शिक्षा कार्यक्रमों का मूल्यांकन किया जाए ताकि कार्यक्रमों की सफलता –असफलता के लिए उत्तरदायी कारकों को ज्ञात किया जा सके।
- जनसंख्या शिक्षा को शिक्षा प्रणाली का अभिन्न अंग बनाया जाए।
- कक्षा में सूचनाएँ देने मात्र से विद्यार्थी जनंसख्या वृद्धि की समस्या को वास्तव में समझ नहीं सकेंगे। 'उषा सुन्दरी वली (1986) के अनुसार छात्रों को प्रासंगिक दत्तों का अध्ययन एवं चर्चा करने के बाद यह स्वयं निश्चत करने देना चाहिए कि देश एवं समाज में जनसंख्या की स्थिति एक समस्या के रूप में उभर कर आ रही है, जिसका समाधान आवश्यक है।
- विकासशील देशों व औद्योगिक देशों में जनसंख्या वृद्धि की दर व आर्थिक संसाधनों की तुलना करवाकर, जनसंख्या व विकास पर जीवन्त चर्चाएं व वाद–विवाद आयोजित करके, अभिगमन का प्रयोग करके, शिक्षण करके व वीडियोकैसेट का प्रयोग जनसंख्या शिक्षा की प्रक्रिया को प्रभावी बना सकता है।

चर्चा बिन्दु– जनसंख्या शिक्षा को सफल बनाने हेतु शिक्षक के रूप में आप क्या प्रयास कर सकते हैं ?

इस समय जनसंख्या शिक्षा कार्यक्रमों के निर्माण व क्रियान्वयन पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। शिक्षण में नवाचारों का उपयोग करके, मूल्यांकन प्रक्रिया को अधिक विकसित करके, जनसंख्या शिक्षा के प्रति अभिभावकों, शिक्षक व छात्रों की अभिवृत्तियों को उपयुक्त बना कर हम जनसंख्या शिक्षा कार्यक्रम की सफलता का मार्ग प्रशस्त कर सकते हैं।

Downloaded From **www.dietmathura.org**

अभ्यास प्रश्न

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. जनसंख्या शिक्षा क्या है? इसके उद्देश्य तथा महत्व पर प्रकाश डालिए।

2. जनसंख्या शिक्षा को सफल बनाने के उपाय सुझाइये।

लघु उत्तरीय प्रश्न

3. जनसंख्या शिक्षा की समस्याएँ लिखिए।

4. जनसंख्या शिक्षा की वर्तमान में क्यों आवश्यकता है ?

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

5. जनसंख्या विस्फोट क्या है ?

6. जनसंख्या शिक्षा की परिभाषा लिखिए।

बहुविकल्पीय प्रश्न

7. पारिस्थितिकी असंतुलन का एक महत्वपूर्ण गतिक कारक है–

(क) रोजगार में वृद्धि (ख) तीव्र जनसंख्या वृद्धि (ग) सुविधाएँ (घ) इनमें से कोई नहीं

8. जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण का उपाय है ?

(क) शोध (ख) आर्थिक क्रियाकलाप (ग) शिक्षा (घ) महामारी

गतिविधि / क्रियाकलाप

प्रशिक्षण कक्ष में प्रशिक्षक द्वारा समस्त प्रशिक्षणार्थियों हेतु जनसंख्या वृद्धि तथा इसके दुष्प्रभावों पर आधारित नाटक, पोस्टर, स्लोगन लेखन, भाषण, निबन्ध लेखन आदि प्रतियोगिताओं का आयोजन किया जाए तथा इसमें कार्य उत्कृष्टता के आधार पर उनका मूल्यांकन भी किया जाएं।

Downloaded From www.dietmathura.org

जातिवाद, अलगाववाद, साम्प्रदायिकता एवं इसके दुष्परिणाम

जातिवाद

जातिवाद जाति– व्यवस्था से सम्बन्धित एक प्रमुख सामाजिक समस्या है। जातिवाद की भावना व्यक्ति–व्यक्ति के बीच घृणा, द्वेष एवं प्रतिस्पर्धा को जन्म देती है। जातिवाद की भावना के विकसित होने से व्यक्ति अपनी ही जाति के सदस्यों के हितों को सर्वोपरि समझता है। देश या समाज का हित उसके लिए नगण्य हो जाता है। सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन के फलस्वरूप जाति–व्यवस्था में परिवर्तन देखने को मिलता है। आज महानगरों में भी जातिवाद की भावना को देखा जा सकता है। नगरों में विभिन्न जाति के लोगों ने अपने संगठन बना रखे हैं। विभिन्न अवसरों पर इन संगठनों को देखा जा सकता है। आज जाति के नाम पर स्थान–स्थान पर शिक्षण संस्थाएँ, चिकित्सालय एवं मनोरंजन संस्थाओं का निर्माण हो रहा है। जातिगत भावना से प्रेरित संस्थाएं अपनी ही जाति के हितों के लिए कार्य कर रही हैं, भले ही इससे देश का अहित क्यों न हो रहा हो।

प्रमुख शिक्षण बिन्दु

- जातिवाद का अर्थ एवं परिभाषा
- जातिवाद के विकास के प्रमुख कारक
- जातिवाद के सामाजिक दुष्परिणाम
- जातिवाद को समाप्त करने के सुझाव

अलगाव वाद

- अर्थ, उद्देश्य
- उत्तरदायी कारक
- अलगाववाद के स्वरूप
- दुष्परिणाम
- शिक्षा का योगदान

साम्प्रदायिकता

- साम्प्रदायिका की अवधारणा
- अर्थ एवं परिभाषा
- भारत में साम्प्रदायिकता
- विशेषताएं
- कारण व दुष्परिणाम
- उन्मूलन के उपाय
- सामाजिक / पारस्परिक सौहार्द व समरसता, वर्तमान आवश्यकता

जातिवाद का अर्थ एवं परिभाषा

जातिवाद एक जाति के सदस्यों की वह भावना है जो अपनी जाति के हित के सम्मुख अन्य जातियों के सामान्य हितों की अवहेलना और प्रायः हनन करने को प्रेरित करती है। किस प्रकार केवल अपनी ही जाति का कल्याण और प्रगति हो, यही चिन्ता उन्हें देश या समाज या अन्य जातियों के सामान्य हितों का ध्यान नहीं रखने देती हैं। मानव भावनाओं का यह संकुचित रूप ही जातिवाद है।

डॉ0 कैलाश नाथ शर्मा के अनुसार '' जातिवाद या जाति भक्ति एक जाति के व्यक्तियों की वह भावना है जो देश या समाज के सामान्य हितों का ख्याल न रखते हुए केवल अपनी ही जाति के सदस्यों के उत्थान, जातीय एकता और जाति की सामाजिक प्रस्थिति को सुदृढ़ करने के लिए प्रेरित करती हो।''

के0एम0 पन्निकर के अनुसार, ''राजनीतिक भाषा में उपजाति के प्रति निष्ठा का भाव ही जातिवाद है।''

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि जातिवाद के दो स्पष्ट पहलू हैं भावना और कर्म। पहला मनोवैज्ञानिक और दूसरा व्यावहारिक। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से प्रभावित व्यक्ति अपनी भावनाओं को अपनी ही जाति में केन्द्रित कर देता है और उन्हीं के कल्याण के लिए चिन्ता करता है। यह चिन्ता या

Downloaded From www.dietmathura.org

इस प्रकार की संकुचित भावनाएं जनकल्याण के लिए घातक हैं। जातिवाद का दूसरा पहलू व्यावहारिक या क्रियात्मक है। इसका तात्पर्य यह है कि जातिवाद से प्रेरित व्यक्ति अपनी ही जाति के कल्याण के लिए केवल सोचते विचारते ही नहीं, बल्कि उसी के अनुसार कार्य भी करते हैं, अर्थात अपने विचारों व भावनाओं को एक व्यावहारिक रूप भी देते हैं।

जातिवाद के विकास के प्रमुख कारक

जातिवाद के विकास में निम्नलिखित कारकों का योगदान रहता है–

1. विवाह सम्बन्धी प्रतिबन्ध– जाति– प्रथा के अन्तर्गत अपनी ही जाति में विवाह करने का निर्देश है और इसका पालन भी हजारों वर्षों से होता आ रहा है। अन्तर्विवाह (Endogany) सम्बन्धी यह जातीय नियम व्यावहारिक रूप में केवल अपनी ही उपजाति में विवाह की अनुमति देता है और एक उपजाति की सदस्य संख्या भी सीमित ही होती है। इसका परिणाम यह हुआ है कि प्रत्येक सदस्य एक दूसरे से किसी न किसी रूप में विवाह सम्बन्धों के द्वारा सम्बन्धित हो गए हैं। इस प्रकार के नाते–रिश्ते एक दूसरे के हितों का अधिक ध्यान रखते हैं और उसी के अनुसार काम भी करते हैं। इसी से जातिवाद का विकास होता है।

2. जातिवाद का उद्‌गम स्रोत जाति है– जातिवाद की मूल प्रवृत्ति जाति–व्यवस्था से सम्बद्ध है। जाति व्यवस्था के अन्तर्गत जन्म का प्रमुख आधार तो रहा है, साथ ही दूसरी जाति के लोगों के लिए खान–पान, व्यवसाय, सम्मिलन, सहवास आदि पर भी प्रतिबन्ध रहा है, जो उसकी सांस्कृतिक पृथकता को व्यक्त करता है। जाति प्रथा पृथकता ही उसकी विशेषता है जो जातिवाद के विकास में गति प्रदान करती है।

3. जजमानी प्रथा का टूटना– जजमानी प्रथा के अन्तर्गत प्रत्येक जाति दूसरी जाति के लिए आवश्यक सेवाएं प्रदान करती थी और बदले में आवश्यक वस्तुएं प्राप्त करती थी। इसमें एक दूसरी जाति में आदान–प्रदान चलता रहता था। जजमानी प्रथा के समाप्त होने से विभिन्न जातियों के मध्य सम्बन्ध टूट गए हैं। इसके फलस्वरूप जातिवाद को बढ़ावा मिला है।

4. प्रचार व यातायात के साधनों में वृद्धि

यातायात और प्रचार के साधनों के अभाव में प्राचीन काल में जातिवाद पनप नहीं पाता था। पर आज यह कमी दूर हो गयी है और बिखरे हुए जाति के सदस्यों में नाता दृढ़तर होता जा रहा है। जहाँ एक ओर यातायात के साधनों में उन्नति होने से एक जाति के सदस्य देश के विभिन्न भागों में बिखर गए, दूसरी ओर उन्हीं साधनों ने उन्हें संगठित करने में सहायता भी दी। आज देश के विभिन्न भागों में और विभिन्न समयों में जातीय सम्मेलन होते हैं और उनमें देश के कोने–कोने से उस जाति के सदस्य भाग लेने आते हैं और अपने सामान्य हितों की रक्षा करने के उपायों को सोचते तथा उसी अनुसार प्रयत्न करते हैं।

Downloaded From www.dietmathura.org

चर्चा के बिन्दु– यातायात व प्रचार के साधन जातिवाद के विकास में किस प्रकार सहायक हैं?

5. विभिन्न जातीय संगठन

भारत में नगरीकरण एवं औद्योगीकरण के फलस्वरूप विभिन्न जातियों के लोगों का नगरों की ओर पलायन हुआ है। आज विभिन्न नगरों में विभिन्न जातियों के अपने–अपने जातीय संगठन हैं। वे अपनी जाति के सदस्यों के हितों के लिए सभाएं, सम्मेलन आदि करते हैं। राजनीति में भी इस संगठनों का सक्रिय योगदान रहता है कि किस प्रत्याशी को मत देना है। फलस्वरूप जातिवाद को बढ़ावा मिलता है।

जातिवाद के सामाजिक दुष्परिणाम– जातिवाद के प्रमुख दुष्परिणाम निम्नलिखित हैं–

1. जातिवाद प्रजातन्त्र के लिए घातक

प्रजातंत्र का बुनियादी आधार समानता, स्वतंत्रता, न्याय, बन्धुत्व तथा समदृष्टि है, जबकि जातिवाद का आधार विषमता, अन्याय, स्वहित एवं विषमदृष्टि है। दोनों का आधार एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न है। एक में जिसका हित है दूसरे में उसका अहित है। अतः जातिवाद प्रजातंत्र के लिए घातक है।

2. राष्ट्रीयता के विकास में बाधा

जातिवाद स्वस्थ राष्ट्रीयता के विकास में बाधक है। एक तो जातिप्रथा ने स्वयं ही भारतीय समाज को अनेक भागों में बाँट दिया है। उस पर जातिवाद के आधार पर इन विभिन्न भागों के बीच जब तनाव या संघर्ष कटु हो जाता है, सामुदायिक भावना का जो संकुचित भाव दिखाई देता है, वह वास्तव में भयंकर और अहितकर है। राष्ट्रीयता के विकास के लिए यह आवश्यक है कि स्वस्थ सामुदायिक भावना का विकास हो पर जातिवाद ऐसी स्थिति को उत्पन्न होने ही नहीं देता। इस प्रकार यह राष्ट्रीय एकता और प्रगति के लिए घातक है।

3. नैतिक पतन

जातिवाद से प्रेरित होकर अपनी जाति के सदस्यों को हर प्रकार की सुविधा प्रदान करने के लिए अनेक अनुचित और अनैतिक उपायों का सहारा लिया जाता है। इससे जातिवाद के नाम पर नैतिक पतन भी होता है। नैतिकता सभी प्रकार की संकीर्णता की विरोधी है, परन्तु जातिवाद यही सिखाता है कि अपनी जाति के सम्मुख अन्य जातियों के सामान्य हितों की या समग्र समाज के कल्याण की अवहेलना। यहाँ तक कि हनन भी किया जा सकता है। मानव भावनाओं का यह संकुचित रूप जब जातिवाद के रूप में प्रकट होता है तो नैतिक पतन संभवतः हो ही जाता है।

4. भाई भतीजावाद को प्रोत्साहन

जातिवाद की भावना ने भाई–भतीजावाद को बढ़ावा दिया है जिसके कारण जातियों के मध्य तनाव एवं संघर्ष बढ़ा है। भाई–भतीजावाद की भावना से व्यक्ति केवल अपनी ही जाति के कल्याण के

Downloaded From www.dietmathura.org

लिए सोचता है और अपनी जाति के सदस्यों को लाभ प्रदान करने का प्रयास करता है जिसके लिए कई बार वह गैर–कानूनी कार्य भी कर डालता है। इससे समाज हो हानि होती है।

5. सामाजिक एकता में बाधक

चूँकि जातिवाद जाति भेद की भावना पर आधृत है अतः सामाजिक एकता छिन्न–भिन्न हो जाती है। परिणाम स्वरूप हमारे देश के लोगों में राष्ट्राभिमान उत्पन्न होने की अपेक्षा जातीय अभिमान व जाति भेद उत्पन्न हुआ जो राष्ट्रीय एकीकरण में बाधक है।

6. देश की सर्वांगीण प्रगति में बाधक

जातिवाद देश की सर्वांगीण प्रगति में बाधक है, क्योंकि जब तक देश के सभी वर्गों एवं जातियों का उत्थान समान रूप से नहीं होगा तब तक देश की सर्वांगीण प्रगति नहीं हो सकती। चूँकि जातिवाद केवल जाति विशेष की प्रगति तक सीमित है, अतः इसके अन्तर्गत सब जातियों को उन्नति करने का समान अवसर नहीं प्राप्त होता है।

7. सामाजिक तनाव

जातिवाद से सामाजिक तनाव में वृद्धि होती है। जब एक जाति अपने को अन्य जातियों से श्रेष्ठ समझती है और दूसरी जातियों को निम्न समझती है और उनके अधिकारों का हनन करती है तो समाज में तनाव व संघर्ष को बढ़ावा मिलता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि जातिवाद के अनेक सामाजिक दुष्परिणाम हैं। जातिवाद देश की एकता, अखण्डता व सामाजिक प्रगति के लिए घातक है तथा लोकतंत्र का विरोधी है।

जातिवाद को समाप्त करने के सुझाव

आज हम 21वीं सदी में प्रवेश कर गए हैं। ऐसी स्थिति में जातिवाद की मानसिकता से निकलकर सामाजिक सौहार्द के वातावरण में सभी को साथ लेकर आगे बढ़ने की आवश्यकता है। जाति वाद से पूर्णतया मुक्ति लेना ही आज समीचीन प्रतीत होता है। आधुनिक समाज की माँग भी यही है। अस्तु, इसे विलोपित करने की दिशा में निम्नलिखित उचित प्रयास अत्यावश्यक हैं–

1. जाति विरोधी शिक्षा

सरल, सुबोध और जनभाषा में जाति–विरोधी तत्त्वों की चर्चा की जानी चाहिए। शिक्षण संस्थाओं में जाति–विरोधी शिक्षा में प्रासंगिक उपमा, दृष्टान्त उदाहरण, कथा आदि का समावेश किया जाना चाहिए जिससे उसका तत्त्व शिक्षार्थियों को सरलतापूर्वक बोधगम्य हो सके। शैक्षणिक पाठ्यक्रम को इस प्रकार निर्धारित किया जाय जिससे शिक्षार्थियों में जातिवाद के प्रति नकारात्मक भावनाओं का विकास संभव हो सके, उसके प्रति घृणा का भाव उत्पन्न हो सके।

Downloaded From www.dietmathura.org

2. अन्तर्विवाह के साथ–साथ अन्तर्जातीय विवाह का समर्थन

जातिवाद को समाप्त करने की दिशा में अपने ही वर्ण, जाति, समूह, प्रजाति और धर्म में विवाह करने की प्रथा के साथ–साथ अन्तर्जातीय विवाह के औचित्य का समर्थन करना चाहिए। इस संदर्भ में लोगों को यह बताना आवश्यक है कि वैदिक युग में विवाह के लिए संभवतः वर्णपरक प्रतिबन्ध समाज में नहीं था, बल्कि उस युग में असवर्ण विवाह होते रहते थे। ऐसे विवाह के अनेक उदाहरण मिलते हैं।

इसी प्रकार हिन्दू समाज में प्राचीन काल से अन्तर्जातीय विवाह होते रहे हैं। अनुलोम एवं प्रतिलोम विवाह का प्रचलन इसी के अन्तर्गत था। अन्तर्जतीय विवाह के औचित्य का समर्थन जी0एस0घुर्ये जैसे समाजशास्त्रियों ने किया है और यह मत व्यक्त किया है कि ''अन्तर्जातीय विवाह के द्वारा एक जाति का दूसरी जाति में रक्त का सम्मिश्रण होना सम्बन्धों को दृढ़ बनाने तथा राष्ट्रीयता का पोषण करने में सबसे प्रभावशाली साधन सिद्ध हुआ है।'' निश्चय ही राष्ट्रीय और सांस्कृतिक एकता के निर्माण में अन्तर्जातीय विवाह का महत्त्वपूर्ण योगदान है। इससे विभिन्न जातियाँ एक–दूसरे के निकट आती हैं और संस्कृति का आदान–प्रदान करती हैं।

3. जाति बोधक नामों का बहिष्करण

जातिवाद की भावना को समाप्त करने के लिए जातिबोधक नामों पर प्रतिबन्ध लगाया जाना चाहिए। प्राचीन भारत में जातिबोधक नामों को हेय दृष्टि से देखा जाता रहा है। भारतीय समाज में आरम्भ से ही जातिबोधक नामों को उत्तम नहीं माना जाता रहा है। बौद्ध साहित्य व जैन साहित्य में भी ऐसा सन्दर्भ नहीं मिलता है। ऐसा करने वाले व्यक्ति समाज में निरादृत होते थे।

4. जातीय श्रेणीबद्धता को समाप्त करना

जाति–व्यवस्था में ऊँच–नीच की भावना रहने के कारण इसमें श्रेणीबद्धता होती है। ऊँच–नीच का यह संस्तरण जन्म आधारित होता है। अतः जातिवाद को समाप्त करने के लिए ऊँच–नीच की भेदपरक भावना को अवैध घोषित करना चाहिए। सभी जाति के लोग चाहे उच्च जाति के हों या निम्न जाति के, समाज में सबकी स्थिति समान होनी चाहिए।

5. जातीय संगठनों को हतोत्साहित करना

आधुनिक भारत में जातीय संगठनों का जाल बिछ गया है। विभिन्न जातियों द्वारा संगठन बनाकर अपनी–अपनी जाति के हितों की रक्षा करने का प्रचलन बढ़ रहा है, साथ ही इन संगठनों द्वारा जातिवाद की भावना भी बढ़ रही है। इन संगठनों पर रोक लगनी चाहिए।

6. नए प्रकार के सामाजिक व सांस्कृतिक संगठन

कुछ विद्वानों का मत है कि जातिवाद से संबंधित भावनाएँ भारत के संपूर्ण वातावरण में छायी हुई हैं और यहाँ के प्रत्येक व्यक्ति की नस–नस में समाई हुई हैं। इसलिए जातीय भावनाओं को किसी न किसी रूप में अभिव्यक्त करना ही उनके लिए स्वाभाविक है। इसकी अभिव्यक्ति को दबाना उचित न होगा। अधिक वैज्ञानिक तरीका यह होगा कि इस अभिव्यक्ति के क्षेत्र को बदल दिया जाय। इसके लिए

Downloaded From www.dietmathura.org

यह आवश्यक है कि नए प्रकार के सामाजिक व सांस्कृतिक समूहों को संगठित किया जाए और इन संगठनों में सभी जाति के लोगों की सदस्यता हो।

7. आर्थिक और सांस्कृतिक समानता

विभिन्न जातियों में आर्थिक और सांस्कृतिक असमानता उनमें पारस्परिक द्वेष और प्रतियोगिता को जन्म देती है जिसका आधार आगे चलकर जातिवाद ही होता है। इसे समाप्त करने के लिए उनमें आर्थिक और सांस्कृतिक समानता लानी होगी, ताकि वे एक–दूसरे के निकट आ सकें। यह कार्य सामाजिक और आर्थिक प्रगति के द्वारा किया जा सकता है जिससे कि औद्योगिक दृष्टि से परिपक्व समाज का निर्माण किया जा सके।

8. राजनीतिक जातिवाद पर रोक

वर्तमान में भारतीय राजनीति में भी जातिवाद व्याप्त है। जब तक देश की राजनीति में जातिवाद की भावना रहेगी तब तक जातिवाद को दूर नहीं किया जा सकता। जातिवाद को समाप्त करने के लिए राजनीतिक जातिवाद को समाप्त करना आवश्यक है।

9. प्रभावशाली व्यावहारिक कानून

जातिवाद की भावना को समाप्त करने के लिए सरकार को प्रभावशाली व्यावहारिक कानून बनाने चाहिए। केवल उच्च अव्यावहारिक कानूनों द्वारा जातिवाद का अन्त नहीं होगा। सरकार ने अन्तर्जातीय विवाहों को कानून द्वारा मान्यता तो दे दी, परन्तु ऐसे विवाहों को आर्थिक संरक्षण भी प्रदान किया जाता तो शायद भारत में अन्तर्जातीय विवाहों में वृद्धि होती। फलस्वरूप जातिवाद की भावना में कमी आती।

10. मानवतावादी दर्शन का प्रचार व प्रसार

जातिवाद को समाप्त करने के लिए समाज में मानवतावादी दर्शन का प्रचार–प्रसार करना आवश्यक है। मानवतावादी दर्शन व्यक्ति और समाज, दोनों के लिए उपयोगी है। यहाँ ऊँच–नीच, श्रेष्ठता–निकृष्टता, पवित्रता–अपवित्रता, शुचिता–अशुचिता का कोई प्रश्न ही नहीं है। अतः मानवतावादी दर्शन का प्रचार–प्रसार किया जाना चाहिए।

11. जातिविहीन जनमत का निर्माण एवं राष्ट्रीयता की भावना को विकसित करने की आवश्यकता

जब तक देश में जातिविहीन जनमत अर्थात् जातिविहीन समाज का निर्माण नहीं होगा, राष्ट्रीयता की भावना का सही मायने में विकास नहीं हो सकता। राष्ट्रीयता की भावना के अभाव में जातिवादी भावना को धराशायी करने की संभावना बहुत कम होती है। जातिविहीन मूल्यों के अभाव में राष्ट्रीयता की भावना का विकास संभव नहीं है। किसी राष्ट्र का निर्माण तब तक नहीं हो सकता जब तक उसके पास एकमतता के आदर्श का बल न हो, एक जातीय स्वर न हो। राष्ट्रीयता की भावना तब पल्लवित व पुष्पित होती है जब देश जातिगत संकुचित सीमाओं में विभाजित नहीं होता है। राष्ट्रीयता की चुनौती है कि हम राष्ट्र की धरती पर जातिविहीन होकर सोचें और अजातिगत भाषा में अपना कर्त्तव्य निश्चित

Downloaded From www.dietmathura.org

करें। अतः जातिवाद को समाप्त करने के लिए राष्ट्रीयता की भावना को विकसित करने की महती आवश्यकता है।

इस प्रकार सुस्पष्ट है कि जातिवाद भारतीय राष्ट्रीयता, सामाजिक सौहार्द और समरसता के विकास में बाधक है जिसको उखाड़ फेंकना हम सबका कर्त्तव्य और वर्तमान आवश्यकता है।

अलगाववाद

भारत एक सम्प्रभुता सम्पन्न देश है जहाँ विभिन्न प्रकार की जातीय, भाषा–भाषी परम्पराएँ अपनी उपस्थिति दर्ज कराती हैं। ऐसी स्थिति में हमारा लगाव राष्ट्र के प्रति, उसके सम्पूर्ण अस्तित्व के लिए व इसके रक्षार्थ होना चाहिए, किन्तु ऐसा नहीं है। बस, यही अलगाववाद का सम्प्रत्यय है। दूसरे शब्दों में अलगाववाद में एक विशिष्ट उपराष्ट्र या अधोराष्ट्र क्षेत्र के प्रति जागरुकता और भक्ति पायी जाती है जिसकी विशेषता सामान्य संस्कृति, पृष्ठभूमि या हित हैं। यह एक क्षेत्र विशेष के व्यक्तियों के विशेष अनुराग या पक्षपातपूर्ण धारणाओं से सम्बद्ध एक भावना है जो स्थानीयतावाद, प्रान्तवाद, क्षेत्रवाद, पृथक्करणवाद के मार्ग पर चलकर अन्ततः अलगाववाद के रूप में परिणत हो जाती है।

जहाँ तक अलगाववाद के लिए उत्तरदायी कारकों का प्रश्न है, इसके एक नहीं अनेक कारण हैं जो समेकित रूप से इसे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रोत्साहित करते हैं। इनमें उल्लेखनीय हैं–

1. राजनीतिक कारक–अलगाववादी शक्तियाँ समाज में ही पनपती हैं। अलगाववाद को जन्म देने में प्रमुख कारक केन्द्र व राज्यों के तथा एक राज्य या राज्यों में तनावपूर्ण सम्बन्ध भी हैं। ये तनाव कई कारकों से उत्पन्न होते हैं यथा– केन्द्र से दी जाने वाली आर्थिक सहायता, प्रांतों का सीमा निर्धारण, नदी–जल बंटवारे का विवाद, पड़ोसी देशों की दखलन्दाजी इत्यादि।

2. आर्थिक कारक

आर्थिक कारकों ने भी समाज में अलगाववाद की भावना की गहनता में उत्प्रेरक का कार्य किया है। आर्थिक रूप से पिछड़े हुए क्षेत्रों में राष्ट्रीय स्तर पर नियोजन में कमियों के चलते ये क्षेत्र समुचित विकाय कार्यों के प्रगतिशील न होने से निवासी कुंठित होकर राष्ट्रनिर्माताओं के प्रति संदेह करते हुए अलग अस्तित्व की माँग करने लगते हैं।

3. भौगोलिक कारक

भौगोलिक कारक के अन्तर्गत देश में विविध प्रकार की भौगोलिक दशाओं का पाया जाना अलगाववाद रूपी चिंगारी को भड़काने में अपनी भूमिका प्रत्यक्षतः अदा करती है। इतना ही नहीं प्रत्येक भाग की मृदा, जंगल, भू–भाग की आकृति व जलवायु की विविधता भी इसमें अपना योगदान करती है।

Downloaded From www.dietmathura.org

4. भाषा की समस्या

एक राष्ट्र, एक भाषा की धारणा पश्चिम से ली गई है क्योंकि वहाँ भाषा–भाषी लोग एक ही राष्ट्र के अन्तर्गत एक ही भाषा को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार कर रहे हैं। भारतीय राजनीतिज्ञों ने भी वहाँ का प्रतिमान अपनाया किन्तु भाषावादरूपी सम्प्रत्यय ने न केवल भाषाई क्षेत्रवाद की जड़ों को मजबूत करने में अपनी भूमिका निभाई, अपितु इसने अलगाववाद की मुखरता से समाज को कलुषित किया, जिसके परिणामस्वरूप भाषाई आधार पर कई राज्यों का गठन भी किया गया।

प्रशिक्षुओं से अलगाववाद के स्वरूप पर निम्नबिन्दुओं के आधार पर चर्चा करें–

- **प्रदेश स्वायत्ता की मांग**
- **बहुप्रदेश, क्षेत्रवाद**
- **अन्तर प्रदेश अलगाववाद**

अलगाववाद के अन्य कारकों में आतंकी गतिविधियों का प्रोत्साहन, युवा असंतोष, आर्थिक विषमता व निर्धनता, क्षेत्रवाद की भावना, जातिवाद, साम्प्रदायिक शक्तियों का अभ्युदय प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं।

अलगाववाद के दुष्परिणामों ने हमारे सामाजिक, आर्थिक तथा राष्ट्रीय विकास को अत्यधिक प्रतिकूल रूप से प्रभावित किया है। इस समस्या के दुष्परिणाम निम्नवत् हैं–

- संकीर्ण नेतृत्व का विकास
- राष्ट्रीयता के विकास में बाधा
- सामाजिक न्याय के लिए चुनौती
- क्षेत्रीय तनाव
- प्रगति में बाधा
- नवीन प्रदेशों/राज्यों/ देशों का गठन
- जान–माल की असुरक्षा/ खतरा
- मानवता का ह्रास इत्यादि।

चर्चा बिन्दु–प्रशिक्षुओं से उक्त बिन्दुओं पर सविस्तार चर्चा करें तथा प्रशिक्षु स्वयं भी कुछ बिन्दु जोड़ सकते हैं।

अलगाववाद जैसी नकारात्मक भावना पर नियंत्रण लगाना अपरिहार्यता बन गयी है। शिक्षा द्वारा ही राष्ट्रीय एकीकरण को प्रोत्साहन देना इस दिशा में अत्यधिक उपयोगी सिद्ध हो सकता है। आज शिक्षा को राष्ट्रीय एकीकरण, सांस्कृतिक विकास तथा सामाजिक व्यक्तित्व के निर्माण का एक माध्यम बनाना आवश्यक है। शिक्षा चाहे विज्ञान की हो, कृषि की हो, चिकित्सा की हो अथवा वाणिज्य या कला से सम्बद्ध हो, सभी के द्वारा राष्ट्रीय चरित्र के निर्माण को प्राथमिकता मिलना आवश्यक है। शिक्षा के

Downloaded From www.dietmathura.org

माध्यम से जैसे– जैसे युवा वर्ग ऐसी संकुचित मनोवृत्तियों तथा इन्हें प्रोत्साहन देने वाले समूहों के क्रियाकलापों से परिचित होता जायेगा, इस समस्या में अपने आप कमी होने लगेगी। इसके लिए प्राथमिक स्तर से ही नैतिक शिक्षा का समावेश करने से भी ऐसे संप्रत्यय की समस्या को कम किया जा सकता है।

साम्प्रदायिकता

भारतीय समाज का अवलोकन करने से स्पष्ट होता है कि यहाँ आदिकाल से ही अनेक जातियों, वर्गों और सम्प्रदायों का अस्तित्व रहा है। ये सभी आपस में एक दूसरे के साथ भाईचारे और आपसी मेल मिलाप के सम्बन्धों के आधार पर साथ–साथ रहते थे। समय परिवर्तन के साथ–साथ सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक स्थितियों में परिवर्तन के फलस्वरूप भारतीय समाज में साम्प्रदायिकता का विकास हुआ है। जो मानवता के लिए बहुत बड़ा अभिशाप है।

साम्प्रदायिकता की अवधारणा

साम्प्रदायिकता एक प्रकार की धार्मिक अन्ध–भक्ति है। यह वह भावना है जो एक धर्म को दूसरे धर्म से अलग करती है। साम्प्रदायिकता को व्यक्ति की संकीर्णता, कट्टरता और संकुचित धारणा कहकर आसानी से समझा जा सकता है। वास्तव में साम्प्रदायिकता एक मनोवृत्ति है जिससे किसी वर्ग के व्यक्ति अपने सीमित हितों और अधिकारों की रक्षा के लिए दूसरे व्यक्ति के हितों और अधिकारों की परवाह नहीं करते हैं। साम्प्रदायिकता ऐसी भावना है जो धर्म, भाषा और जाति पर आधारित होती है तथा देश के हितों की उपेक्षा करके साम्प्रदायिक हितों को महत्त्व प्रदान करती है।

साम्प्रदायिकता समाज और राष्ट्र विरोधी मनोवृत्ति है, क्योंकि यह अपने समूह के संकीर्ण और छोटे हितों के लिए बड़े राष्ट्रीय हितों की अवहेलना करती है। सम्प्रदायवाद का एक विशिष्ट उद्‌देश्य प्रतिष्ठा अर्जित करना, सत्ता प्राप्त करना और राजनीतिक अधिकार प्राप्त करना आदि होता है।

साम्प्रदायिकता का अर्थ एवं परिभाषा

सम्प्रदायवाद का सामान्य अर्थ उस भावना से है जो धर्म, भाषा, क्षेत्र, संस्कृति, प्रजाति आदि की भिन्नता के कारण एक समूह को दूसरे समूह से अलग रहने या विरोध करने की प्रेरणा देता है। भारत में पूर्णरूप से सम्प्रदायवाद धार्मिक भावना, धार्मिक अन्ध–विश्वास से सम्बन्धित है।

स्मिथ के अनुसार, ''साम्प्रदायिक व्यक्ति अथवा समूह वह है जो अपने धार्मिक या भाषा–भाषी समूह को एक ऐसी पृथक राजनीतिक तथा सामाजिक इकाई के रूप में देखता है जिसके हित, अन्य समूहों से पृथक होते हैं और जो अक्सर उनके विरोधी भी हो सकते हैं।''

रेण्डम हाउस डिक्शनरी के अनुसार ''सम्प्रदायवाद अपने ही जातीय समूह के प्रति न कि समग्र समाज के प्रति तीव्र निष्ठा की भावना है।''

Downloaded From www.dietmathura.org

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि सम्प्रदायवाद एक ऐसी भावना है जो व्यक्ति के मन में अपनी जाति, धर्म या सम्प्रदाय के प्रति निष्ठा की भावना पैदा करता है जिससे व्यक्ति अपनी जाति, धर्म या सम्प्रदाय को दूसरे से श्रेष्ठ समझता है।

भारत में साम्प्रदायिकता

भारत में प्राचीन काल से ही विभिन्न धर्म–जाति, भाषा और सम्प्रदायों के सदस्य निवास करते आये हैं। सभी धर्मों और वर्गों के व्यक्ति साथ–साथ मिलकर सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक तथा आर्थिक कार्यों का संचालन करते रहे हैं। यहाँ सम्प्रदायवाद जैसी कोई समस्या नहीं थी। भारत में सम्प्रदायवाद का बीज दरअसल अंग्रेजों ने बोया था। अंग्रेजों की फूट डालो और राज करो की नीति थी।

जिसके परिणामस्वरूप ही भारत के दो टुकड़े हुए थे। आज भारत और पाकिस्तान विश्व भर में पारस्परिक प्रतिद्वन्दी के रूप में जाने जाते हैं। समाज के कुछ स्वार्थी लोग अपना स्वार्थ सिद्ध करने हेतु इस आग को और भड़का रहे हैं। आज साम्प्रदायिकता धर्म की तुलना में राजनीति से अधिक प्रेरित है। देश के विविध भागों में होने वाले दंगे साम्प्रदायिकता का उदाहरण हैं जिसके परिणामस्वरूप हजारों व लाखों लोग प्रभावित होते हैं तथा मानवता शर्मसार होती है।

साम्प्रदायिकता की विशेषताएँ

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर साम्प्रदायिकता की निम्नलिखित विशेषताएँ स्पष्ट होती है।

1. धर्म से सम्बन्धित

साम्प्रदायिकता प्रमुख रूप से धर्म से सम्बन्धित है। साम्प्रदायिक संघर्ष में मुख्यतः अलग–अलग धर्म के मानने वालों के गुट होते हैं या एक ही धर्म के दो गुटों में भी साम्प्रदायिक संघर्ष होने की सम्भावना अधिक रहती है।

2. श्रेष्ठ होने की भावना

साम्प्रदायिक भावना के अन्तर्गत एक समुदाय में अपने धर्म के प्रति श्रेष्ठता की भावना होती है। और वह दूसरे समुदायों व धर्मों को अपने से निम्न मानता है।

3. उपेक्षा

साम्प्रदायिकता का मूल कारण उपेक्षा भी है। जब एक व्यक्ति या समूह दूसरे व्यक्ति या समूह के धर्म, संस्कार, आदर्श आदि को उपेक्षा या घृणा की दृष्टि से देखता है तो यहीं से सम्प्रदायवाद का बीज अंकुरित होता है और साम्प्रदायिक संघर्ष का प्रारम्भ होता है।

Downloaded From www.dietmathura.org

4. अलगाव

सम्प्रदायवाद भी भावना में अलगाववाद की भावना बहुत तीव्र होती है। हमेशा ही एक साम्प्रदायिक समूह दूसरे साम्प्रदायिक समूह से अलग रहना पसन्द करता है। उनमें अधिकांशतः सामाजिक अलगाव पाया जाता है।

5. क्षति का भय

साम्प्रदायिक भावना से ग्रस्त व्यक्ति या समूह को क्षति का भय भी बना रहता है कि विरोधी उन्हें क्षति न पहुँचा दें। अक्सर साम्प्रदायिक संघर्ष में संपत्ति, मकान, धार्मिक स्थलों को भी मुख्य रूप से निशाना बनाया जाता है।

6. तिरस्कार एवं घृणा की भावना

सम्प्रदायवाद की भावना व्यक्ति–व्यक्ति, समूह–समूह के बीच सदस्यों के मन में तिरस्कार एवं घृणा की भावना को बढ़ाती है।

7. अनुकूलन का अभाव

सम्प्रदायवाद की भावना से ग्रस्त लोगों में विरोधी सम्प्रदाय वाले लोगों या समूह के साथ अनुकूलन का अभाव पाया जाता है।

8. धार्मिक कट्टरता

सम्प्रदायवाद से ग्रस्त लोगों में मुख्यतः धार्मिक कट्टरता पायी जाती है। वे अपने धर्म, सम्प्रदाय के प्रति कट्टर निष्ठा रखते हैं।

साम्प्रदायिकता की उपर्युक्त परिभाषाओं एवं विशेषताओं से स्पष्ट है कि साम्प्रदायिकता धार्मिक, सामाजिक संकीर्णताओं का प्रदर्शन है, जो व्यक्ति या समूह में अपनी ही जाति, धर्म या सम्प्रदाय के प्रति कट्टर निष्ठा तथा अन्ध–भक्ति भाव पैदा करती है। इससे विभिन्न सम्प्रदायों के व्यक्तियों, समूहों में आए दिन परस्पर तनाव एवं झगड़े होते रहते हैं और देश में जान–माल का नुकसान होता है।

साम्प्रदायिकता के कारण

साम्प्रदायिकता भारत में एक कोढ़ की भाँति फैल रही है। यह एक जटिल बीमारी है जिसका जितना इलाज किया जा रहा है, मर्ज उतना ही अधिक बढ़ता जा रहा है। साम्प्रदायिकता एक सामाजिक बीमारी है लेकिन इसके कारण मात्र सामाजिक न होकर विविध हैं। भारत में साम्प्रदायिकता के प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं–

Downloaded From www.dietmathura.org

1. फूट डालो और राज करो की नीति

अंग्रेजों की फूट डालो और राज करो की नीति साम्प्रदायिकता का प्रमुख कारण रही है। अंग्रेजों ने भारतीयों के बीच फूट डालकर सम्प्रदायवाद को काफी बढा दिया था, जिसके कारण समाज में वैमनस्यता बढ़ी।

2. मनोवैज्ञानिक कारण

सम्प्रदायवाद के लिए भेदभाव पूर्ण मानसिकता भी कारण है। एक समुदाय के लोगों के मन में दूसरे समूह के लोगों से भय व असुरक्षा की भावना रहती है। पारस्परिक प्रतिद्वन्दिता व आपसी हितों का टकराव होने से यह आगे चलकर साम्प्रदायिकता का रूप धारण कर लेती है।

3. जाति व्यवस्था

जाति–व्यवस्था भारत में सम्प्रदायवाद का एक प्रमुख कारण है। जाति के आधार पर सभी व्यक्ति विभिन्न समूहों में विभाजित हो जाते हैं और उनमें अहं की भावना विकसित हो जाती है। दूसरे समूहों के प्रति उनमें घृणा, द्वेष पैदा हो जाता है, जो बढ़कर साम्प्रदायिकता का रूप ले लेता है।

4. साम्प्रदायिक संगठन

औद्योगिक क्रांति के बाद भारत में औद्योगीकरण एवं नगरीकरण के फलस्वरूप यातायात और संचार के साधनों के विकास के बाद अधिकांश जनसंख्या का नगरों की ओर पलायन हुआ है। आज नगरों में विभिन्न जाति, धर्म एवं सम्प्रदाय के लोग आकर बस गए हैं और उन्होंने अपने–अपने संगठन बना लिए हैं। आज गाँव से लेकर शहर तथा राष्ट्रीय स्तर तक विभिन्न संगठन संगठित हो रहे हैं जो अपने समूह के सदस्यों के स्वार्थों की रक्षा भी करते हैं और सम्प्रदायवाद को बढ़ावा दे रहे हैं।

5. धार्मिक कारण

भारत में विभिन्न धर्मों के लोग रहते हैं और उनकी संस्कृति भी भिन्न–भिन्न होती है। उनके रहन–सहन, खान–पान, रीति रिवाज आदि में पर्याप्त भिन्नता होती है। एक धर्म के लोग अपने को दूसरे धर्म को मानने वालों से श्रेष्ठ समझते हैं। ऐसी भावना सम्प्रदायवाद को बढ़ावा देती है।

6. असामाजिक तत्त्व

अनेक असामाजिक तत्त्व अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए साम्प्रदायिक संघर्ष को भड़काते हैं। तत्त्व अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं और बेगुनाह जनता मारी जाती है। विरोधी समुदाय समझता है कि यह कार्य उनके विरोधियों का है और साम्प्रदायिकता और अधिक बढ़ती है।

साम्प्रदायिकता के दुष्परिणाम

साम्प्रदायिकता के सामाजिक दुष्परिणाम निम्नलिखित हैं–

Downloaded From www.dietmathura.org

1. राष्ट्रीय एकता में बाधा

साम्प्रदायिकता का सबसे बड़ा दुष्परिणाम यह है कि इससे राष्ट्रीय एकता में बाधा उत्पन्न होती है। इस बाधा का प्रमुख कारण यह है कि राष्ट्र विभिन्न स्वार्थ समूहों में विभाजित हो जाता है। इन साम्प्रदायिक समूहों के अलग–अलग स्वार्थ होते हैं। ये समूह अपने स्वार्थ के लिए दूसरे समूहों के स्वार्थों की अवहेलना करते हैं। परिणामस्वरूप व्यक्ति राष्ट्रीय स्तर पर न सोचकर व्यक्तिगत स्तर पर सोचते हैं।

2. राष्ट्रीय स्तर का संघर्ष

साम्प्रदायिकता लोगों में राष्ट्रीय स्तर के संघर्ष को जन्म देती है। सम्प्रदायवाद के फलस्वरूप हिन्दुस्तान का विभाजन हुआ। इसी कारण से कई स्थानीय झगड़े आज राष्ट्रीय स्तर के संघर्ष का रूप ले लेते हैं, जिससे आम जनता के मन में भय, असन्तोष व परस्पर द्वेष भावना उत्पन होती है।

3. असुरक्षा की भावना

साम्प्रदायिकता ने आज असुरक्षा की भावना को बढाया है। आज प्रत्येक साम्प्रदायिक समूह के सदस्यों के मन में दूसरे समूहों के प्रति शंका बनी रहती हैं, क्योंकि ये साम्प्रदायिक समूह मौका मिलते ही एक–दूसरे के सदस्यों को क्षति भी पहुँचाते हैं। ऐसे में जीवन के प्रति असुरक्षा की भावना बनी रहती है।

4. आपसी तनाव

साम्प्रदायिकता के कारण आपसी तनाव बढ़ता है। एक धर्म के लोग दूसरे धर्म को मानने वालों को शंका की नजर से देखते हैं और एक–दूसरे से दूरी बनाये रखते हैं। अतः स्पष्ट है कि सम्प्रदायवाद लोगों के मध्य आपसी तनाव भी बढ़ाता है।

5. भीषण नर संहार

साम्प्रदायिकता संघर्ष की जननी है। संघर्ष की स्थिति में मानव दानव बन जाता है और वह मानव का ही रक्त–पिपासु बन जाता है। रक्तपान करके भी साम्प्रदायिकता की प्यास नहीं बुझती। इसमें भीषण नर–संहार होता है।

6. धन संपत्ति की हानि

साम्प्रदायिकता के कारण धन संपत्ति की कितनी हानि होती है, कहा नहीं जा सकता। वैयक्तिक स्तर पर तो हानि होती है, सार्वजनिक व राष्ट्रीय संपत्ति की अपार हानि होती है। सार्वजनिक सरकारी व ऐतिहासिक स्थलों को विनष्ट कर दिया जाता है, पुस्तकालयों को जला दिया जाता है तथा राष्ट्रीय संपदा को विध्वंस कर बर्बाद कर दिया जाता है।

Downloaded From www.dietmathura.org

7. राजनीतिक अस्थिरता

दलीय राजनीति में प्रभुत्व जमाने के लिए आपसी कलह, संकीर्ण हितों और छल–कपट को बढ़ावा देने में साम्प्रदायिकता की भूमिका सहायक होती है। इसके फलस्वरूप राजनीतिक अस्थिरता एवं अस्त–व्यस्तता बनी रहती है।

8. पारिवारिक विघटन

साम्प्रदायिकता परिवारिक विघटन के लिए भी उत्तरदायी है। साम्प्रदायिक संघर्षों में अनेक व्यक्ति मारे जाते हैं। अनेक स्त्रियों के सुहाग उजड़ जाते हैं और बच्चे अनाथ हो जाते हैं। परिणामस्वरूप पारिवारिक विघटन को बढ़ावा मिलता है।

9. आर्थिक विकास में बाधा

साम्प्रदायिकता आर्थिक विकास में भी बाधक है। इसके कारण कारखानों एवं मिलों में उत्पादन प्रभावित होता है। श्रमिकों के गुट बन जाते हैं। कुछ स्वार्थी लोग मजदूरों को भड़काकर हड़ताल करवा देते हैं। इस प्रकार उत्पादन प्रभावित होता है और आर्थिक विकास बाधित होता है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि साम्प्रदायिकता यह मानवीय शालीनता, दया, करुणा तथा बन्धुत्व का शत्रु है। यह विकराल शत्रु है धर्म निरपेक्षता का, विकास का, प्रगति का, लोकतंत्र का, पारस्परिक सौहार्द एवं समरसता का। यह राष्ट्र–विरोधी है और मानवता–विरोधी भी।

साम्प्रदायिकता के उपर्युक्त दुष्परिणामों को देखते हुए राष्ट्रीय एकता, अखण्डता, विकास, प्रगति, पारस्परिक सौहार्द एवं समरसता को बढ़ावा देना आज की आवश्यकता बन गयी है। इसके लिए साम्प्रदायिकता का उन्मूलन करना ही होगा।

साम्प्रदायिकता उन्मूलन के उपाय

साम्प्रदायिकता के उन्मूलन के लिए निम्नलिखित कदम उठाए जाने चाहिए–

1. साम्प्रदायिक संगठनों पर प्रतिबन्ध

सरकार द्वारा साम्प्रदायिकता फैलाने वाले संगठनों पर रोक लगायी जानी चाहिए। ऐसे संगठनों के खिलाफ, जो धर्म, जाति, सम्प्रदाय के नाम पर बनते हैं और साम्प्रदायिकता फैलाते हैं, उन पर सरकार को कठोरतम कार्यवाही करनी चाहिए।

2. उचित शिक्षा व्यवस्था

साम्प्रदायिकता को समाप्त करने के लिए उचित शिक्षा व्यवस्था भी अति आवश्यक है। ऐसी शिक्षण संस्थाओं पर रोक लगायी जानी चाहिए जो धर्म के नाम पर सम्प्रदायवाद को बढ़ावा देती हैं। पाठ्यक्रमों में राष्ट्रीय एकता एवं पारस्पारिक सौहार्द के विषयों को शामिल किया जाना चाहिए।

Downloaded From www.dietmathura.org

3. साम्प्रदायिक राजनीतिक दलों का उन्मूलन

ऐसे राजनीतिक दलों को जड़ से उखाड़ फेंकना चाहिए जो अपनी नीतियों तथा व्यवहार से साम्प्रदायिकता को बढ़ावा देते हैं।

4. मानवतावादी धर्म– दर्शन का प्रचार–प्रसार

वह धर्म धर्म नहीं, वह मजहब मजहब नहीं, वह सम्प्रदाय सम्प्रदाय नहीं, जो आदमी को आदमी के समीप लाने के बदले एक–दूसरे से दूर ले जाता है। यदि कोई धर्म आदमी को आदमी से जोड़ता नहीं, बल्कि अलग करता है तो ऐसे धर्म को छोड़ देना ही उचित है। धर्म की अलगाववादी प्रवृत्ति पर जोश मलीहाबादी ने लिखा है कि–

''इस तरह इन्सान और शिद्दत करे इन्सोन पर, तुफ है तेरे दीन पर, तानत तेरे ईमान पर।'' न केवल भारतीय एकता की समस्या का समाधान बल्कि सम्पूर्ण विश्व की एकता की समस्या का समाधान यह है कि लोग मानवतावादी धर्म–दर्शन को स्वीकार करें और प्रत्येक व्यक्ति इस दर्शन से ओत–प्रोत होकर मानवता को लिए हुए समाज की सेवा करे।

5. राष्ट्रवादी एवं एकतावादी साहित्य का प्रचार–प्रसार

हमारे देश में अनेक भाषाओं में ऐसे अनेक राष्ट्रवादी साहित्य की सर्जना की जा चुकी है जिनमें भारतीय राष्ट्रीयता के भाव लहरा रहे हैं। कहना न होगा कि राष्ट्रवादी, एकतावादी सहित्य में राष्ट्रीयता के संवेग अन्तर्विष्ट होते हैं, एकता की तरंगे प्रस्फुटित होती हैं और मुल्क के सारे लोग जाति, धर्म भुलाकर कन्धे से कन्धा मिलाकर एक उद्देश्य की ओर अग्रसर होते हैं। अतः साम्प्रदायिकता के उन्मूलन के लिए ऐसे साहित्य का प्रचार–प्रसार अत्यावश्यक है।

6.नैतिक शिक्षा का प्रसार

विद्यालयों में नैतिक शिक्षा को अनिवार्य रूप से लागू किया जाना चाहिए। इसके अन्तर्गत भाई–चारे, प्रेम, पारस्परिक सौहार्द एवं सहयोग की भावना को बढ़ाने वाले अध्यायों को पढ़ाया जाना चाहिए। इससे साम्प्रदायिकता में कमी आएगी।

7. शांति सेना का निर्माण

सरकार को एक शांति सेना बनानी चाहिए जिसका प्रमुख कार्य शान्ति बनाए रखना होना चाहिए। यह सेना विभिन्न स्थानों पर होने वाले संघर्ष पर नियंत्रण करने का कार्य करे। लोगों में पारस्परिक एकता तथा मित्रता कायम करने का कार्य भी करें। संवेदनशील इलाकों की जानकारी प्राप्त कर वहाँ शान्ति बनाने का प्रयास भी इस सेना द्वारा किया जाना चाहिए। शान्ति सेना बनाने का सुझाव आचार्य विनोवा भावे एवं महात्मा गाँधी ने भी दिया था।

Downloaded From www.dietmathura.org

8. धार्मिक सहिष्णुता

धार्मिक सहिष्णुता साम्प्रदायिकता को समाप्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। धार्मिक सहिष्णुता रखने वाले व्यक्ति एक दूसरे के धर्म का आदर करते हुए परस्पर मिलकर शान्तिपूर्वक जीवन व्यतीत कर सकते हैं। यह ठीक है कि वह एक–दूसरे के धार्मिक विचारों, विश्वासों और कर्मकाण्डों का समर्थन नहीं करेंगे, किन्तु इसके साथ ही वे इस धार्मिक मतभेद के कारण एक–दूसरे को कष्ट या हानि भी नहीं पहुँचाएंगे।

9. सर्वधर्म समभाव

साम्प्रदायिकता के उन्मूलन के लिए वर्तमान में सर्वधर्म समभाव पर आधारित संगठनों की आवश्यकता है। सर्वधर्म समभाव द्वारा ही धर्मान्धता, धार्मिक उन्माद, धार्मिक पूर्व धारणाओं, धर्म के आपसी झगड़ों एवं भेदभाव को मिटाया जा सकता है। यह पवित्र कार्य केवल सर्वधर्म समभाव उत्पन्न करने वाले धार्मिक संगठनों के गठन द्वारा ही संभव हो सकता है। हमारे देश में विभिन्न सम्प्रदायों एवं धर्मों में समन्वय लाने का प्रयास इतिहास– काल में भागवत धर्म ने, पूर्व–मध्य काल में जगद्गुरू शंकराचार्य ने, मध्यकाल में कबीर, सूर, तुलसी आदि दूरदर्शी सन्तों ने तथा आधुनिक काल में श्री रामकृष्ण परमहंस एवं स्वामी विवेकानन्द आदि तपस्वियों ने और डॉ0 भगवानदास, सर्वपल्ली डॉ0 राधा कृष्णन आदि विद्वान मनीषियों ने किया है।

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि साम्प्रदायिकता एक जटिल समस्या है। आज के युवा वर्ग को साम्प्रदायिकता के दुखद इतिहास से शिक्षा लेनी चाहिए और साम्प्रदायिकता का उन्मूलन करने के लिए आगे आना चाहिए, क्योंकि राष्ट्रीय, सामाजिक, पारस्परिक सौहार्द व समरसता के लिए साम्प्रदायिकता का उन्मूलन वर्तमान की आवश्यकता है।

Downloaded From www.dietmathura.org

अभ्यास प्रश्न

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. जातिवाद क्या है? इसके विकास के प्रमुख कारकों का वर्णन कीजिए।

2. साम्प्रदायिकता के कारणों व प्रभावों का सोदाहरण वर्णन कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

3. साम्प्रदायिकता उन्मूलन के दो उपाय लिखिए।

4. अलगाववाद को परिभाषित कीजिए।

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

5. अलगाववाद के दो प्रमुख प्रभाव लिखिए।

6. जातिवाद के दो दुष्परिणाम बताइये।

बहुविकल्पीय प्रश्न

7. जातिवाद का उद्गम स्रोत है–

(क) धर्म (ख) जाति (ग) व्यवसाय (घ) इनमें से कोई नहीं।

8. साम्प्रदायिकता उन्मूलन के लिए प्रमुख भूमिका अदा कर सकता है–

(क) समाज सुधार

(ख) प्रचार–प्रसार

(ग) शिक्षा

(घ) मीडिया

स्वयं सोचे और करें

सामाजिक समरसता व सौहार्द के विकास हेतु आप क्या–क्या कर सकते हैं–

- ....
  ....
- ....
  ....

Downloaded From **www.dietmathura.org**

पर्यावरण प्रदूषण एवं पर्यावरण संरक्षण के प्रति जागरुकता

स्वस्थ एवं उन्नत मानव जीवन के लिए स्वास्थ्यप्रद एवं उन्नत पर्यावरण का होना अति आवश्यक है। प्रदूषित पर्यावरण जहाँ एक ओर जीवधारियों एवं वनस्पतियों के स्वास्थ्य के सम्मुख प्रश्न चिन्ह् बनकर खड़ा है वहीं दूसरी ओर उनके अस्तित्व के लिए संकट भी पैदा करता है। इस सन्दर्भ में पर्यावरण प्रदूषण को स्पष्ट रूप से समझना आवश्यक है।

प्रमुख शिक्षण बिन्दु

- पर्यावरण का अर्थ व परिभाषा
- प्रदूषण का अर्थ
- प्रदूषण के कारक
- प्रदूषण के प्रकार
- पर्यावरण संरक्षण के प्रति जागरुकता

सम्पूर्ण पर्यावरण का एक पारिस्थितिकी तन्त्र होता है। पारिस्थितिकी तंत्र में अवांछनीय परिवर्तन को प्रदूषण कहते हैं। इस प्रकार पारिस्थितिकी तन्त्र के जैविक एवं अजैविक संघटकों में अवांछनीय परिवर्तन, जिससे पारिस्थितिकी तन्त्र का सन्तुलन विघटित होता है और जिसका वनस्पतियों एवं जीवधारियों पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है, पर्यावरण प्रदूषण है। अमेरिकी राष्ट्रपति की वैज्ञानिक सलाहकार समिति, पर्यावरण प्रदूषण को परिभाषित करते हुए कहती है– मनुष्य के कार्यों द्वारा ऊर्जा प्रारूप, विकिरण–प्रारूप, भौतिक एवं रासायनिक संगठन तथा जीवों की बहुलता में किये गये परिवर्तनों से उत्पन्न प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रभाव के कारण आस–पास के पर्यावरण में अवांछित एवं प्रतिकूल परिवर्तनों को प्रदूषण कहते हैं।

पर्यावरण का अर्थ व परिभाषा

पर्यावरण शब्द दो शब्दों परि + आवरण से मिलकर बना है। **'परि'** का अर्थ है– चारों ओर तथा आवरण का अर्थ है– ढका हुआ। इस प्रकार पर्यावरण का अर्थ है चारों ओर से ढका हुआ। इस जीव जगत के चारों ओर जो कुछ भी भौतिक और अभौतिक वस्तुएं हैं, वही उसका परिवेश या पर्यावरण है। जीवों के चारों ओर पाया जाने वाला व सब जीवों के जीवन को प्रत्यक्ष या दूसरे कारकों को प्रभावित करके अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है। पर्यावरण के अर्थ के स्पष्ट करने के लिए कुछ परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं–

1. गिस्बर्ट– ''पर्यावरण वह सब कुछ है जो किसी जीव या वस्तु को चारों ओर से घेरे रहता है और उसे प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है।''

2. तांसले– '' प्रभावी दशाओं का योग जिसमें प्राणी रहते हैं, पर्यावरण कहलाते हैं।''

3. जर्मन वैज्ञानिक **फिटिंग** के अनुसार, – '' जीवन की परिस्थिति के समस्त कारक मिलकर पर्यावरण कहलाते हैं। दूसरे शब्दों में पर्यावरण जीव के परिस्थिति कारकों का योग है।''

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि किसी भी पिण्ड के इर्द–गिर्द सजीव या निर्जीव जो भी विद्यमान होता है, वह उस पिण्ड का पर्यावरण कहलाता है।

Downloaded From www.dietmathura.org

प्रदूषण का अर्थ

प्रकृति और मानव सृष्टि के अभिन्न अंग हैं। सृष्टि के रचयिता ने मानव से पहले प्रकृति की रचना की ताकि मानव अपने जीवन को बनाए रख सके। मनुष्य इस पृथ्वी पर अवतरित हुआ तो उसने अपने चारों ओर प्रकृति के अदभुत क्रियाकलापों को देखा और वह उन्हें देखकर आश्चर्यचकित हुआ, मोहित हुआ और भयभीत भी हुआ जिसके फलस्वरूप वह प्रकृति को पूज्य मानता रहा, उसकी सराहना करता रहा। वस्तुतः प्रकृति आदि काल से मानव की पालक बनी रही। इस मार्ग पर आगे चलकर मानव ने प्रकृति तथा मानव के समतोल में असन्तुलन उत्पन्न कर दिया। इस असन्तुलन ने प्रदूषण रूपी घटना को जन्म दिया।

चर्चा बिन्दु– पर्यावरण हमें तथा हम पर्यावरण को कैसे प्रभावित करते हैं?

वैज्ञानिकों का कहना है कि प्रकृति में कोई गन्दगी नहीं है। प्रकृति में सब जीव–जन्तु, प्राणी तथा वनस्पति जगत सामंजस्य बना कर रहते हैं। जब तक मनुष्य का हस्तक्षेप नहीं हो तब तक न तो गन्दगी होती है और न रोग। उसके हस्तक्षेप से ही प्रकृति का सन्तुलन बिगड़ जाता है। प्रकृति के संतुलन के बिगड़ने की दशा को प्रदूषण की संज्ञा दी जाती है। सामान्य भाषा में प्रदूषण का आशय है– प्राकृतिक जल, वायु, भूमि का क्रमिक रूप से दूषित होना। भूमि के दूषित होने से मानव स्वास्थ्य पर बुरे प्रभाव पड़ते हैं और अनेक रोगों तथा विकारों का जन्म होता है।

प्रकृतिप्रदत्त तत्व जल, वायु व भूमि आदि जब दूषित होने लगते हैं तब न केवल मानव अपितु सम्पूर्ण जीव–जगत के जीवन के लिये खतरा उत्पन्न हो जाता है। अतः प्रदूषण एक ऐसी अवांछनीय स्थिति है जब भौतिक, रासायनिक तथा जैविक परिवर्तनों द्वारा हवा, जल तथा धरातल अपनी नैसर्गिक गुणवत्ता खो बैठते हैं और जीवधारियों के लिए हानिकारक सिद्ध होने लगते हैं। इससे जीवन प्रक्रिया बाधित होती है, प्रगति रुक जाती है और सांस्कृतिक क्षति पहुंचती है।

प्रदूषण के कारक

प्रदूषण के दो मूल कारक हैं– **(अ.)** विश्व की बढ़ती जनसंख्या तथा **(ब.)** औद्योगिक विकास

विश्व की जनसंख्या इतनी तेजी से बढ़ रही है जिसे देखकर ऐसा लगता है कि आने वाले समय दशकों में मनुष्य को इस पृथ्वी पर रहने के लिए स्थान ही न मिल पाये। विश्व में प्रतिदिन 2 लाख बच्चे पैदा होते हैं। आज विश्व की जनसंख्या 6 अरब के लगभग है और अनुमान लगाया जाता है कि सन् 2080 तक यह 15 अरब हो जायेगी। इतने लोगों को पृथ्वी पर बसाना, उनके लिए जीवन सामग्री जुटाना बहुत बड़ी समस्या होगी। अपने सभी कार्यों के लिए वह सूरज की विशाल ऊष्मा को ऊर्जा के रूप में प्रयुक्त करेगा। मानव कितना स्वार्थी है कि वह अन्तरिक्ष जैसे साफ–सुथरे वातावरण को भी प्रदूषित करने की कल्पना कर रहा है।

Downloaded From www.dietmathura.org

पिछले 50 वर्षों में औद्योगीकरण का प्रभाव इतना तेजी से बढ़ा हुआ है कि पर्यावरण का रूप ही परिवर्तित हो गया है। मानव ने अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अनेक कारखाने खोल लिये हैं तथा कारखानों के अपशिष्ट पदार्थ जल को प्रदूषित कर रहे हैं। मोटर वाहन का प्रयोग इतना बढ़ रहा है कि वाहनों से निकलने वाले धुएं से वायु प्रदूषण बढ़ रहा है। मानव के कूड़ा–कचड़ा, सड़े–गले पदार्थों को घर के बाहर फेंकने से भूमि प्रदूषण बढ़ रहा है।

प्रदूषण के प्रकार

विचारकों ने स्वरूप के आधार पर प्रदूषण को दो भागों में विभाजित किया है– भौतिक एवं सामाजिक। भौतिक प्रदूषण–वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, भू–प्रदूषण एवं ध्वनि प्रदूषण है। सामाजिक प्रदूषण भी कई प्रकार के होते हैं जैसे–आर्थिक प्रदूषण, सामाजिक प्रदूषण, राजनीतिक प्रदूषण आदि।

वायु प्रदूषण

मानवीय क्रियाओं के फलस्वरूप वायु की संरचना में जो हानिकारक परिवर्तन होते हैं उन्हें वायु प्रदूषण के अन्तर्गत रखा जाता है। जब किसी कारण से वायुमण्डल में गैसों की निश्चित मात्रा एवं अनुपात में अवांछनीय परिवर्तन होता है तब इसे वायु प्रदूषण कहते हैं। इससे जीवधारियों एवं वनस्पतियों के स्वास्थ्य पर इसका बुरा प्रभाव पड़ता है। ये प्रदूषण मनुष्यों, पौधों एवं जानवरों के लिए समान रूप से हानिकारक हैं। इनसे मनुष्यों में श्वास–रोग, फेफड़े का रोग, मानसिक विकार, मस्तिष्क की क्षति, कैंसर, आदि रोग उत्पन्न होते हैं।

जल प्रदूषण

जल ही जीवन है। दुर्भाग्य है कि आज जल ही सर्वाधिक प्रदूषित है। आज सतही जल एवं भूमिगत जल दोनों ही प्रदूषित हैं एवं पीने योग्य नहीं है। जल प्रदूषण के दो स्रोत हैं– प्राकृतिक और कृत्रिम। प्राकृतिक स्रोत में ज्वालामुखी का फटना, जल में वनस्पतियों एवं जन्तुओं का सड़ना, जल में फ्लोराइड एवं आर्सेनिक की मात्रा मृदा अपरदन, भूस्खलन आदि। कृत्रिम कारण क्रिया–कलाप जन्य हैं। औद्योगिक इकाइयों से निकलने वाले कचड़े में क्लोराइड, सल्फाइड, अमोनिकल नाइट्रोजन आदि रासायनिक प्रदूषक तथा शीशा, पारा, तांबा आदि धात्विक पदार्थ शामिल हैं जो जल में मिलकर उसे अपेय बना देते हैं।

ध्वनि प्रदूषण

यह प्रदूषण मनुष्य के मन, मस्तिष्क एवं शरीर को प्रभावित करता है। अत्यधिक शोर, नाच–गाना, अव्यविस्थत भीड़ ये सब ध्वनि प्रदूषक हैं तथा शान्तिपूर्ण एवं सामान्य जीवन के लिए हानिकारक हैं।

Downloaded From www.dietmathura.org

सामाजिक प्रदूषण

विचारक सामाजिक प्रदूषण के कई रूपों की बातें करते हैं जैसे— आर्थिक प्रदूषण, जो निर्धनता एवं बेरोजगारी के कारण उत्पन्न होते हैं। राजनीतिक प्रदूषण के अन्तर्गत राजनीतिक भ्रष्टाचार, युद्ध आदि आते हैं। सामाजिक प्रदूषण के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के सामाजिक अपराध जैसे लूटपाट, डकैती, हत्या, व्यभिचार तथा अन्य प्रकार के नैतिक पतन आदि आते हैं। सामाजिक प्रदूषक जैसे जनसंख्या विस्फोट, निर्धनता, सामाजिक एवं शैक्षिक पिछड़ापन आदि सामाजिक प्रदूषण उत्पन्न करते हैं।

पर्यावरण संरक्षण के प्रति जागरुकता

आज पर्यावरण प्रदूषण विश्व के लिए बहुत बड़ी समस्या है। इस समस्या के समाधान के लिए प्रत्येक आयु के सभी पुरुष—महिला वर्ग में पर्यावरण के प्रति सकारात्मक सोच का होना बहुत जरूरी है। छात्र/छात्राओं, किशोर/किशोरियों में पर्यावरण के प्रति रुचि विकसित करना समय की आवश्यकता है। छात्र/छात्राओं में कार्य करने के प्रबल भावनात्मक संवेग तथा असीम शक्ति होती है। पर्यावरण जागरुकता पर परिवेश का भी महत्वपूर्ण प्रभाव होता है। हमें औद्योगिक प्रतिष्ठानों की चिमनियों तथा स्वचालित वाहनों से निरन्तर निकलने वाले धूम्रयुक्त वातावरण में श्वास लेना पड़ता है। शहरों में पर्यावरण के और भी कई खतरे हैं। अतः शहर में रहने वाले लोग पर्यावरण आपदाओं के सहजता से शिकार हो जाते हैं।

सोचें और बताएं— विद्यालय वातावरण को साफ—सुथरा कैसे रखा जा सकता है ?

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। अतः सामाजिक वातावरण को समझना आवश्यक है। पर्यावरण की शिक्षा बच्चों को दी जाये। पर्यावरण शिक्षा कला एवं विषय सामग्री दोनों ही है। बच्चों को पर्यावरण की संरचना, तत्वों तथा अंगों के बारे में पढ़ाना चाहिए अर्थात पर्यावरण नियन्त्रण, पर्यावरण प्रदूषण को नियन्त्रित करके पारिस्थितिकी में सन्तुलन स्थापित रखना ताकि पर्यावरण न केवल कार्यात्मक रूप में उपयोगी हो अपितु सौन्दर्यबोधात्मक व आनन्ददायक हो। पर्यावरण की शिक्षा देते समय शिक्षक को तीन समस्याओं पर विशेष ध्यान देना होगा—

1. जनसंख्या विस्फोट
2. प्राकृतिक साधनों का ह्रास तथा
3. तकनीकी प्रगति के साथ दिनों— दिन बढ़ता प्रदूषण।

पर्यावरण शिक्षा का स्वरूप अन्तः विषयक है और इसका सार है— कि हम पृथ्वी पर रहने वाले सभी व्यक्तियों पर एक ऐसी प्रतिबद्धता है जिसके अन्तर्गत पानी, हवा, भूमि तथा भौतिक एवं सामाजिक पर्यावरण की बिगड़ती हुई परिस्थिति को रोकना हमारा दायित्व है। पर्यावरण की शिक्षा केवल मानव के सम्पूर्ण पर्यावरण को समझने तक की शिक्षा एवं पास—पड़ोस को सुधारने की विधियों के प्रयोग तक ही सीमित नहीं होना चाहिए अपितु, पर्यावरण की शिक्षा जीवनपर्यन्त चलने वाली शिक्षा होनी चाहिए, जिससे

Downloaded From www.dietmathura.org

कौशल, दृष्टिकोण तथा जीवन मूल्यों में सुधार होता है। पर्यावरण शिक्षा के इन अर्थों के फलस्वरूप शिक्षार्थी को निम्नलिखित तत्वों का ज्ञान होना चाहिए–

1. पर्यावरण की शिक्षा में पर्यावरण को इसकी सम्पूर्ण प्राकृतिक, निर्मित तकनीकी तथा सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, नैतिक एवं सौन्दर्यपरक दृष्टि से देखा जाना चाहिए।
2. यह एक अनवरत तथा जीवनपर्यन्त प्रक्रिया होनी चाहिए जो पाठशाला स्तर से आरम्भ होकर सभी औपचारिक तथा अनौपचारिक अवस्थाओं तक चलती रहे।
3. विकास एवं प्रगति के लिए योजनाओं में पर्यावरण पक्षों पर स्पष्ट विचार करना ।
4. पर्यावरणीय संवेदनशीलता ज्ञान, समस्या, शोधन, कौशल तथा मूल्यों को स्पष्ट करके प्रत्येक अवस्था से सम्बद्ध करना लेकिन ऐसा करते समय अध्येता के आरम्भिक जीवन में अपने समाज की पर्यावरणीय संवेदनशीलता पर विशेष बल देना चाहिए।

इन तत्वों के समावेश से पर्यावरण शिक्षा का सम्पूर्ण कलेवर सामने आ जाता है, जिसका निहित अर्थ पर्यावरण के लिए, पर्यावरण के माध्यम से, पर्यावरण के बारे शिक्षा देना बहुत आवश्यक है। पर्यावरणीय जागरुकता हेतु शिक्षा में निम्नलिखित तथ्यों के अध्ययन की व्यवस्था करनी चाहिए–

1. पर्यावरण का अर्थ, आवश्यकता तथा पर्यावरण नीति।
2. मानव एवं पारिस्थितिकीय प्रणाली।
3. पर्यावरण, स्वास्थ्य एवं स्वास्थ्य विज्ञान।
4. ध्वनि प्रदूषण, वायु प्रदूषण तथा जल प्रदूषण।
5. पर्यावरण एवं जनसंख्या, प्राकृतिक पर्यावरण–झीलें, पहाड़ियाँ तथा पीने योग्य जल ।
6. मानव सभ्यता पर प्रदूषण का प्रभाव, सामाजिक पर्यावरण आदि।
7. वन्य जीव एवं इनका संरक्षण।
8. सौर ऊर्जा एवं इसका प्रयोग ।
9. भारत के प्रदूषित नगर
10. तेल एवं रासायनिक अस्त्रों का पर्यावरण पर प्रभाव।
11. विश्व पृथ्वी दिवस, विश्व पर्यावरण दिवस का आयोजन।
12. पर्यावरण संरक्षण एवं संवर्धन तथा पर्यावरण सन्तुलन आदि।

अन्त में हम कह सकते हैं कि मनुष्य के अस्तित्व को भौतिक, साामजिक तथा मानसिक रूप से उन्नत बनाने के लिए जिन तत्वों की आवश्यकता है, वे तत्व प्रकृति में भरे पड़े हैं परन्तु प्रकृति के तत्व सन्तुलित होकर ही मनुष्य का विकास कर सकते हैं। प्रकृति में एक समतोल तो अपने आप में व्याप्त है। दूसरा मनुष्य ने अपनी मेधा शक्ति के बल पर स्थापित किया है। उसने पहाड़ों को समतल और सन्तुलित करके खेती करना, सागर को पाटकर उस पर बस्तियाँ बनाना, जल और थल के गर्भ से खनिज निकालकर बाहर लाना, विज्ञान, विद्युत तथा आधुनिक प्रौद्योगिकी के सहारे कृषि, उद्योग तथा पशु–पालन में उन्नति करना, प्रौद्योगिकी के प्रयोग से मानव श्रम में कमी करना तथा मानव जीवन को सुखी एवं आरामदेय बनाना। यह सब मानव का अपना परिश्रम है, जिसके कारण प्रकृति को उसने अपने जीवन के लिए उपयोगी बनाने का प्रयास किया है, परन्तु अपने प्रयास में मनुष्य कहाँ तक सफल हुआ और भविष्य में वह और कितना सफल होगा, यह सोचने समझने के बीच ही मनुष्य एक दूसरी दुश्चिन्ता में फँस गया । उन्नत तथा विकसित होने के साथ–साथ हमारी उपलब्धि ही ऐसे दुष्परिणामों को जन्म

Downloaded From www.dietmathura.org

देने लगी कि प्रकृति के सहज समतोल के बिगड़ जाने का खतरा पैदा हो गया और जब प्रकृति का सन्तुलन बिगड़ा तो फिर मानव भला कैसे बचेगा? इसलिए प्रकृति के साथ हमने जो किया आज उस पर पुनर्विचार की आवश्यकता प्रतीत हुई। डॉ0 विद्यानिवास मिश्र के शब्दों में – ''प्रकृति का संरक्षण हम सबका पावन कर्तव्य है। हमें प्रकृति का उतना ही विदोहन करना चाहिए, जिससे उसका सन्तुलन न बिगड़े। यदि मानव अब भी नहीं चेता तो हमारा विनाश निश्चित है।''

अभ्यास प्रश्न

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. पर्यावरण प्रदूषण क्या है? इसे परिभाषित कीजिए।

2. पर्यावरण प्रदूषण के कारणों पर सविस्तार प्रकाश डालिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

3. पर्यावरण प्रदूषण के प्रकार लिखिए।

4.पर्यावरण संरक्षण क्या है ?

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

5. पर्यावरण शिक्षा देते समय शिक्षक को किन मुख्य समस्याओं पर ध्यान देना आवश्यक है?

6. भारत के किन्हीं चार प्रदूषित नगरों के नाम बताइये।

बहुविकल्पीय प्रश्न

7. निम्न में से कौन सा भौतिक प्रदूषण नहीं है–

(क) सामाजिक प्रदूषण (ख) वायु प्रदूषण (ग) जल प्रदूषण (घ) मृदा प्रदूषण

8. स्वच्छ ऊर्जा संसाधन है–

(क) कोयला (ख) पेट्रोलियम (ग) प्राकृतिक गैस (घ) सौर ऊर्जा।

स्वयं करने के लिए

छात्र–छात्राओं को पर्यावरण संरक्षण के प्रति जागरुक व संवेदनशील बनाने के लिए आप क्या करेंगे। क्या कर सकते हैं ?

- ....
- ....
- ....
- ....

Downloaded From www.dietmathura.org

जल संचयन–ऊर्जा व भूमि संरक्षण

जल हमारे लिए मूल्यवान सम्पदा है। इससे हमारी मूलभूत आवश्यकताएँ पूरी होती हैं। जल पृथ्वी पर जीवन का आधार है। जल के बिना पृथ्वी पर जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। वास्तव में सौर मण्डल के सभी ग्रहों में मात्र पृथ्वी पर ही जीवन पाया जाता है, क्योंकि यहां पर जल है। पृथ्वी का लगभग 71 प्रतिशत धरातल पानी से आच्छादित है, परन्तु अलवणीय जल कुल जल का लगभग 3 प्रतिशत ही है।

प्रमुख शिक्षण बिन्दु

- जलः एक संसाधन के रूप में
- जलभण्डारण
  - वैश्विक रूप में।
  - भारत के सन्दर्भ में।
- जल के स्रोत व गुण
- जल संरक्षण व प्रबधन की आवश्यकता
- जल संरक्षण के उपाय
- वर्षा जल संचयन
- जल प्रबन्धन के सरकारी प्रयास
- सुझाव
- ऊर्जा संरक्षण
- भूमि संरक्षण व उपाय

जलः एक संसाधन के रूप में

मुख्यतः अलवण (ताजा) जल का ही अधिक उपयोग किया जाता है। यह मानव कल्याण के लिए मूल प्राकृतिक संसाधन है। हम ताजे जल का उपयोग कृषि तथा उद्योगों के लिए करते हैं। बाँधों के पीछे बने जलाशयों में संग्रहीत वर्षा जल की आपूर्ति गाँवों तथा नगरों को की जाती है। इसका उपयोग सिंचाई तथा जल विद्युत उत्पादक के लिए किया जाता है।

जनंसख्या में तीव्र वृद्धि, औद्योगीकरण, नगरीकरण के समेकित रूप से बढ़ते प्रभावों ने जल की माँग में अभिवृद्धि की है। इसके विपरीत जल की आपूर्ति एक निश्चित सीमा तक ही हो सकती है। इस दुर्लभ संसाधन के आवंटन एवं नियंत्रण पर तनाव, लड़ाई और झगड़े, प्रदेशों और राज्यों के बीच विवाद का विषय बन गये हैं। इतना ही नहीं देश के सभी भागों में जल की मात्रा समान नहीं है। कुछ इलाकों में जल अधिक मात्रा में उपलब्ध है, कुछ में जल का अभाव सदा ही बना रहता है। जल की मात्रा में ऋतुवत परिवर्तन भी होते रहते हैं। वर्षा ऋतु की अल्प अवधि में पर्याप्त जल प्राप्त हो जाता है जबकि वर्ष का शेष भाग प्रायः सूखा ही रहता है। इन परिस्थितियों में जल की माँग और आपूर्ति के साथ–साथ जल संसाधनों के स्रोतों के बीच समन्वय बनाना अनिवार्य हो जाता है तथा जल संरक्षण व संचयन की अवधारणा चिंतकों के लिए आवश्यक हो जाती है।

जल भण्डार

वैश्विक रूप में जल के भण्डार पर अनुमान के अनुसार पृथ्वी के लगभग तीन चौथाई भाग पर जल है। पृथ्वी पर समस्त जल भण्डार का 97.5 प्रतिशत भाग महासागरों में पाया जाता है। महासागरीय जल खारा या लवणीय होने के कारक पेयजल के रूप में प्रयुक्त नहीं होता है। मीठा या पेयजल मात्र 2.5 प्रतिशत है। इसमें भी 1.96 प्रतिशत जल ध्रुवीय एवं उच्चस्थ पर्वतीय भागों में हिमाच्छादित रूप में

Downloaded From www.dietmathura.org

हिमखण्ड के रूप में विद्यमान है। भूमिगत जल की मात्रा समस्त जल का मात्र 0.5 प्रतिशत ही उपलब्ध है। इस प्रकार मानवीय क्रियाकलापों के लिए मात्र 0.0018 प्रतिशत जल ही उपलब्ध रहता है।

भारत विश्व की कुल वर्षा का 4.0 प्रतिशत हिस्सा प्राप्त करता है और प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष जल उपलब्धता के सन्दर्भ में विश्व में इसका 133 वाँ स्थान है। भारत में जलसंसाधन क्षमता 1440 घन किमी है। इसमें भी 69 घन किमी पृष्ठीय जल है तथा भूमिगत जल के रूप में 450 घन किमी है। इस जल के माध्यम से कृषि क्षेत्र में महत्वपूर्ण सुधार हुए हैं। पारंपरिक रूप से भारत में कुल जल संसाधनों का 69 प्रतिशत उपयोग सिंचाई के रूप में, 23 प्रतिशत भाग औद्योगिक इकाइयों के लिए तथा 8 प्रतिशत जल घरेलू उपयोग में लाया जाता है। संयुक्त राष्ट्र विश्व जल विकास रिपोर्ट के ताजा आंकडों के अनुसार– भविष्यवाणी है कि वर्ष 2025 तक भारत का एक बड़ा हिस्सा विश्व के अन्य देशों और क्षेत्रों की तरह जल की नितान्त कमी महसूस करेगा।

जल के स्रोत व गुण

जल के प्रमुख स्रोतों के सन्दर्भ में विचार करने पर अधोलिखित बिन्दुओं से स्पष्ट हो जाता है कि जल मानव को अनेक रूपों में प्राप्त होता है–

- नदियों से प्राप्त जल
- सागरीय भाग से प्राप्त जल
- झीलों व तालाबों से प्राप्त जल
- कुओं से प्राप्त जल
- हैण्डपंप व पम्पसेट से प्राप्त जल

प्रशिक्षुओं से चर्चा करें

- **वह कौन–कौन से स्रोत हैं जिनसे हमें उपयोग हेतु जल की प्राप्ति होती है?**
- **जल का उपयोग किन–किन क्षेत्रों में किया जाता है?**

जल संरक्षण व प्रबन्धन की आवश्यकता

आर्थिक विकास में आधारभूत ढाँचे के विकास को भुलाया नहीं जा सकता क्योंकि राष्ट्र की समग्र प्रगति इसी ढाँचे पर निर्भर रहती है। जल मानव जीवन के लिए महत्वपूर्ण घटक है। भारत कृषि प्रधान देश होने के कारण देश के समग्र विकास हेतु जल अनिवार्य है। इसीलिए जल संसाधनों का अधिकतम विकास एवं प्रभावकारी उपयोग अत्यन्त आवश्यक एवं महत्वपूर्ण हो जाता है।

जल संसाधनों की सीमित आपूर्ति, तेजी से बढ़ती हुई माँग, बढ़ते प्रदूषण तथा इसकी स्थानिक एवं ऋतुवत् असमानता के कारण इसका संरक्षण अनिवार्य हो गया है। जल संसाधनों के संरक्षण के लिए निम्नलिखित कदम आवश्यक हैं–

- जल बचत की तकनीकी तथा विधियों का विकास करना।

Downloaded From **www.dietmathura.org**

- जल को प्रदूषण से बचाना।
- जल संभर विकास, वर्षा जल संचयन, जल के पुनः चक्रण और पुनः उपयोग और लम्बे समय तक जल की आपूर्ति के लिए जल के संयुक्त उपयोग को प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है।

प्रशिक्षुओं से चर्चा करें–

- **जल अधिनियम 1974 प्रदूषण का निवारण और नियंत्रण**
- **पर्यावरण संरक्षण अधिनियम 1986**

जल संरक्षण के उपाय

जल संकट की समस्या कोई ऐसी समस्या नहीं है जो मात्र एक दिन में उत्पन्न हो गई हो, बल्कि धीरे–धीरे उत्पन्न हुई इस समस्या ने आज विकराल रूप धारण कर लिया है। इस समस्या ने आज भारत सहित विश्व के अनेक देशों को बुरी तरह से प्रभावित किया है। जल संकट का अर्थ केवल इतना ही नहीं है कि सतत दोहन के कारण भूजल स्तर लगातार गिर रहा है, बल्कि जल में शामिल होता घातक रासायनिक प्रदूषण, फिजूलखर्ची की आदत जैसे अनेक कारण हैं, जो सभी लोगों को आसानी से प्राप्त हो सकने वाले जल की प्राप्यता के मार्ग में बाधाएँ खड़ी कर रहे हैं। जल संरक्षण के प्रमुख प्रयास अधोलिखित हैं–

वर्षा जल संचयन

भूजल का बड़े पैमाने पर ह्रास होना एक बहुत ही गम्भीर समस्या है। इसे तुरन्त हल करने के उपाय करने की आवश्यकता है। ग्रामीण इलाकों में सिंचाई के लिए या नगरीय इलाकों में घरेलू उपयोग एवं उद्योगों के लिए प्रायः जल की कमी रहती है। इस समस्या को हल करने का एक सुगम उपाय है– वर्षा जल संचयन। यह भौम जल के पुनर्भरण को बढ़ाने की तकनीक है। इस तकनीक में स्थानीय रूप से वर्षा जल को एकत्र करके भूमि जल भण्डारों में संग्रहीत करना शामिल है, जिससे स्थानीय घरेलू माँग को पूरा किया जा सके। वर्षा जल संग्रहण के उद्‌देश्य अधोलिखित हैं–

- जल की निरन्तर माँग को पूरा करना।
- नालियों को रोकने वाले सतही जल प्रवाह को कम करना।
- सड़कों पर जल फैलाव को रोकना।
- भूमिगत जल में वृद्धि करना तथा जल स्तर को ऊँचा उठाना।
- भौम जल प्रदूषण को रोकना।
- भौम जल की गुणवत्ता को सुधारना।
- मृदा अपरदन को कम करना।
- ग्रीष्म ऋतु और सूखे के समय जल की घरेलू आवश्यकताओं को पूरा करने में सहायता करना।

Downloaded From www.dietmathura.org

ऐसी अनेक कम लागत वाली तकनीकें उपलब्ध हैं, जो भौम जल के भण्डारों के पुनर्भरण में सहायता कर सकती हैं। कुछ महत्वपूर्ण तकनीकें उल्लेखनीय हैं–

- छत के वर्षा जल का संग्रहण
- खुदे हुए कुओं का पुनर्भरण
- हैण्डपम्पों का पुनर्भरण
- रिसाव गड्ढों का निर्माण
- खेतों के चारों ओर खाइयों और छोटी–छोटी सरिताओं पर बंधिकाएँ और रोक बाँध बनाना।

वर्षा जल संचयन की तकनीक भारत में कोई नई तकनीक नहीं है। इन तकनीकों का प्रयोग भारत में प्राचीन काल से ही परम्परा रही है, जैसा कि निम्न प्रमाणों से सिद्ध होता हैं–

- नहरों, तालाबों, तटबन्धों और कुओं के रूप में जल संग्रहण होता था।
- पर्वतीय एवं पहाड़ी क्षेत्रों में छतों के वर्षा जल और झरनों के जल को बाँस की नलियों द्वारा दूर–दूर तक ले जाया जाता था।
- शुष्क और अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में भौम जल के भण्डारों के उपयोग के लिए कुएँ और बावड़ियाँ बनायी जाती थीं। राजस्थान में छत के वर्षा जल को कृत्रिम रूप से विकसित किए गऐ कुओं में जमा कर दिया जाता था।
- जल संरक्षण के लिए अखिल भारतीय स्तर पर तालाबों का निर्माण एक लोकप्रिय उपाय था।

जल संरक्षण की परम्परागत पद्धतियाँ

• विरड़ा पद्धति	गुजरात
• मुंडा, काटा, चहन, चुआ पद्धति	उड़ीसा
• कुई या बेरी पद्धति	राजस्थान
• कुंडी पद्धति	राजस्थान
• टांका पद्धति	राजस्थान
• डाके रियान पद्धति	पश्चिमी राजस्थान
• जबो पद्धति	नागालैण्ड

जल प्रबंधन हेतु सरकारी प्रयास

1. राष्ट्रीय जल नीति 1987

सर्वप्रथम वर्ष 1987 में एक राष्ट्रीय जल नीति स्वीकार की गई। इस नीति के अन्तर्गत जल स्रोतों के न्यायोचित दोहन एवं समान वितरण के साथ जल संरक्षण की विभिन्न योजनाएं चलाई गयीं।

- गंगा कार्य योजना (1985)
- यमुना कार्य योजना
- राष्ट्रीय नदी संरक्षण कार्य योजना (1995)
- राष्ट्रीय झील संरक्षण कार्ययोजना

Downloaded From www.dietmathura.org

2. राष्ट्रीय जल नीति 2002

राष्ट्रीय जल संसाधन परिषद् द्वारा 01 अप्रैल 2002 को राष्ट्रीय जल नीति , 2002 को स्वीकृति प्रदान की गई। इस नीति में जल संरक्षण के परम्परागत तरीकों और मांग के प्रबन्धन को महत्वपूर्ण तत्व के रूप में स्वीकार किया गया। साथ ही साथ इसमें पर्याप्त संस्थागत प्रबन्धन के द्वारा जल के पर्यावरण पक्ष और उसकी मात्रा एवं गुणवत्ता के पहलुओं का भी समन्वय किया गया। राष्ट्रीय जल नीति 2002 में नदी जल एवं नदी भूमि सम्बन्धी अतिरिक्त विवादों को निपटाने के लिए नदी बेसिन संगठन गठित करने पर भी बल दिया गया।

3. राष्ट्रीय जल बोर्ड

राष्ट्रीय जल नीति के कार्यान्वयन की प्रगति की समीक्षा करने और समय–समय पर इसकी जानकारी राष्ट्रीय जल संसाधन परिषद् को देने के लिए जल संसाधन मंत्रालय के सचिव की अध्यक्षता में भारत सरकार ने सितम्बर 1990 में राष्ट्रीय जल बोर्ड का गठन किया।

सुझाव

प्राथमिक स्तर से लेकर विश्वविद्यालय तक के शैक्षिक पाठ्यक्रम में अनिवार्य रूप से ऐसे अध्यायों को सम्मिलित किया जाना चाहिए जिससे छात्रों को जल संकट एवं इसके संरक्षण के उपायों के बारे में जानकारी प्राप्त हो सके। इससे छात्र जल संकट के प्रति जागरुक होकर इसे कम करने में सहयोग कर सकें।

- विद्यालय एवं विश्वविद्यालय स्तर पर समय–समय पर जल संकट जैसे ज्वलंत विषयों पर राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय कार्यशाला का आयोजन कराया जाना चाहिए।
- विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में प्रत्येक वर्ष जल संकट को कम करने में सहयोग देने वाले शिक्षकों व विद्यार्थियों को पुरस्कृत किया जाना चाहिए ताकि अन्य लोग भी इस समस्या के प्रति जागरुक हो सकें।
- शैक्षिक रेडियो के माध्यम से समय–समय पर जल संकट को कम करने के सुझावों से सम्बन्धित कार्यक्रमों का प्रसारण किया जाना चाहिए।
- जल संकट के समाधान व भूजल की गुणवत्ता बढ़ाने के लिए वर्षा जल संचयन के प्रयोग को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए क्योंकि यह इस समस्या का बहुत ही सरल उपाय है।
- अधिक से अधिक वृक्षारोपण कराया जाय।
- घरों की छतों पर वर्षा जल एकत्र करने के लिए एक या दो टंकी बनाकर उन्हें मजबूत जाली या फिल्टर कपड़े से ढककर जल संचयन किया जा सकता है।

ऊर्जा संरक्षण

ऊर्जा सभी क्रियाकलापों के लिए आवश्यक है। खाना पकाने में, रोशनी व ताप के लिए, गाड़ियों के संचालन तथा उद्योगों में मशीनों के संचालन में ऊर्जा की आवश्यकता होती है। ऊर्जा का उत्पादन ईंधन खनिजों यथा– कोयला पेट्रोलियम, प्राकृतिक गैस, यूरेनियम से किया जाता है। ऊर्जा संसाधनों को

Downloaded From www.dietmathura.org

परम्परागत और गैर परम्परागत साधनों में वर्गीकृत किया जा सकता है। परम्परागत संसाधनों के अन्तर्गत जहाँ एक ओर लकड़ी, उपले, कोयला, पेट्रोलियम, प्राकृतिक गैस तथा जल विद्युत व ताप विद्युत सम्मिलित किये जाते हैं, वहीं दूसरी ओर गैर पंरपरागत ऊर्जा संसाधनों के अन्तर्गत सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा, भूतापीय ऊर्जा, ज्वारीय ऊर्जा, बायोगैस, परमाणु ऊर्जा प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं। ग्रामीण भारत में लकड़ी व उपले बहुतायत में प्रयोग किये जाते हैं। एक अनुमान के अनुसार ग्रामीण घरों में आवश्यक ऊर्जा का 70 प्रतिशत से अधिक इन दो साधनों से प्राप्त होता है, किन्तु घटते वन क्षेत्रफल के परिणामस्वरूप इनका उपयोग करते जाना व्यावहारिक रूप से कठिन होता जा रहा है।

ऊर्जा के बढ़ते उपयोग ने देश को कोयला, पेट्रोलियम और गैस जैसे जीवाश्मी ईंधनों पर अत्यधिक निर्भर कर दिया है। गैस व तेल की बढ़ती कीमतों तथा इनकी संभाव्य कमी ने भविष्य में ऊर्जा की आपूर्ति की सुरक्षा के प्रति अनिश्चितताएं उत्पन्न कर दी हैं। इसके परिणामस्वरूप राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था पर गम्भीर प्रभाव पड़ते हैं। इतना ही नहीं जीवाश्मी ईंधनों का प्रयोग गम्भीर पर्यावरणीय समस्याएँ भी उत्पन्न करता है। अतः नवीकरणीय ऊर्जा संसाधनों यथा– सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा, ज्वारीय ऊर्जा, जैविक ऊर्जा तथा अवशिष्ट से प्राप्त ऊर्जा की बहुत अधिक आवश्यकता है।

प्रशिक्षुओं से ऊर्जा के प्रमुख संसाधनों पर चर्चा करें–

- **गैरपरम्परागत ऊर्जा संसाधन**
- **परम्परागत ऊर्जा संसाधन**

भारत का ऊर्जा परिदृश्य

भारत अपनी आवश्यकता का 80 फीसदी कच्चा तेल आयात करता है। इसका 12 फीसदी अकेले ही वह ईरान जैसे देश से मँगाता है किन्तु सामरिक अनिश्चितताओं एवं भारी अन्तर्राष्ट्रीय दबावों के चलते ईरान से आयात निरन्तर कम होता जा रहा है। इस घटती आपूर्ति को भरने के लिए भारत ने तुर्कमेनिस्तान से पिछले दिनों एक दीर्घकालिक समझौता किया है। तुर्कमेनिस्तान– अफगानिस्तान पाकिस्तान–भारत के मध्य इस परियोजना के अन्तर्गत पाइप लाइन बिछाई जा रही है। तापी (TAPI) नामक इस परियोजना के तहत वर्ष 2018 से प्रतिदिन भारत तथा पाकिस्तान को 3.8 करोड़ घन मी0 तथा शेष 1.4 करोड़ घनमीटर गैस अफगानिस्तान को दी जायेगी। भारत की ऊर्जा आवश्यकताएं तेजी से बढ़ती जा रही हैं। भारत फिलहाल विश्व का छठवाँ सबसे बड़ा ऊर्जा उपभोक्ता राष्ट्र है। एशिया में चीन और जापान के बाद भारत तेल और गैस का तीसरा सबसे बड़ा उपभोक्ता है। भारत अपनी कुल ऊर्जा जरूरतों का 33.2 प्रतिशत कोयले से, 1.2 प्रतिशत जल विद्युत ऊर्जा, 4.2 प्रतिशत गैस से, 22.4 प्रतिशत तेल से, 0.8 प्रतिशत परमाणु ऊर्जा से, तथा सौर, बायोमास व अन्य स्रोतों से 0.1 प्रतिशत पूर्ति करता है। इस प्रकार भारत सीमित संसाधनों का उपयोग ऊर्जा जरूरतों की पूर्ति के लिए अधिक मात्रा में कर रहा है। यही कारण है कि इसे विदेशी आयातों पर निर्भर रहना पड़ रहा है। गरीबी उन्मूलन व आर्थिक विकास भारत की राष्ट्रीय नीतियों के प्राथमिक लक्ष्य हैं और ऊर्जा विकास की अपरिहार्यता है।

Downloaded From www.dietmathura.org

इसे दृष्टिगत रखते हुए ऊर्जा के नवीन स्रोतों की तलाश के साथ–साथ ऊर्जा सुरक्षा व संरक्षण पर हमें विशेष ध्यान देना होगा।

वर्तमान में भारत विश्व के अल्पतम ऊर्जा दक्ष देशों में गिना जाता है। हमें ऊर्जा के सीमित संसाधनों के न्यायसंगत उपयोग के लिए सावधानीपूर्वक उपागम अपनाना होगा। एक जागरुक नागरिक के रूप में हम यातायात के लिए निजी वाहन की अपेक्षा सार्वजनिक वाहन का उपयोग करके, जब प्रयोग में न हो तो बिजली बन्द करके, विद्युत बचत करने वाले उपकरणों के प्रयोग से हम अपना छोटा सा योगदान कर सकते हैं। आखिरकार ''ऊर्जा की बचत ही ऊर्जा उत्पादन है।''

भूमि संरक्षण

भूमि एक ऐसा संसाधन है, जिसका उपयोग हमारे पूर्वज करते आए हैं तथा भावी पीढ़ी भी इसी भूमि का उपयोग करेगी। हम कपड़े, आवास एवं भोजन की अपनी मूल आवश्यकताओं का 95 प्रतिशत से भी अधिक भूमि से ही प्राप्त करते हैं। बढ़ती जनसंख्या तथा भूमि संसाधन पर तीव्र गति से बढ़ते दबावों के परिणामस्वरूप वन भूमि एवं कृषि योग्य भूमियों का बड़े पैमाने पर विकास हुआ है। इससे इस प्राकृतिक संसाधन के समाप्तप्राय हो जाने का भय पैदा हो गया है। मानवीय क्रियाकलापों के कारण न केवल भूमि का निम्नीकरण हो रहा है अपितु भूमि को नुकसान पहुँचाने वाली प्राकृतिक ताकतों को भी बल मिला है। वर्तमान में भारत में लगभग 13 करोड़, हेक्टेयर भूमि निम्नीकृत है। इसमें से लगभग 28 प्रतिशत भूमि निम्नीकृत वनों के अन्तर्गत है, 56 प्रतिशत क्षेत्र जल अपरदित है तथा शेष क्षेत्र लवणीय व क्षारीयता से ग्रसित है। इतना ही नहीं कुछ मानवीय क्रियाओं यथा– वनोन्मूलन, अति पशुचारण, खनन, दावानल ने भी भूमि के निम्नीकरण में अपनी प्रमुख भूमिकाएँ निभाई हैं। भारतीय भूमियों में कई समस्याएँ हैं जो अधोलिखित हैं–

- मृदा अपरदन
- उर्वरता में कमी
- मरुस्थलीकरण
- जल मग्नता
- लवणीयता व क्षारीयता
- रासायनिक उर्वरकों व कीटानाशकों का अधिक प्रयोग
- बंजर भूमि
- नगरीयकरण व परिवहन विकास
- मानवीय हस्तक्षेप आदि।

प्रशिक्षुओं से उक्त समस्याओं के सम्बन्ध में बिन्दुवार चर्चा– परिचर्चा करें।

Downloaded From www.dietmathura.org

भूमि संरक्षण के उपाय

भूमि की उत्पादकता दीर्घकाल तक स्थिर रखने, उससे अधिक लाभ प्राप्त करने तथा उसके स्थानान्तरण को रोकने के लिए भूमि का संरक्षण आवश्यक है। भूमि के संरक्षण से सम्बन्धित मुख्य बातें निम्न हैं–

- भूमि के कटाव तथा उससे होने वाली क्षति की जानकारी सर्वसामान्य को कराना अतिआवश्यक है।
- भूमि के समुचित उपयोग से भूमि की उर्वरता में ह्रास नहीं होने पाता। जैसे जिस भूमि पर वनों का उत्पादन उपयुक्त हो वहाँ वन लगाने चाहिए। जो भूमि घास अथवा चरागाह के उपयुक्त हो वहाँ उन्हें विकसित किया जाना चाहिए। भूमि उपयोग तभी सार्थक होगा जब इसमें सरकारी, गैर सरकारी एवं निजी संस्थाओं के अतिरिक्त कृषकों का भी सहयोग प्राप्त हो।
- ढलुआ सतहों पर लघु सरिताओं एवं अवनलिका के निर्माण को रोकना भी भूमि संरक्षण हेतु महत्वपूर्ण कदम हैं। इसे रोकने के लिए क्षैतिज जुताई अथवा समोच्च जुताई करके समोच्च पट्टियों के समांतर फसलें बोना चाहिए।
- सीढ़ीनुमा खेत पर कृषि करके तथा ढालों पर बाँध बनाकर अवनलिका का प्रभाव कम किया जा सकता है। इस सन्दर्भ में घासें व वनस्पतियाँ उगाना उल्लेखनीय कदम है।
- मैदानी भागों में भूमि की उर्वरता में ह्रास या भूमि का कटाव अनुचित कृषि तथा निरन्तर पशुचारण के कारण होता है। इसे उचित ढंग से कृषि करके रोका जा सकता है।
- भूमि की उर्वरता बनाये रखने के लिए फसलों का हेर–फेर भी करते रहना चाहिए, जिससे मृदा के सभी तत्वों का समान पोषण हो सके।
- उर्वरता बढ़ाने से कटाव को रोकने के लिए जब कोई भूमि परती छोड़ी जाय तो उसमें आवरण फसलों, जैसे सनई या ढैंचा बो देने से मृदा में हरी खाद का सृजन होता रहता है।
- स्थानान्तरणशील कृषि को साधन उपलब्ध कराकर स्थायी कृषि में परिवर्तित करना चाहिए। कृषि के स्थायित्व से भी संरक्षण में सहायता मिलेगी।
- जल निकासी न होने से भी मृदा को हानि पहुँचती है। जल जमाव, सड़क, रेलवे लाइन, नहरों तथा बाढ़ नियंत्रक तटों के कारण जल निकासी न हो पाने से होता है। अतः सुप्रवाहित नालियों, पुलों के निर्माण से इस समस्या का समाधान किया जा सकता है।

इस प्रकार भूमि एक अमूल्य संसाधन है, जिसका उपयोग विवेकपूर्ण ढंग से किया जाना चाहिए। कृषि कार्यों के लिए उपयुक्त मृदाओं पर ही खेती की जानी चाहिए न कि निर्माण कार्य। मकान, पार्क एवं मनोरंजन स्थलों के लिए बंजर एवं अनुपजाऊ भूमि का उपयोग करना चाहिए। भूमि का उचित चयन कार्य ही सफलता का द्योतक है। इससे हमारी उपजाऊ भूमि भी सुरक्षित रहेगी तथा विकास कार्य भी होते रहेंगे। भूमि संसाधन संरक्षण देश के सामार्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अतः यह समय की माँग है कि इस पहलू पर विशेष ध्यान दिया जाय।

Downloaded From www.dietmathura.org

अभ्यास प्रश्न

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. वर्षा जल संचयन का क्या अभिपाय है? जल संसाधनों के संरक्षण हेतु क्या प्रयास किये जा सकते हैं?

2. गैर परम्परागत ऊर्जा संसाधनों का सोदाहरण वर्णन कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

3. भूमि संरक्षण के 5 उपाय लिखिए।

4.राष्ट्रीय जल नीति– 2002 क्या है ?

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

5. राष्ट्रीय नदी संरक्षण कार्य योजना क्या है ?

6. स्थानान्तरणशील कृषि क्या है?

बहुविकल्पीय उत्तरीय प्रश्न

7. जल संरक्षण की 'विरडा' पद्धति प्रचलित है–

(क) गुजरात (ख) उत्तर प्रदेश (ग) केरल (घ) तमिलनाडु

8. गंगा कार्ययोजना की शुरुआत की गई–

(क) 1970 (ख) 1975 (ग) 1985 (घ) 1990

Downloaded From www.dietmathura.org

भूमण्डलीय ताप वृद्धि (ग्लोबल वार्मिंग) एवं जलवायु परिवर्तन

भूमण्डलीय ताप प्राकृतिक पर्यावरण का एक महत्वपूर्ण भाग है। प्रत्येक स्थान एवं देश की जलवायु तथा तापक्रम को प्रकृति द्वारा निश्चित किया गया है। इस तापक्रम के आधार पर ही उस स्थान में दिन रात की अवधि में परिवर्तन, गर्मी, सर्दी एवं वर्षा का होना निश्चित है। दूसरे शब्दों में, प्रकृति द्वारा पर्यावरण के सफल एवं उपयुक्त संचालन के लिए विश्व के तापक्रम को एक निश्चित एवं महत्वपूर्ण स्वरूप प्रदान किया गया है जिससे प्रकृति की प्रत्येक व्यवस्था सुचारु रूप से संचालित हो सके।

प्रमुख शिक्षण बिन्दु

- भूमण्डलीय ताप वृद्धि का अर्थ, कारण एवं प्रभाव
- विभिन्न प्रकार के शोध कार्य
- जलवायु परिवर्तन के प्रभाव
- जलवायु परिवर्तन पर अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन, वैश्विक प्रयास

परन्तु वर्तमान समय में भूमण्डलीय ताप में वृद्धि होने की चर्चा एक सामान्य तथ्य है जो चिंतन का महत्वपूर्ण विषय है। भूमण्डलीय तापन के कारण आज मानव के साथ–साथ संपूर्ण भूमण्डल पर पर्यावरणीय खतरा मंडरा रहा है। भूमण्डलीय तापन एक ऐसी समस्या है जो पर्यावरण संबंधी प्रायः सभी समस्याओं का सम्मिलित परिणाम है। भूमण्डलीय तापन ही बाद में जलवायु परिवर्तन का कारण बनेगा। इस समस्या की गंभीरता पर संपूर्ण विश्व का ध्यान आकर्षित करते हुए तत्कालीन संयुक्त राष्ट्र महासचिव बॉन की मून ने पेरिस सम्मेलन में कहा था, 'वैश्विक जलवायु की सुरक्षा किसी देश विशेष की समस्या नहीं, यह संपूर्ण विश्व की समस्या है और इसके लिए साधारण नीति की आवश्यकता है।' बॉन की मून ने इसी उद्‌बोधन में एक अन्य स्थान पर कहा कि जलवायु परिवर्तन एक ऐसी समस्या है जो हमारे द्वारा विकास के लिए किए गए तमाम प्रयासों के परिणामों को उलट सकता है।

भूमण्डलीय तापवृद्धि का अर्थ, कारण एवं प्रभाव

सामान्यतः भूमण्डलीय ताप वृद्धि का आशय पृथ्वी के ताप में क्रमशः होने वाली वृद्धि से है। सामान्य रूप से पृथ्वी का तापमान लगभग स्थिर रहता है। यह स्थिति सूर्य से आने वाले उष्मीय विकिरण तथा पृथ्वी से परावर्तित होने वाली उष्मा के मध्य संतुलन से बनती है। सूर्य से पृथ्वी पर आने वाली उष्मा का 6 प्रतिशत अंश वायुमण्डल में परावर्तित हो जाता है। इसी प्रकार इसका 27 प्रतिशत अंश बादलों द्वारा तथा 2 प्रतिशत अंश पृथ्वी की सतह द्वारा परावर्तित हो जाता है। इस प्रकार सौर उष्मा का 35 प्रतिशत अंश सीधे परावर्तित हो जाता है तथा 65 प्रतिशत अंश में से 14 प्रतिशत अंश वायुमण्डलीय गैसों द्वारा अवशोषित हो जाता है। शेष 51 प्रतिशत उष्मा पृथ्वी की सतह को प्राप्त होती है। यह उष्मा धीरे–धीरे अवरक्त विकिरण के रूप में वायुमण्डल में निकल जाती है। पिछले कुछ वर्षों में अवशोषण एवं परावर्तन की इस प्राकृतिक प्रक्रिया में उष्मारोधी गैसों की मात्रा में वृद्धि के कारण असंतुलन की स्थिति बन गयी है। फलस्वरूप पृथ्वी का वातावरण हरित गृह का रूप लेता जा रहा है। कार्बन डाई आक्साइड, मिथेन, क्लोरो फ्लोरो कार्बन, नाइट्रस आक्साइड जैसी गैसें पृथ्वी के वातावरण में ग्रीन हाउस प्रभाव उत्पन्न करती हैं। ये उष्मारोधी गैसें पृथ्वी की सतह के चारों ओर एक घना आवरण

Downloaded From www.dietmathura.org

बना लेती हैं, जिससे पृथ्वी की सतह से होने वाली विकिरण की प्रक्रिया में बाधा उत्पन्न होती है। फलतः पृथ्वी के तापमान में वृद्धि होती है। विभिन्न अध्ययनों द्वारा प्राप्त आँकड़ों के आधार पर ज्ञात होता है कि पिछली सदी के दौरान धरती का औसत तापमान आधा डिग्री सेंटीग्रेड बढ़ गया है। तापमान वृद्धि की वर्तमान दर के अनुसार वर्ष 2100 तक विश्व का तापमान विनाशक स्थिति तक बढ़ सकता है। स्पष्ट है कि आगामी कुछ दशकों में हमें तापमान वृद्धि तथा ओजोन परत क्षरण, दोनों भयावह समस्याओं से जूझना पड़ सकता है।

चर्चा करें– भूमण्डलीय ताप वृद्धि का जलवायु पर क्या प्रभाव पड़ता है?

विभिन्न प्रकार के शोध कार्य

ऐसा माना जाता है कि लगभग 150 वर्ष पूर्व तक भूमण्डलीय तापन जैसी कोई समस्या नहीं थी। सन् 1861 में पहली बार वैज्ञानिक रिडेल ने यह तथ्य उजागर किया कि वायुमण्डल में जल वाष्प तथा कार्बन डाई ऑक्साइड लम्बे तंरग दैर्ध्य के विकिरण को अवशोषित कर वातावरण को अधिक गर्म बनाते हैं। सन् 1896 में स्वीडिश वैज्ञानिक आरहेनियस ने बताया कि कोयले के अंधाधुंध दहन से कार्बन–डाई–ऑक्साइड उत्सर्जन होता है जिससे ग्रीन हाउस प्रभाव में वृद्धि होती है। सन् 1924 में अमेरिकी वैज्ञानिक लोटका ने अनुमान व्यक्त किया कि बढ़ती औद्योगिक गतिविधियों के कारण अगले 500 वर्षों में पृथ्वी के वातावरण में CO_2 की मात्रा दुगनी हो जाएगी। सन् 1949 में एक ब्रिटिश वैज्ञानिक ने बताया कि 1850 से 1940 के मध्य वातावरण में Co_2 की मात्रा में 10 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। सन् 1967 में सर्वप्रथम कम्प्यूटर से प्राप्त आँकड़ों द्वारा ज्ञान हुआ कि पृथ्वी के गर्माहट के लिए कार्बन–डाई–ऑक्साइड मुख्य रूप से जिम्मेदार है।

यूरोप और आस्ट्रेलिया के वैज्ञानिकों ने अपने नवीनतम शोध में वायुमण्डल में मौजूद चार नई गैसों की खोज की है जो ओजोन परत को क्षति पहुँचा रही हैं। चार नई गैसों की पहचान सी0एफ0सी0–112, सी0एफ0सी0–112ए, सी0एफ0सी0–113ए और एच0सी0एफ0सी0–133ए के रूप में की गयी है। वैज्ञानिकों का मानना है कि इन चार गैसों के लिए मानव गतिविधियाँ जिम्मेदार हैं, क्योंकि 1960 के दशक में ये गैसें वायुमण्डल में विद्यमान नहीं थी। सी0एफ0सी0–112 एवं सीएफसी–112ए की उत्पत्ति का कारण इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों के धुलाई में काम आने वाले विलायकों को माना गया है, जबकि कृषि क्षेत्र में व्यापक रूप से प्रयुक्त कीटनाशक 'पायरोथ्रॉयड' के निर्माण के लिए उपयोग मे लाए जाने वाले एग्रोरसायन को CFC -113 ए की उत्पत्ति का कारण माना गया है। HC.FC-133ए और CFC- 113 ए की उत्पत्ति का कारण शीतलक यंत्रों को माना गया है।

जलवायु परिवर्तन के प्रभाव

भूमण्डलीय तापन का सीधा प्रभाव जलवायु पर पड़ेगा जो वातावरण को पूरी तरह से बदल देगा। दुनिया के अनेक हिस्सों में बसंत का आगमन समय से पहले देखा गया है। पेड़–पौधों में समय से पहले फूलों का खिलना, पक्षियों का समय से पहले अण्डा देना आदि इसके उदाहरण हैं। जन्तु एवं

Downloaded From www.dietmathura.org

वनस्पतियाँ गर्म तापमान के कारण ऊँचाई की तरफ बढ़ते हैं। अध्ययनों से यह बात सामने आयी है कि गर्म मौसम की स्थितियों के चलते अनेक पक्षियों/प्रजातियों ने अपना ठिकाना बदल लिया है। ऐसी स्थिति में यदि भूमण्डलीय तापन की रफ्तार तेज रही तो अनेक प्रजातियाँ नष्ट हो सकती हैं।

गर्म तापमान मच्छरों के अनुकूल होता है जिससे ये मलेरिया और डेंगू जैसी बीमारियों को तेजी से फैलाते हैं। तापमान बढ़ने से उन क्षेत्रों में मच्छरों का फैलाव भी होने लगता है जहाँ वे पहले नहीं थे।

दुनिया के अनेक हिस्सों में भारी बर्फबारी, बाढ़, मूसलाधार बारिश अब आम बात हो गयी है। समुद्री चक्रवातों की संख्या में वृद्धि, फ्रांस जैसे देश में 'लू' चलना और आबूधावी में बर्फबारी आदि को जलवायु परिवर्तन के रूप में देखा जा सकता है।

तापमान में बढ़ोत्तरी के कारण पर्वतीय ग्लेशियर तेजी से पिघल रहे हैं। फलतः समुद्री पानी विस्तारित हो रहा है और दुनिया भर के समुद्रों का जल स्तर बढ़ रहा है। इसके कारण समुद्री तटों पर स्थित नगरों के डूबने की संभावना बढ़ रही है। पिछले वर्षों में समुद्री जल स्तर में 10–20 सेंटीमीटर की वृद्धि हुयी है।

पिछले कुछ दशकों से कनाडा, अलास्का, साइबेरिया और अंटार्कटिका के हिस्से औसत से ज्यादा गर्मी से गुजर रहे हैं। विश्व के हिमनद और पर्वतों के ऊपर जमी बर्फ तेजी से पिघल रही है। इसका प्रमाण मोंटाना ग्लेशियर नेशलन पार्क है जिसमें सन् 1010 में जहाँ 150 हिमनद थे वहीं इनकी संख्या घटकर मात्र 30 रह गयी है।

चर्चा करें– भूमण्डलीय तापमान में निरन्तर वृद्धि का हमारे जीवन पर क्या प्रभाव पड़ेगा ?

सुन्दर वन में जहाँ पर गंगा ब्रहमपुत्र से मिलती हैं वहाँ स्थित 'लोहचारा द्वीप' वर्ष 2006 में डूबने वाला विश्व का पहला द्वीप है। इसी के पास स्थित सुपारीडांगा द्वीप भी डूब चुका है। अब सबसे ज्यादा खतरा चोरामारा द्वीप सागरद्वीप पर मंडरा रहा है। आस्ट्रेलिया का ग्रेट बैरियर रीफ दुनिया का सबसे बड़ा जीवंत ढाँचा है, जिसे अंतरिक्ष से भी देखा जा सकता है, लेकिन भूमण्डलीय तापन के कारण इसका अस्तित्व खतरे में आ गया है। मूंगा भित्तियाँ सिर्फ उष्ण क्षेत्रों में पायी जाती हैं क्योंकि यहाँ की जलवायु साल भर समान रहती है। आस्ट्रेलिया के अलावा भारत और दुनिया के अन्य जगहों पर मूंगा भित्तियाँ हैं। इन्हें 'जीवन की नर्सरी' भी कहा जाता है, जो प्रकृति प्रदत्त पर्यावरण संतुलन की सबसे पुरानी प्रणाली है। पृथ्वी पर सबसे पहले जीवन का संचार यहीं पर हुआ। दुनियां भर की मूंगा भित्तियाँ चार हजार प्रकार की मछलियों का घर हैं जिन पर दो से ढाई अरब लोग निर्भर करते हैं। ये पर्यटकों के लिए महत्वपूर्ण हैं तथा मछुआरों के लिए जीवनदायिनी हैं। इसके अलावा मूंगा भित्ति कार्बन सोखने का बहुत ही महत्वपूर्ण जरिया है जो पर्यावरण संतुलन में प्रभावी भूमिका निभाती है। इसे क्षति पहुँचने का मतलब है सीधे मानवता को क्षति पहुंचाना।

Downloaded From **www.dietmathura.org**

भूमण्डलीय तापन के कारण चक्रवातों की संख्या बढ़ेगी। हिन्द महासागर से लेकर प्रशांत महासागर तक, बांग्लादेश और मिस्र जैसे कई देशों और अमेरिका के फ्लोरिडा जैसे निचले प्रांतों को इसका खामियाजा भुगतना पड़ेगा। अमेरिका में साल में औसतन 5–6 चक्रवात आते थे, लेकिन पिछले वर्षों में चक्रवातों की संख्या बढ़ी है।

जलवायु परिवर्तन पर आई पीसीसी रिपोर्ट

संयुक्त राष्ट्र संघ के इंटरगवर्मेंटल पैनल ऑन क्लाइमेट चेंज (IPCC) ने 27 सितम्बर, 2013 की भूमण्डलीय ताप वृद्धि पर नीति निर्धारकों के लिए पांचवीं एसेसमेंट रिपोर्ट का सारांश स्टाकहोम में जारी किया। आई पीसीसी की पूरी रिपोर्ट 30 सितम्बर, 2013 से जारी हुई। रिपोर्ट में पहली बार वैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर दावे के साथ कहा गया है कि पृथ्वी के बढ़ते तापमान और जलवायु परिवर्तन के लिए कोई प्राकृतिक कारण नहीं बल्कि स्वयं मानव की गतिविधियाँ जिम्मेदार हैं। रिपोर्ट में गर्म हवाओं के दौर चलने, बाढ़ और सूखे की घटनाओं की पुनरावृत्ति तेज होने की आशंका जताई गयी है। ग्लेशियरों से बर्फ पिघलने की रफ्तार भी तेज हुई है।

पैनल की इस पांचवी रिपोर्ट में हालात के बद से बदतर होने के पीछे मानव को बहुत–बहुत हद तक (Extremely likely) जिम्मेदार माना गया है, जबकि आईपीसीसी की चौथी रिपोर्ट में इसके लिए मानव को 'बहुत हद तक' (Very likely) जिम्मेदार माना गया था। इस रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 1951 से वर्ष 2010 के बीच तापमान में हुई वृद्धि के लिए मानव की गतिविधियाँ जिम्मेदार हैं। आईपीसीसी की पांचवी रिपोर्ट को 195 देशों के वैज्ञानिकों ने विचार–विमर्श के बाद अंतिम रूप दिया है।

इन्हें भी जानें–

आइपीसीसी की पांचवीं रिपोर्ट की कुछ मुख्य बातें निम्नलिखित हैं–

- भूमण्डलीय ताप वृद्धि के कारण वर्ष 1880 से वर्ष 2012 के बीच पृथ्वी के तापमान में 0.83 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि हुई।
- वर्ष 1951 से वर्ष 2010 के दौरान ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन के कारण तापमान में 0.5 से 1. 3 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि हुई।
- वर्ष 1983 से वर्ष 2012 के तीन दशक पिछले 1400 वर्ष में सबसे गर्म रहे, जबकि उत्तरी गोलार्द्ध इन तीन दशकों में सबसे ज्यादा गर्म रहा।
- पिछले दो दशकों के दौरान अंटार्कटिक एवं उत्तरी गोलार्द्ध के ग्लेशियरों में सबसे अधिक तेजी से बर्फ पिघली है।
- भूमण्डलीय तापवृद्धि के कारण वर्ष 1901 से वर्ष 2010 के बीच समुद्र के जल स्तर में 19 सेमी0 की वृद्धि हुई है जिसके आगामी वर्षों में 26–98 सेमी0 तक पहुँच जाने का अनुमान है।
- वर्ष 1750 के बाद से ग्रीन हाउस गैसों में अत्याधिक वृद्धि हुई है।
- हवा में कार्बन डाई ऑक्साइड और नाइट्रोजन डाई ऑक्साइड की मात्रा में सबसे अधिक वृद्धि हुई है, जिसका कारण खनिज तेल का इस्तेमाल और जमीन का अन्य कार्य में इस्तेमाल करना है।

Downloaded From www.dietmathura.org

- उद्योग क्षेत्र ने पर्यावरण को सबसे अधिक नुकसान पहुँचाया है। वर्ष 2002 से 2011 के बीच सीमेंट उद्योग से लगभग 8.3 गीगाटन कार्बन हर वर्ष वातावरण में उत्सर्जित हुआ।
- ग्रीन हाउस गैसों में कटौती से वर्ष 2100 तक तापमान में वृद्धि को 0.3 डिग्री सेल्सियस पर रोका जा सकता है।

उल्लेखनीय है कि संयुक्त राष्ट्र संघ के नेतृत्व वाली अंतर्राष्ट्रीय वार्ताओं में जलवायु परिवर्तन को नियंत्रित करने के लिए तापमान में वृद्धि का स्तर विश्व में औद्योगिकीकरण की शुरुआत से पूर्व के स्तर से अधिकतम 2 डिग्री सेल्सियस पर रखने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। इसलिए आइपीसीसी की नवीनतम रिपोर्ट के प्रकाश में नए लक्ष्य निर्धारित करने पड़ सकते हैं। भारतीय संदर्भ में रिपोर्ट में कहा गया है कि यहाँ मानसूनी हवाओं के कमजोर पड़ने की संभावना है, लेकिन वर्षा गहन हो सकती है और मानसूनी मौसम लम्बा हो सकता है।

आईपीसीसी की प्रारूप रिपोर्ट

संयुक्त राष्ट्र संघ की संस्था जलवायु परिवर्तन पर अन्तर सरकारी पैनल (IPCC) की प्रारूप रिपोर्ट 17 जनवरी, 2014 को सार्वजनिक हुयी। आईपीसीसी की रिपोर्ट में चेतावनी दी गयी है कि यदि ग्रीन हाउस गैसों के स्तर में वृद्धि की समस्या से निपटने के लिए गम्भीर प्रयास नहीं किए गए और वर्तमान स्थिति यथावत बनी रही तो CO_2 के उत्सर्जन पर नियंत्रण के लिए अत्यधिक मंहगी तकनीक के साथ बहुत बड़े बजट की आवश्यकता होगी। रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2000 से 2010 के दशक में Co_2 के उत्सर्जन में प्रतिवर्ष 2.2 प्रतिशत की दर से वृद्धि हुयी है। यह वृद्धि दर वर्ष 2010–11 में 3 प्रतिशत और 2011–12 में 1.7 प्रतिशत मापी गयी है। उपर्युक्त वृद्धि वर्ष 1970 से 2000 तक की समयावधि में हुई वृद्धि से लगभग दुगनी है। वैश्विक समुदाय से उत्सर्जन में अविलम्ब कटौती करने की मांग करते हुए रिपोर्ट में स्वच्छ ऊर्जा के लिए प्रयास करने का सुझाव दिया गया है।

वैश्विक स्तर पर प्रयास

1985 में संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम, विश्व मौसम विज्ञान संगठन तथा अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक संघ ने भूमण्डलीय ताप वृद्धि पर कुछ सार्थक पहल करने पर सहमति बनाने की अपील की। 1985 में वियना सम्मेलन हुआ और 1987 में मांट्रियाल प्रोटोकाल पर 48 देशों ने हस्ताक्षर किया। 1992 में दूसरा अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन रियोडि जेनेरियो में हुआ। इस सम्मेलन में 150 से अधिक देशों में इस बात पर सहमति बनी कि शांति, विकास तथा पर्यावरण सुरक्षा हेतु सभी देश एक सम्मिलित इकाई हैं और इस प्रयास में देशों को अलग–अलग देखना संभव नहीं है।

1997 में क्योटो (जापान) में ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में कमी हेतु 141 देशों के बीच समझौता हुआ जो 16 फरवरी, 2005 से लागू है। 'क्योटो प्रोटोकाल' में छः गैसों (CO_2, N_20, Ch_4, HFC. PFC, SF_6) के उत्सर्जन में 1990 के स्तर पर 5.2 प्रतिशत कटौती करने पर अमेरिका सहित 38

Downloaded From www.dietmathura.org

विकसित दिशों द्वारा प्रतिबद्धता व्यक्त की गई। क्योटो प्रोटोकाल की अनुसूची–1 (विकसित तथा औद्योगिक देशों हेतु) बाध्यकारी है जबकि अनुसूची–2 (विकासशील देशों हेतु) बाध्यकारी नहीं है।

इंडोनेशिया की राजधानी बाली में दिसम्बर, 2007 में 14 दिवसीय सम्मेलन का आयोजन किया गया था। यूएन फ्रेमवर्क कन्वेन्शन ऑन क्लाइमेट चेंज' (UNFCCC) नामक इस सम्मेलन के अन्त में 129 देशों द्वारा हस्ताक्षरित 'बाली रोडमैप' में स्वीकार किया गया कि भूमण्डलीय तापमान में वृद्धि से निपटने हेतु ग्रीन हाउस गैसों में भारी कटौती करने की जरूरत है जो सभी देशों के सहयोग से अपेक्षित है।

वर्ष 1987 के मांट्रियाल प्रोटोकाल के दो दशकों तथा 1997 के क्योटो प्रोटोकाल के एक दशक की समीक्षा के लिए 31 मार्च से 4 अप्रैल, 2008 के मध्यक बैंकाक में आयोजित सम्मेलन में सहमति बनी कि वर्ष 2015 तक कार्बन उत्सर्जन पर रोक लगाने तथा वर्ष 2050 तक उत्सर्जन में पर्याप्त मात्रा तक कटौती करने की आवश्यकता है। सम्मेलन में यह भी निर्णय लिया गया कि वर्ष 2009 में कोपेनेहेगेन (स्वीडन) में नई संधि का मसौदा रखा जाएगा जो वर्ष 2012 के बाद क्योटो संधि का स्थान लेगा।

संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्वाधान में जलवायु परिवर्तन पर 12 दिवसीय सम्मेलन मैक्सिको के 'कानकुन' शहर में 29 नवम्बर–10 दिसम्बर, 2010 को सम्पन्न हुआ। कानकुन सम्मेलन में 194 देशों ने भाग लिया। इस सम्मेलन में विकसित एवं विकासशील देशों में सहमति बनी कि 2020 तक ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में 20–25 प्रतिशत की कटौती करनी होगी। पहली बार विकसित देशों ने जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए उपायों पर खर्च करने हेतु 100 अरब डॉलर का एक 'हरित जलवायु कोष' बनाने पर सहमति दी।

जलवायु परिवर्तन पर 14 दिवसीय सम्मेलन दक्षिण अफ्रीका में डरबन में 28 नवम्बर से 11 दिसम्बर, 2011 को संपन्न हुआ। जलवायु परिवर्तन के खतरों को कम करने के उद्देश्य से आयोजित इस सम्मेलन में क्योटो प्रोटोकाल, बाली एक्शन प्लान, कानकुन समझौते के क्रियान्वयन पर चर्चा के साथ–साथ ग्रीन हस्तांतरण, निर्धन देशों को आर्थिक सहायता, एवं बाध्यकारी प्रावधानों संबंधी मुद्दों पर विस्तार से चर्चा हुई।

जलवायु परिवर्तन के खतरों से निपटने के मुद्दे पर कतर की राजधानी दोहा में 26 नवम्बर–9 दिसम्बर, 2012 तक सम्मेलन का आयोजन किया गया। तमाम गतिरोधों के बीच दोहा में क्योटो प्रोटोकाल की अवधि बढ़ाने पर सहमति बनी जिसके माध्यम से वर्ष 2020 तक कुछेक अमीर देशों में ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन को नियंत्रित किया जाएगा।

वर्ष 2013 में जलवायु परिवर्तन पर पोलैण्ड की राजधानी वारसा में सम्मेलन का आयोजन किया गया।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि भूमण्डलीय तापन से निपटने के लिए विश्व स्तर पर प्रयास किए जा रहे हैं। ये प्रयास तभी सार्थक होंगे जब विश्व के विकसित एवं विकासशील देश ईमानदारी से प्रयास करेंगे।

Downloaded From **www.dietmathura.org**

अभ्यास प्रश्न

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. भूमण्डलीय ताप वृद्धि क्या है? इसके कारण व परिणामों का वर्णन कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

2. जलवायु परिवर्तन के प्रभाव क्या हैं ?

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

3. ग्रीन हाउस गैसों के रूप में गैसों के नाम लिखिए।

बहुविकल्पीय प्रश्न

4. भूमण्डलीय ताप वृद्धि में सर्वाधिक योगदान किस गैस का है?

(क) ऑक्सीजन (ख) कार्बनडाई ऑक्साइड (ग) हाइड्रोजन (घ) क्लोरीन

स्वयं करने के लिए

मानव की कौन–कौन सी गतिविधियाँ भूमण्डलीय ताप वृद्धि में योगदान देती हैं ?

- ....
- ....
- ....
- ....

Downloaded From www.dietmathura.org

भूमण्डलीकरण / वैश्वीकरण

सामान्य रूप से वैश्वीकरण का अर्थ विश्व की सम्पूर्ण आर्थिक, सामाजिक तथा शैक्षिक गतिविधियों का ज्ञान सभी को होना चाहिए। दूसरे शब्दों में संसार में विकसित एवं विकासशील देश परस्पर मिलकर विकास के पथ पर अग्रसर होते हैं। किसी एक देश की प्रगति में बाधक तत्वों का निराकरण किसी दूसरे देश के सहयोग के माध्यम से किया जाता है। यह वैश्वीकरण का प्रमुख ज्वलन्त उदाहरण है।

प्रमुख शिक्षण बिन्दु

- भूमण्डलीकरण की परिभाषाएँ
- भूमण्डलीकरण के उद्देश्य
- भूमण्डलीकरण की विशेषताएँ
- भूमण्डलीकरण की आवश्यकता
- भूमण्डलीकरण से लाभ
- भूमण्डलीकरण से हानियाँ

जब भारत स्वयं आतंकवाद से ग्रस्त था तब तक वह मात उसकी समस्या थी लेकिन जब शक्तिशाली देश अमेरिका पर 11 सितम्बर 2001 में आतंकवादी हमला हुआ। तब यह समस्या पूरे विश्व की बन गयी। इसी प्रकार सुनामी से पीड़ित व्यक्तियों की सहायता सम्पूर्ण विश्व द्वारा मिलकर की गयी और प्राकृतिक आपदा से सम्पूर्ण विश्व के देशों ने अपनी समस्या मानकर सहायता का कार्य पीड़ित व्यक्तियों को0 पूर्ण रूपेण सहयोग प्रदान कर किया। यही भूमण्डलीकरण सद्भाव का ज्वलन्त उदाहरण है।

धीरे–धीरे संसार के सभी देशों की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं मानवीय समस्याओं का समाधान विश्व के एक मंच पर किया जाने लगा। इस कार्य में हमारी सूचना प्रौद्योगिकी का बड़ा ही महत्वपूर्ण योगदान है। वर्तमान समय में निर्माण कार्य हो या विद्युत उत्पादन की तकनीकी, जिस देश के पास उन्नतिशील अवस्था होती है वह दूसरे देशों के विकास के लिए अपना सहयोग करता है, जैसे भारत के अभियन्ताओं का अमेरिका में प्रशिक्षण प्राप्त करना, तेल उत्पादक देशों का समस्त देशों में पैट्रोलियम पदार्थों का वितरण करना।

ग्लोबलाइजेशन अर्थात ग्लोब जिस प्रकार अपनी धुरी पर घूमता है ठीक उसी प्रकार समस्त पृथ्वी की सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षिक क्रियाएँ एक दूसरे से सम्बन्धित हैं तथा वर्तमान व्यवस्था में कोई भी देश किसी भी समस्या के लिए अकेला नहीं है बल्कि सम्पूर्ण ग्लोब (पृथ्वी) उसके साथ है। दूसरे शब्दों में संसार के मानचित्र में सभी देश एक–दूसरे के विकास के लिए एवं समस्या समाधान के लिए कटिबद्ध हैं। सार्क शिखर सम्मेलन, WHO, UNO, आदि संगठन वैश्वीकरण के उदाहरण हैं।

भूमण्डलीकरण की परिभाषाएँ

भूमण्डलीकरण की कुछ परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं–

1. प्रो0 के0 मनस्वी के अनुसार– ''उदारीकरण, आर्थिक विकास एवं निजीकरण के सामंजस्य की विश्वस्तरीय प्रक्रिया को वैश्वीकरण कहते हैं।

2. प्रो0टी0के0 राघवन के कहा है– ''विश्व की अर्थव्यवस्था का विकास एवं सामाजिक विकास राज्य के नियन्त्रण की सीमितता के अन्तर्गत होता है, तब यह प्रक्रिया वैश्वीकरण कहलाती है।''।

Downloaded From www.dietmathura.org

3. श्रीमती आर0के0शर्मा के अनुसार– ''वैज्ञानिक प्रगति, आर्थिक समानता एवं मानव कल्याण के लिए किये गये विश्वस्तरीय प्रयास भूमण्डलीकरण कहलाता है।''

4. प्रो0एस0के0 दुबे के शब्दों में– ''वैश्वीकरण के अन्तर्गत वे सभी शैक्षिक, सामाजिक एवं आर्थिक क्रियाएँ आती हैं जो मानव कल्याण से सम्बन्धित होती हैं।''

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि वैश्वीकरण मुख्य रूप से मानव के आर्थिक एवं सामाजिक कल्याण से सम्बन्धित प्रक्रियाओं से है जो कि उसके विभिन्न प्रकार के पक्षों से सम्बन्धित हैं।

भूमण्डलीकरण के उद्देश्य

आज के युग में मानव के विकास एवं उच्च जीवन स्तर के लिए भूमण्डलीकरण का क्षेत्र अधिक व्यापक हो गया है। भूमण्डलीकरण के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

1. आर्थिक समानता

वैश्वीकरण का प्रमुख उद्देश्य आर्थिक असमानता को दूर करते हुए विकासशील देशों को विकसित देश बनाना है। संसार के पटल पर किसी भी प्रकार की असमानता नहीं रहनी चाहिए एवं आर्थिक विकास समान रूप से होना चाहिए। इसके अन्तर्गत आर्थिक रूप से पिछड़े देशों को आर्थिक सहायता से पिछड़े देशों का विकास सुनिश्चित करने का प्रयत्न किया जाता है।

2. विकास के लिए नवीन साझेदारी– भूमण्डलीकरण में विकास के लिए विभिन्न प्रकार के संगठनों का सहयोग एवं नवीन सन्धियाँ विकासशील देशों को सर्वत्र विकास के पथ पर अग्रसर कर रही हैं– जिससे विश्व की एक नवीन विकसित संरचना दृष्टिगोचर होती है।

3. गरीबी उन्मूलन– आर्थिक असमानता के कारण गरीबी से जूझते हुए देशों में आर्थिक सुधारों एवं सहायता के माध्यम से गरीबी को समाप्त करना भूमण्डलीकरण का उद्देश्य है। विश्व बैंक द्वारा विभिन्न योजनाओं के लिए गरीब देशों को अनुदान प्रदान करना इसका प्रमुख उदाहरण है।

4. उदारीकरण– उदारीकरण के क्षेत्र में भी वैश्वीकरण का बहुत महत्वपूर्ण योगदान है। सम्पूर्ण विश्व में आर्थिक सुधारों, सामाजिक सुधारों एवं शैक्षिक सुधारों, का श्रेय वैश्वीकरण को जाता है। रूस जैसे देश में आर्थिक सुधारों का श्रेय वैश्वीकरण को ही जाता है।

5. सरकारी नियन्त्रण की सीमितता– भूमण्डलीकरण ने विभिन्न देशों में सरकारी नियन्त्रण को सीमित कर दिया है। अब सरकारी नियन्त्रण उद्योगों की सुरक्षा एवं धन उपलब्ध कराने तक ही सीमित है। दूसरे शब्दों में सरकार का कार्य विभिन्न प्रकार के उद्योग एवं संगठनों का संरक्षण ही माना जाता है। आयात कर एवं निर्यात कर में कमी, इसका प्रमुख उदाहरण है।

6. सन्तुलित विकास– संसार के पटल पर किसी भी क्षेत्र में विकास असन्तुलित रूप से न हो इसके लिए विभिन्न मानकों का निर्धारण भूमण्डलीकरण के द्वारा सम्भव हुआ है।

Downloaded From www.dietmathura.org

अफगानिस्तान के विकास के लिए भारत जैसे देश द्वारा आर्थिक सहायता उपलब्ध कराना भूमण्डलीकरण का उद्देश्य है।

7. विश्वबन्धुत्व की भावना– विश्वबन्धुत्त्व की भावना को जन्म देने का श्रेय भूमण्डलीकरण को जाता है। वर्तमान में किसी समस्या के समाधान के लिए सभी देश एक–दूसरे के साथ होते हैं। यह भूमण्डलीकरण का ही प्रभाव है। गुजरात के भूकम्प में पुनर्निर्माण एवं बचाव कार्य के लिए प्रचुर मात्रा में धन उपलब्ध कराना एवं मानवीय सहायता उपलब्ध कराना इसका एक उदहारण है।

8. अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग– अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की अविरल धारा जो संसार में प्रवाहित हो रही है, यह भूमण्डलीकरण का ही परिणाम है। पाकिस्तान द्वारा गैस पाइप लाइन को अपने क्षेत्र से होकर जाने की अनुमति प्रदान करना भी अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की भावना का उत्कृष्ट उदाहरण है जो कि वैश्वीकरण का ही परिणाम है।

उपरोक्त उद्देश्यों से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि भूमण्डलीकरण के उद्देश्य सार्वभौमिक एवं सर्वव्यापक हैं।

प्रो0एस0के0 दुबे के अनुसार– ''वैश्वीकरण के उद्देश्यों में इतनी सार्वभौमिकता एवं सर्वव्यापकता निहित है कि उनको प्राप्त करने के बाद विश्व संरचना मनोरम एवं सुन्दर होगी जिसकी कल्पना नहीं की जा सकती है।''

भूमण्डलीकरण की विशेषताएँ

भूमण्डलीकरण की अवधारणा एवं उद्देश्यों पर दृष्टिपात किया जाय तो अग्रलिखित विशेषताएँ दृष्टिगत होती हैं–

1. सहयोग पर आधरित– वैश्वीकरण की अवधारणा का अवलोकन करने पर पता चलता है कि वैश्वीकरण सहयोग की भावना पर आधारित है। भूकम्प, बाढ़ तथा सुनामी आदि दैवीय आपदा के समय अन्तर्राष्ट्रीय सहायता सहयोग पर ही आधारित है।

2. विकसित देशों का नियन्त्रण– भूमण्डलीकरण की वर्तमान व्यवस्था में प्रायः यह देखा जाता है कि विकसित देशों का प्रभाव दिन–प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। अमेरिका के बढ़ते वर्चस्व को इसी श्रेणी में रखा जाता है।

3. मानवता का विकास– भूमण्डलीकरण के अन्तर्गत मानवतावादी विचारधारा को अधिक महत्व दिया जाता है। मानव कल्याण के लिए कई अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं को प्रभावशाली बनाया जा रहा है। यूनीसेफ को सशक्त बनाना इसी विशेषता को प्रदर्शित करता है।

Downloaded From www.dietmathura.org

4. तकनीकी शिक्षा का विकास— भूमण्डलीकरण की प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें तकनीकी शिक्षा का विकास तीव्रगति से होता है क्योंकि एक देश को तकनीकी यन्त्रों के माध्यम से ही दूसरे देशों में पहुंचाया जा सकता है।

5. विचार धाराओं का महत्व— विभिन्न प्रकार के राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक आयोजनों में सभी के विचारों को एक मंच पर सुना जाता है और आवश्यकता के अनुसार महत्व भी प्रदान किया जाता है।

भूमण्डलीकरण की आवश्यकता

भूमण्डलीकरण की आवश्यकता क्यों हुई? यह कैसे हुआ? यह एक मुख्य प्रश्न है। जब तक किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं है तब तक उसके जन्म की सम्भावना नहीं होती है। दूसरे शब्दों में ''आवश्यकता ही आविष्कार की जननी है।'' इसी व्यवस्था में निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से भूमण्डलीकरण की आवश्यकता पर विचार करने की आवश्यकता है—

1. सन्तुलन स्थापना के लिए— भूमण्डलीकरण की आवश्यकता विश्व में बढ़ते हुए राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं पर्यावरणीय असन्तुलन को देखते हुए उत्पन्न हुई।

2. पर्यावरण संरक्षण के लिए— विभिन्न देशों के द्वारा किये जा रहे परमाणु परीक्षण एवं प्राकृतिक संसाधनों के दोहन के कारण पर्यावरण में असन्तुलन की स्थिति उत्पन्न हुई, जो मानव समाज के लिए पूर्णतः घातक सिद्ध हो रही है। इस समस्या के समाधान को भूमण्डलीकरण ने किसी सीमा तक खोज निकाला है।

4. स्वास्थ्य सुधार के लिए— बहुत से देश विश्व में इस प्रकार के हैं कि वे अपनी जनता के लिए उचित स्वास्थ्य सुविधा उपलब्ध नहीं करा पाते। ऐसी स्थिति में उनके नागरिक कुपोषण का शिकार हो जाते हैं। इस समस्या के समाधान हेतु सम्पन्न देशों द्वारा उनकी सहायता की जाती है। यह भूमण्डलीकरण के द्वारा सम्भव है। भारत में पल्स पोलियो अभियान इसी का प्रमुख उदाहरण है। विश्व स्वास्थ्य संगठन इस दिशा में अनेक कार्य कर रहा है।

4. सुदृढ़ अर्थव्यवस्था के लिए— आज के युग में कोई देश अपनी अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाना चाहता है तो उसको किसी न किसी विकासशील देश से व्यापार एवं सहयोग की आवश्यकता अवश्य होगी। इस प्रकार की विचारधारा ने वैश्वीकरण को जन्म दिया है।

5. राजनैतिक एवं शैक्षिक विकास के लिए— जब एक ही मंच पर किसी राजनैतिक समस्या का समाधान होता है तो विश्व स्तर के विद्वानों के विचार प्रस्तुत होते हैं। शैक्षिक गोष्ठियों में विद्वानों के विचार प्रस्तुत किये जाते हैं, जिससे सभी देशों की शिक्षा व्यवस्था की जानकारी एक—दूसरे को होती है तथा सभी देश इससे लाभ उठाते हैं।

चर्चा करें— सुदृढ़ अर्थव्यवस्था हेतु भूमण्डलीकरण अनिवार्य क्यों है?

Downloaded From **www.dietmathura.org**

भूमण्डलीकरण से लाभ

वैश्वीकरण के प्रमुख लाभ निम्नलिखित हैं–

1. सन्तुलित पर्यावरण का विकास– मानव द्वारा अपने स्वार्थ के लिए सदैव प्रकृति से छेड़छाड़ की जाती है जिसके फलस्वरूप पर्यावरण प्रदूषण की सम्भावना भी बढ़ती जा रही है लेकिन भूमण्डलीकरण के माध्यम से सभी देशों ने इसे गम्भीर समस्या माना है। किसी एक देश की समस्या न होकर यह सभी देशों की समस्या है। इसके बारे में जब प्रयास शुरू किये गये तो आज विश्व पर्यावरण कुछ बेहतर स्थिति में हैं। पर्यावरण दिवस इस दिशा में उठाया गया एक महत्वपूर्ण प्रयास है।

2. मानवीय दृष्टिकोण का विकास– भूमण्डलीकरण के द्वारा ही विश्व स्तर पर मानवीय दृष्टिकोण विकसित हुआ है। आज किसी भी देश की मानवीय समस्या हो, कुपोषण की हो या भुखमरी की, सभी देश उसका मिलकर सामना करते हैं। ईरान का भूकम्प सिर्फ ईरान की समस्या नहीं बल्कि सभी देशों की समस्या थी और सभी देशों ने ईरान की सहायता की।

3. गरीबी उन्मूलन– सभी विकसित देशों द्वारा मिलकर विकासशील देशों में गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोगों के लिए अपनी पूँजी विनिवेश करके रोजगार उपलब्ध कराया जाता है। इस क्षेत्र में विश्व बैंक की अनुदान प्रणाली सभी देशों के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण सिद्ध हुई है।

4. मानव कल्याण की भावना का विकास– आज विश्व के अन्तर्गत एक ही विचारधारा पर जोर दिया जा रहा है, वह है मानव कल्याण की भावना। प्रत्येक देश में राज्य स्तर एवं केन्द्र स्तर पर मानव अधिकार संगठनों का गठन हुआ है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी मानवाधिकार की चर्चा होती है।

उपरोक्त तथ्यों के अध्ययन से यह पूर्णरूप से विदित होता है कि भूमण्डलीकरण की प्रवृत्ति सम्पूर्ण विश्व के लिए आर्थिक, राजनैतिक, शैक्षिक एवं सामाजिक प्रगति का संदेश लेकर आया है।

चर्चा बिन्दु– भूमण्डलीकरण गरीबी उन्मूलन व सन्तुलित विकास की एक अनिवार्य शर्त है।

भूमण्डलीकरण से हानियाँ

प्रसिद्ध वैज्ञानिक न्यूटन के अनुसार ''प्रत्येक क्रिया के विपरीत प्रतिक्रिया होती है।'' इसी प्रकार भूमण्डलीकरण के लाभ के साथ–साथ कुछ हानियाँ भी होती है जिनको विश्वपटल पर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। भूमण्डलीकरण से होने वाली हानियाँ निम्नलिखित हैं–

1. शक्ति का केन्द्रीकरण– आज विश्व की समस्त सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक शक्ति एक ध्रुवीय हो गयी है। रूस के विखण्डन के बाद अमेरिका का विश्वस्तर पर बढ़ता प्रभाव शक्ति के केन्द्रीकरण को प्रदर्शित करता है। यह विश्व के लिए उचित नहीं माना जा सकता है क्योंकि एकाधिकार की स्थिति सदैव अनुचित निर्णय के लिए ही जानी जाती है।

Downloaded From www.dietmathura.org

2. तानाशाही– आज विश्व स्तर पर अमेरिका एवं उसके सहयोगी देशों का तानाशाही पूर्ण व्यवहार सभी के समक्ष उपस्थित है। प्रत्येक क्षेत्र में अमेरिका एवं उसके सहयोगी देश अपनी मनमानी करके विश्व के सामने अपने सर्वाधिकार का प्रदर्शन कर रहे हैं जो कि भूमण्डलीकरण के लिए उचित नहीं है।

3. निर्भरता– भूमण्डलीकरण के कारण एक देश दूसरे देश पर निर्भर हो चुका है क्योंकि विकास कार्यों को मिलने वाली सहायता, विदेशी पूँजी निवेश एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार नियमों ने अपनी अर्थव्यवस्था को दूसरे देशों पर निर्भर बना दिया है। किसी भी विकासशील देश पर अधिक निर्भर रहना अपनी सम्प्रभुता के लिए हानिकारक होता है।

यदि भूमण्डलीकरण की हानियाँ एवं लाभों पर विचार किया जाए तो यह निष्कर्ष हमारे सामने आता है कि भूमण्डलीकरण से विकास की गति को नयी दिशा मिली है जबकि इससे जो हानियाँ हो रही हैं वह गौण हैं। इन्हें भविष्य में प्रयासों एवं विचार–विमर्श के माध्यम से दूर किया जा सकता है।

अभ्यास प्रश्न

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. भूमण्डलीकरण को परिभाषित कीजिए। इसके उद्देश्य एवं आवश्यकता की चर्चा कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

2. भूमण्डलीकरण के सम्प्रत्यय को स्पष्ट कीजिए। इसके प्रमुख लाभ एवं हानियों को समझाइये।

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

3. भूमण्डलीकरण के मुख्य उद्देश्य लिखिए।

4. भूमण्डलीकरण की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

5. वैश्वीकरण की एक परिभाषा लिखिए।

6. उदारीकरण आर्थिक विकास एवं निजीकरण के सामंजस्य की विश्वस्तरीय प्रक्रिया को वैश्वीकरण कहते हैं।'' उपर्युक्त कथन किसका है।

बहुविकल्पीय उत्तरीय प्रश्न

4. वैश्वीकरण के उद्देश्य हैं–

(क) उदारीकरण (ख) निजीकरण (ग) संतुलित विकास (घ) उपरोक्त सभी।

Downloaded From www.dietmathura.org

लैंगिक असमानता तथा उसका प्रभाव

लैंगिक असमानता से आशय एक लिंग की तुलना में दूसरे लिंग के साथ सामाजिक रूप से अधिक अनुकूल या अधिक प्रतिकूल व्यवहार करने से है। पुल्लिंग और स्त्रीलिंग जैविकीय तथ्य हैं, किन्तु प्रत्येक समाज में इनकी लैंगिक पहचान तथा सामाजिक भूमिकाएँ समाजीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से निर्धारित की जाती हैं। इस प्रकार लैंगिक असमानता, स्त्री–पुरुष विभेद के सामाजिक संगठन का फल या स्त्री–पुरुष के मध्य असमान सम्बन्धों की सामाजिक व्यवस्था है, जो स्त्रियों की हीन भावना की धारणा को प्रचारित करती है।

प्रमुख शिक्षण बिन्दु
- लैंगिक असमानता–अर्थ
- विविध रूप
- भारत में लैंगिक भेदभाव
- कारण व प्रभाव
- शिक्षा द्वारा समझ एवं संवेदनशीलता का विकास

लैंगिक असमानता के रूप

- **मौलिक सुविधा–** मौलिक सुविधाओं व शिक्षा में स्त्रियों के विरूद्ध भेदभाव पूर्ण व्यवहार।
- **असमानता–** विशेष अवसर असमानता
- उच्च शिक्षा तथा व्यावसायिक प्रशिक्षण में लैंगिक पक्षपात।
- **व्यावसायिक असमानता**

  व्यवसाय तथा रोजगार करने में स्त्रियों के प्रति भेदभाव।

- **स्वामित्व असमानता**

  घरेलू भूमि सम्बन्धी। सम्पत्ति सम्बन्धी स्वामित्व के सम्बन्ध में स्त्रियों के विरूद्ध भेदभाव।

- **घरेलू असमानता**

  असन्तुलित श्रम विभाजन जिसमें गृहकार्य स्त्री का तथा बाहर का कार्य पुरुष का माना जाता है।

- **प्रासूतिक असमानता**

  गर्भ में पल रहे बच्चे के लिंग को ज्ञात कर गर्भस्थ मादा शिशु का गर्भपात करना।

- **मर्त्यता असमानता**

  स्त्रियों की उच्च मृत्यु दर।

भारत एक पुरुष प्रधान तथा पितृसत्तात्मक समाज है। यहाँ जीवन के सभी क्षेत्रों में लैंगिक असमानता स्पष्ट रूपों से देखी जा सकती है–

1. लिंग भेदभाव–

भारतीय समाज में पुरुष की प्रधानता तथा स्त्री के अवमूल्यन का स्वरूप अत्यन्त कठोर है। इसके अनुसार पुत्र मुक्तिदाता, बुढ़ापे का सहारा तथा घर की पूँजी समझा जाता है। बच्ची का जन्म एक दायित्व तथा कर्ज के रूप में जाना जाता है। इसीलिए जन्म से ही भेदभाव शुरु हो जाता है।

Downloaded From www.dietmathura.org

इसके लालन–पालन के तौर–तरीके बिल्कुल अलग–अलग हैं। जरा सा बड़ा होते ही उनके क्षेत्र तथा खेल अलग–अलग कर दिये जाते हैं। उनकी शिक्षा, संस्कार तथा भावी जीवन की तैयारी अलग–अलग होती है

2. शिक्षा में असमानता

स्त्रियों में शिक्षा तथा साक्षरता की दर पुरुषों की तुलना में कम है। उच्च शिक्षा की दर तो और भी कम है इसके अतिरिक्त प्राथमिक तथा माध्यमिक स्तर पर लड़कियों की पढ़ाई बीच में छोड़ देने की दर ऊँची है, क्योंकि उन्हें घरेलू कामकाज में सहायता देनी पड़ती है। छोटे भाई– बहनों को देखना पड़ता है। अन्तिम रूप से उनकी शिक्षा का पाठ्यक्रम भी स्त्री जीवन की वास्तविकताओं से कोसों दूर है।

3. रोजगार में असमानता

रोजगार के क्षेत्र में भी स्त्रियाँ अधोलिखित असमानताओं का सामना कर रही हैं–

- गृहस्थी का कार्य जो उनका प्रमुख कार्य है, को अनुत्पादक माना जाता है, वह राष्ट्रीय आय का भाग नहीं होता है।
- घर से बाहर के कामों में वे निम्नलिखित समस्याओं/भेदभावों का सामना कर रही हैं–
  - अधिकांश रोजगार स्त्रियाँ असंगठित कृषि मजदूर हैं। जहाँ उन्हें पुरुषों की तुलना में कम मजदूरी मिलती है तथा वे मौसमी रोजगार के उच्चावचन से पीड़ित हैं।
  - घरेलू उद्योगों में कार्यरत महिलाओं को न तो रोजगार की सुरक्षा है और न ही निश्चित दर पर मजदूरी है। काम के घण्टे अधिक होते हैं और यौन शोषण का भी भय बना रहता है।
  - संगठित उद्योगों में स्त्रियाँ अधिकतर निम्न स्तर पर ही कार्य कर रही हैं क्योंकि बहुत ही कम महिलाएं उनके लिए आवश्यक उच्च/ तकनीकी शिक्षा प्राप्त हैं।
  - वृत्ति समूहों की दृष्टि से अधिकांश स्त्रियाँ शिक्षण कार्यों में संलग्न हैं। चिकित्सा व नर्सिंग के क्षेत्र में भी ये प्रवेश कर चुकी हैं।
  - मॉडलिंग, पत्रकारिता, प्रशासनिक सेवायें, दूरदर्शन, कला आदि जीवन व्यवसाय भी महिलाओं के लिए पनप रहे हैं, किन्तु वे यहाँ भी प्रगति के सोपान के अधिकांशतः निचले पायदानों तक ही काबिज हैं।

उक्त के अतिरिक्त नियोजकों द्वारा महिलाओं को अधिक खर्चीला मानना, कार्यस्थलों पर सहकर्मियों का दृष्टिकोण व व्यवहार तथा स्वयं महिलाओं द्वारा व्यावसायिक हितों की अपेक्षा घरेलू हितों को प्राथमिकता देना रोजगार के सम्बन्ध में उनकी असहायता के अन्य कारण हैं।

4. स्वास्थ्य व पोषण सम्बम्धी असमानता

स्त्रियों में अस्वास्थ्य तथा कुषोपण भारी समस्या है। सामाजिक भेदभाव के चलते बचपन से ही उन्हें कम पौष्टिक भोजन मिलता है और वे स्वयं भी अपने शरीर की रक्षा तथा स्वास्थ्य पर कम ध्यान देती हैं। शारीरिक व्यायामों के प्रति उदासीनता तथा मातृत्व का भार समस्या को और भी जटिल बना देता है। सामाजिक पूर्वाग्रहों के चलते जनसंख्या नियन्त्रण उपायों का अधिकतम प्रयोग महिलाओं पर होने के कारण उनका स्वास्थ्य परिदृश्य और भी भयावह हो रहा है।

Downloaded From **www.dietmathura.org**

5. यौन शोषण व यौन उत्पीड़न

गरीबी, अशिक्षा, मजबूरी धन व अन्य भौतिक उद्देश्यों की पूर्ति के विरोधाभाषी कारणों के चलते स्त्रियाँ विवधि प्रकार से शोषण का शिकार होती हैं। इससे न केवल वैयक्तिक विघटन होता है अपितु समाज का नैतिक पतन भी होता है।

6. दहेज उत्पीड़न

वर्तमान समय में प्रचलित दहेज आधारित ह्रदयविहीन विवाहों के कारण अनेक अभागी स्त्रियाँ जलाई, लांक्षित, अपमानित तथा शोषित की जाती हैं। तथाकथित सामाजिक निन्दा और आर्थिक असुरक्षा उन्हें यह सब सहने के लिए मजबूर कर देती हैं।

7. महिला के प्रति हिंसा

स्त्री आज भी अनेक रूपों में हिंसा की शिकार है। यह मुख्यतः दो रूपों में देखी जा सकती है प्रथम घरेलू हिंसा तथा द्वितीय– घर के बाहर हिंसा। घर में पति तथा उसके परिवारवालों द्वारा उसका शारीरिक व मानसिक उत्पीड़न किया जाता है और घर के बाहर स्त्री के प्रति हिंसा में हिरासत में हिंसा, बलात्कार, यौन उत्पीड़न, आदि मामले प्रमुख हैं। कठोर दण्डात्मक व्यवस्था के अभाव के कारण अपराधी बच निकलते हैं।

शिक्षा द्वारा समझ एवं संवेदनशीलता का विकास

भारत में लैंगिक असमानता की जड़ें काफी गहरी हैं। इस असमानता का इतिहास प्राचीन युग से ही देखा जा सकता है। इसके पश्चात् महिला एवं पुरुषों में सामाजिक तथा आर्थिक स्तर पर यह असमानता बढ़ती ही गई। आजादी के बाद संवैधानिक प्रावधानों तथा सरकारी प्रयासों के बावजूद यह असमानता अभी भी बरकरार है। अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में भारत भले ही तेजी से बढ़ रहे देशों में शामिल हो गया हो और विश्व की दूसरी अर्थव्यवस्था (पी0 पी0 पी0 के0 मामले में) बन गई हो लेकिन यहाँ लैंगिक समानता का स्तर अभी भी दयनीय है। जहाँ तक भारत का प्रश्न है ऐसा लगता है कि लैंगिक भेदभाव हमारी संस्कृति का हिस्सा बन गया है। इसलिए माता–पिता या दूसरे लोग उनके साथ असमान व्यवहार करने के बावजूद समझ नहीं पाते कि वे किसी तरह का भेदभाव कर रहे हैं।

महिलाओं का शिक्षित होना किसी भी समाज के विकास के लिए प्रगति के निर्धारण का मापदण्ड होता है। उनकी शैक्षिक दशा, राजनैतिक एवं सामाजिक निर्णय– निर्माण की प्रक्रिया में उनकी भूमिका एवं उनके सामाजिक अधिकार उनकी स्थिति को जानने के संकेतक हैं। महिला अधिकारिता एवं समानता को लेकर सम्पूर्ण विश्व की जागरुकता एवं प्रयासों के बावजूद साक्षरता के क्षेत्र में महिलाओं की स्थिति दोयम दर्जे पर बनी हुई है। प्रौढ़ निरक्षरों में दो तिहाई तथा विश्व के कुल निरक्षरों में 70 प्रतिशत महिलाएं हैं। भारत में भी महिला एवं पुरुष साक्षरता के बीच काफी अन्तर है। वैधानिक एवं संवैधानिक अधिकारों के साथ–साथ जब तक महिलाओं की शैक्षणिक स्थिति सुदृढ़ नहीं होगी, तब तक महिला अधिकारिता का प्रश्न अधूरा रहेगा।

Downloaded From www.dietmathura.org

शिक्षा का सीधा सम्बन्ध विकास से है, विशेषतः महिलाओं का विकास तब तक सम्भव नहीं जब तक वह शिक्षित न हों, क्योंकि महिला साक्षरता का सकारात्मक सम्बन्ध बाल विकास, स्वास्थ्य के प्रति जागरुकता, निम्न जन्म दर एवं निम्न मृत्यु दर से है। भारत सरकार के योजना आयोग ने महिलाओं के विकास एवं उसकी अधिकारिता को सुदृढ़ता प्रदान करने के लिए मुख्य रूप से तीन बिन्दुओं पर ध्यान केन्द्रित किया है।

- स्वास्थ्य
- शिक्षा
- कल्याण

महिला अधिकारिता व लैंगिक समानता को सुदृढ़ता प्रदान करने के लिए जो क्षेत्र मील का पत्थर सिद्ध हो सकता है वह है– शिक्षा योजना आयोग ने महिला शिक्षा को अपनी नीतियों का केन्द्रबिन्दु बनाया क्योंकि शिक्षा ही वह माध्यम है जो महिलाओं में न केवल आत्मविश्वास जागृत करती है बल्कि अपने अधिकारों के प्रति सजग रहने एवं अन्याय से लड़ने की नैतिक शक्ति भी पैदा करती है। महिला शिक्षा को लेकर स्वतंत्रता के पश्चात् समय–समय पर कई योजनाएँ व समितियाँ बनाई गयी हैं। इसके बावजूद महिला शिक्षा उस गति से अपने लक्ष्यों की ओर नहीं बढ़ पा रही है, जैसा कि अपेक्षित था। महिला शिक्षा को सिर्फ साक्षरता के सन्दर्भ में जोड़ कर देखा जाना सर्वथा अनुचित है। शिक्षा का सम्बन्ध स्वस्थ एवं जागरुक समाज से है। विशेषकर महिलाओं के सन्दर्भ में सरकार द्वारा महिला शिक्षा के क्षेत्र में किये जा रहे प्रयत्नों में स्वैच्छिक संस्थाएँ, स्वयं सेवी संगठन एवं सम्पूर्ण समाज इस प्रयास में साथ दें।

महिलाओं के लिए शैक्षिक उत्थान के विभिन्न चलाये गये कार्यक्रम निम्नलिखित हैं–

- साक्षर भारत अभियान
- महिला समाख्या योजना (1989)
- कस्तूरबा गाँधी बालिका विद्यालय योजना
- राष्ट्रीय महिला आयोग– 1992

प्रशिक्षुओं के समक्ष उक्त महिलाओं संबंधी शैक्षिक व अधिकारिता के कार्यक्रमों एवं अन्य कार्यक्रमों पर चर्चा करायें।

Downloaded From www.dietmathura.org

अभ्यास प्रश्न

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. भारत में लैंगिक असमानता के विभिन्न रूपों का वर्णन कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

2. महिलाओं के प्रति हिंसा के कारण लिखिए।

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

3. महिला समाख्या योजना की शुरुआत कब की गई।

बहुविकल्पीय उत्तरीय प्रश्न

4. राष्ट्रीय महिला आयोग का गठन कब किया गया ?

(क) 1990 (ख) 1992 (ग) 1996 (घ) 2001

स्वयं करने के लिए

विद्यालयों व समाज में लैंगिक असमानता दूर करने हेतु एक शिक्षक के रूप आप अपने स्तर से क्या प्रयास कर सकते हैं ?

- .... ।
- .... ।
- .... ।
- .... ।

Downloaded From www.dietmathura.org

जन संचार माध्यमों की बढ़ती भूमिका और समाज पर इनका बहुआयामी प्रभाव

हम लोग सूचनाक्रांति के युग में रह रहे हैं। जितनी मात्रा में ये सूचनाएं उत्पन्न हो रही हैं उन पर सहसा विश्वास नहीं होता और वे स्वप्न से भी परे हैं। मूलतः यह सूचना प्रौद्योगिकी में क्रांति का परिणाम है। इन सभी प्रौद्योगिकियों का योग सूचना और संचार प्रौद्योगिकी कहलाता है। इसमें जन सामान्य के जीवन के विभिन्न पक्षों को परिवर्तित करने की भारी क्षमता है। ऐसी परिस्थिति में यदि लोगों के कल्याण के लिए सूचनाओं का इस्तेमाल होता है तब इनका प्रसारण आवश्यक है। सूचना प्रसारण का यह कार्य जन संचार द्वारा निष्पादित होता है।

प्रमुख शिक्षण बिन्दु

- जनसंचार का अर्थ
- जनसंचार के साधन
- भारत में संचार परिदृश्य
  - मुद्रित संचार
  - विद्युत संचार
  - आकाशवाणी
  - दूरदर्शन
  - श्रव्य–दृश्य संचार
- समाज पर बहुआयामी प्रभाव

जनसंचार का अर्थ

बोलचाल में जन संचार का अर्थ है रेडियो, टेलीविजन, मुद्रित सामग्री और फिल्म जैसे साधन जिनका काम अधिक से अधिक लोगों तक सूचना पहुँचाना है। 'जन' शब्द का प्रयोग यहाँ किसी समुदाय, समूह अथवा देश के अधिकांश लोगों के अर्थ में किया गया है, न कि किसी खास वर्ग या श्रेणी के लोगों के लिए। जन का यह अभिप्राय बताता है कि जन संचार दूसरी तरह के संचारों से अलग है क्योंकि यह कुछ व्यक्तियों, अथवा आबादी के किसी विशेष भाग को नहीं, बल्कि आबादी के सभी भागों को सम्बोधित करता है। इसे जनसंचार इसलिए भी कहते हैं, क्योंकि इन माध्यमों से जनता के लिए एक साथ सूचनाएं प्रसारित होती हैं।

हाल में इस विषय की विवेचना में दो शब्द– जन संचार और जन संवाद (मास मीडिया और मास कॅम्यूनिकेशन) का व्यवहार साथ–साथ हो रहा है। कुछ विद्वानों ने इन दोनों के बीच भेद भी किया है। जन संवाद वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा सूचना काफी लोगों तक पहुँचायी जाती है, जबकि जन संचार इन सूचनाओं को पहुँचाने का साधन है। संदेश और सूचना को भेजने वालों से श्रोताओं तक हस्तांतरण की प्रक्रिया जन संवाद के अन्तर्गत आती है। यह हस्तांरण जन संचार की तकनीकों यथा समाचार–पत्रों, पत्रिकाओं, टेलीविजन कार्यक्रमों, फिल्मों, कम्प्यूटर के जालों आदि द्वारा होता है। सूचना भेजने वाला व्यक्ति किसी बड़े संचार संगठन अथवा सरकारी एजेंसियों से जुड़ा हो सकता है, संदेश सार्वजनिक होते हैं और दर्शकों की संख्या बहुत ज्यादा होती है। प्रस्तुत विवेचन में इन दोनों शब्दों– जनसंचार तथा जन संवाद के बीच इस सूक्ष्म अन्तर पर ध्यान नहीं दिया गया है। हमने यहाँ केवल जन संचार शब्द का प्रयोग किया है जो अधिक लोकप्रिय है और हमारे उद्देश्यों की पूर्ति करता है।

Downloaded From www.dietmathura.org

जनसंचार के साधन

सार्वजनिक संदेश के उत्पादन और प्रसारण के संगठित स्वरूप को जन संचार कहा जाता है जिसके अन्तर्गत टेलीविजन, रेडियो, फिल्म, समाचार–पत्र तथा पत्रिकाएं सम्मिलित हैं। संचार के इन साधनों को तीन प्रमुख श्रेणियों में विभक्त किया गया है– मुद्रित संचार, विद्युत संचार तथा श्रव्य–दृश्य संचार।

भारत में संचार परिदृश्य (बढ़ती भूमिका)

भारत महान जन संवादियों का देश रहा है। विविधताओं वाले इस देश में एक साथ बड़ी संख्या में लोगों के बीच संदेश पहुँचाना एक समस्या रही है। जब टेलीविजन अथवा इंटरनेट जैसे संचार के आधुनिक माध्यम उपलब्ध नहीं थे, लोग पारस्परिक संवाद के द्वारा ही सूचनाएं प्राप्त करते थे। इन स्रोतों में धार्मिक उपदेशक, मानव संवादवाहक, व्यापारी, यात्री तथा दूसरे पारंपरिक माध्यम प्रमुख थे। इस प्रकार यद्यपि लम्बे समय से सभी प्रकार की संचार रणनीतियों, मॉडलों तथा प्रयोगों का इस्तेमाल होता रहा है तथापि संचार के नए साधनों के उपलब्ध हो जाने से परंपरागत सूचना स्रोतों की लोकप्रियता कम हुई है।

मुद्रित संचार

जैसा कि शब्द से ही स्पष्ट है, मुद्रित संचार के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के समाचार पत्र, पत्रिकाएं शामिल होती हैं। भारत में समाचार–पत्रों के रजिस्ट्रार की वर्ष 2000 की वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार भारत में कुल प्रकाशित होने वाले समाचार–पत्रों तथा पत्रिकाओं की संख्या 49,145 थी जो वर्ष 1999 की प्रकाशित संख्या 46,655 से 5.34 प्रतिशत अधिक थी। इनमें 5,364 दैनिक, 339 अर्द्ध साप्ताहिक, 17,749 साप्ताहिक, 6,553 पाक्षिक, 13, 616 मासिक तथा 3,425 त्रैमासिक थे। वर्ष 2000 के दौरान 101 भाषाओं और बोलियों में समाचार–पत्रों का प्रकाशन हुआ था। सबसे अधिक समाचार–पत्र हिन्दी (19,685) में और इसके बाद अंग्रेजी (7,175) और उर्दू (2,848) में प्रकाशित हुए थे। कश्मीरी को छोड़कर सभी प्रमुख भाषाओं में दैनिक समाचार–पत्र प्रकाशित हुए थे। सभी राज्यों और केन्द्र–शासित प्रदेशों से समाचार–पत्रों का प्रकाशन हो रहा है। मुम्बई से सन् 1822 से प्रकाशित होने वाला गुजराती दैनिक 'बांबे समाचार' सबसे पुराना समाचार पत्र है। समाचार–पत्रों के रजिस्ट्रार की रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2000 के दौरान भारतीय समाचार–पत्रों का कुल परिसंचरण 12,69,63,763 प्रतियांक था।

इसे भी जानें

आधुनिक मुद्रित संचार को कई माध्यमों की स्थापना द्वारा मजबूत बनाया गया है। सन् 1956 में समाचार–पत्रों को अखबारी कागज के आवंटन के लिए 'द रजिस्ट्रार ऑफ न्यूज–पेपर्स इन इंडिया' (आर0एन0आई0) की स्थापना हुई थी। सभी समाचार–पत्रों एवं पत्रिकाओं को आर0एन0आई0 द्वारा पंजीकृत होना पड़ता है।

Downloaded From www.dietmathura.org

समाचार–पत्रों के लिए समाचार एकत्र करने तथा उसे पहुँचाने के लिए 'प्रेस ट्रस्ट ऑफ इंडिया' और 'युनाइटेड न्यूज ऑफ इंडिया' जैसी समाचार एजेंसिंया हैं। प्रेस की स्वतंत्रता को सुरक्षित रखने तथा समाचार–पत्रों एवं समाचार एजेंसियों के स्तर को सुधारने के लिए 'प्रेस काउंसिल ऑफ इंडिया' की स्थापना की गई है। भारत सरकार ने नीतियों, कार्यक्रमों तथा विभिन्न क्रियाकलापों से संबंधित सूचनाओं के प्रसार के लिए अपनी संस्थाएं 'प्रेस सूचना ब्यूरों तथा 'प्रकाशन विभाग' बना रखे हैं।

विद्युत संचार

भारत में रेडियो एवं टेलीविजन विद्युत संचार के दो प्रमुख साधन हैं।

आकाशवाणी

भारत में वर्ष 1927 में ही निजी स्वामित्व वाले ट्रांसमीटरों द्वारा प्रसारण प्रारम्भ हो गया था। वर्ष 1930 में सरकार ने इन ट्रांसमीटरों को अपने हाथ में लिया और 'इंडियन ब्राडकास्टिंग सर्विस' के नाम से प्रसारण होने लगा। वर्ष 1936 में इसका नाम बदलकर 'ऑल इंडिया रेडियो' किया गया और पुनः वर्ष 1957 से यह 'आकाशवाणी' के नाम से जाना जाता है। अब 100 से अधिक एफ0एम0 (फ्रिक्वेंसी मॉड्यूलेशन) रेडियो स्टेशन देश में स्थापित हो चुके हैं।

दूरदर्शन (डी0डी0)

भारत में राष्ट्रीय टेलीविजन दूरदर्शन, विश्व के सबसे बड़े स्थलीय नेटवर्कों में से एक है। प्रयोग के तौर पर टेलीविजन का प्रारम्भ दिल्ली से एक स्टेशन के साथ 15 सितम्बर, 1959 में हुआ था। सामाजिक शिक्षा प्रदान करने के माध्यम के रूप में इसका प्रयोग होता था। हिन्दी में समाचार बुलेटिन के साथ नियमित सेवा का प्रारम्भ 15 अगस्त, 1965 को हुआ। देश का दूसरा टेलीविजन केन्द्र वर्ष 1972 में मुम्बई में खोला गया। इसके बाद श्रीनगर और अमृतसर में वर्ष 1973 तथा कोलकाता, चेन्नई और लखनऊ में वर्ष 1975 में टेलीविजन केन्द्र स्थापित हुए 1 अप्रैल 1976 में दूरदर्शन को ऑल इंडिया रेडियो से अलग कर एक स्वतंत्र विभाग बना दिया गया। दृश्य अवलोकन के अतिरिक्त विकल्प उपलब्ध करवाने के लिए दिल्ली में वर्ष 1984 में एक और चैनल जोड़ा गया।

विभिन्न दूरदर्शन केन्द्रों द्वारा अलग–अलग भाषाओं में शैक्षणिक टेलीविजन कार्यक्रम प्रसारित होते हैं मानव संसाधन विकास मंत्रालय के सहयोग और इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के माध्यम से दूरदर्शन का एक विशेष चैनल डी0डी0 ज्ञानदर्शन 26 जनवरी, 2000 से प्रारम्भ किया गया है। इसके अतिरिक्त पूरे देश में लगभग सौ से अधिक निजी टी0वी0 चैनल और केबल नेटवर्क हैं जो हिन्दी एवं अंग्रेजी के अतिरिक्त क्षेत्रीय भाषाओं में कार्यक्रम प्रसारित करते हैं।

श्रव्य–दृश्य संचार

भारत में जनंसचार का सबसे लोकप्रिय माध्यम फिल्में रही हैं। हमारे यहाँ सन् 1912–13 से ही फिल्में बनायी जा रही हैं। धूनजीराज गोविन्द फाल्के ने वर्ष 1913 में 'राजा हरिश्चन्द्र' नाम की फिल्म

Downloaded From www.dietmathura.org

बनाई। सवाक चित्र ने वर्ष 1931 में मूक फिल्मों का स्थान लिया जब आर्देशिर ईरानी ने 'आलमआरा' प्रस्तुत की। फीचर फिल्म के वार्षिक उत्पादन में भारत दुनिया में अग्रणी है।

भारत सरकार ने वर्ष 1948 में पुनरूत्थानशील स्वतंत्र भारत की उपलब्धियों को अंकित, प्रचारित और सुरक्षित रखने के लिए फिल्म डिवीजन की स्थापना की थी। यह जनता और सरकार के बीच सक्रिय कड़ी रहा है। फिल्म डिवीजन आज समाचार पत्रिकाओं तथा वृत्त–चित्रों के उत्पादन और वितरण की सबसे बड़ी राष्ट्रीय एजेन्सी है।

समाज पर बहुआयामी प्रभाव

किसी भी समाज पर जनसंचार के साधनों जैसे रेडियो, समाचार पत्र, पत्रिकाएं, फिल्म या सिनेमा, रिकार्ड और वीडियो का गहरा प्रभाव पड़ता है। जनसंचार के ये साधन विशेष रूप से फिल्में, रेडियो टी0वी0 एक साथ राष्ट्रव्यापी श्रोताओं को संदेश पहुँचाते हैं। इन साधनों ने सभी सीमाओं को समाप्त कर दिया है, जैसे भारतीय नेशनल नेटवर्क पर प्रसारित होने वाले धारावाहिक जैसे– 'रामायण', महाभारत, आदि का जनमानस पर गहरा प्रभाव पड़ा है। वास्तव में, भारतीय समाज पर जनसंचार माध्यमों का वर्तमान में सकारात्मक एवं नकारात्मक, दोनों रूपों में प्रभाव पड़ा है परन्तु इससे भी इंकार नहीं किया जा सकता कि ये जनसंचार माध्यम सामाजिक परिवर्तन का एक सशक्त माध्यम हैं।

भारतीय समाज पर जनसंचार माध्यमों के बहुआयामी प्रभाव का आकलन करने के लिए हमें समाज को मूल रूप से ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों के आधार पर देखना जरूरी है। जैसा कि हम जानते हैं कि भारत गाँवों का देश है जहाँ पर भारत की विशाल आबादी निवास करती है, परन्तु ग्रामीण क्षेत्रों में विभिन्नता एवं विविधता देखने को मिलती है। रेडियो का प्रभाव हमें ग्रामीण क्षेत्रों में अत्यधिक देखने को मिलता है। ग्रामीण क्षेत्रों में रेडियो का एक सशक्त माध्यम के रूप में निश्चित रूप से हमेशा से सकारात्मक प्रभाव पड़ा है। रेडियो की यह विशेषता रही है कि यह हमेशा से रोचकतापूर्ण एवं ज्ञानवर्धक कार्यक्रम उपलब्ध कराता रहा है जिससे ग्रामीण लोगों को सभी प्रकार की राजनीतिक, सांस्कृतिक , शैक्षिक, सामाजिक एवं स्वास्थ्य सम्बन्धी जानकारी मिलती रही है। इसके साथ ही रेडियो कृषि आधारित विभिन्न प्रकार के ज्ञानवर्धक विषय–वस्तु आधारित प्रसारण करता रहा है। ये सभी तथ्य यह स्पष्ट करते हैं कि रेडियो का प्रभाव ग्रामीण जनता पर जीवन के प्रत्येक पहलुओं पर व चेतना का विकास करने पर बल देता है।

रेडियो की महत्ता को देखते हुए स्वास्थ्य विभाग ने उ0प्र0 के दूरदराज आंचलों में रेडियो के माध्यम से पहुंचने की तैयारी की है। 'सिफ्सा' के तत्त्वाधान में चलने वाले हौसला कार्यक्रम 'चलो गाँव की ओर' के तहत 'सुनहरे सपने– संवरती राहें' ऐसा ही महत्वपूर्ण प्रसारण है।

महिला एवं बाल स्वास्थ्य योजनाओं को प्रदेश के ज्यादा से ज्यादा ग्रामीण क्षेत्रों तक पहुंचाने के लिए स्वास्थ्य विभाग ने अब ए आई आर (आकाशवाणी) का सहारा लिया है। राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन (एन0आर0एच0एम0) के निदेशक अमित घोष के अनुसार सिफ्सा के सहयोग से चलने वाले इस कार्यक्रम में 'सुनहरे सपने संवरती राहें' नाम से धारावाहिक तैयार किए गए है। एक अक्टूबर से हर

Downloaded From www.dietmathura.org

बुधवार को दोपहर सवा एक बजे से इसका प्रसारण किया जाएगा। आधे घंटे के इस कार्यक्रम में ग्रामीण अंचलों से जुड़ी छोटी–छोटी कहानियों के माध्यम से गर्भवती महिलाओं को दी जाने वाली स्वास्थ्य सुविधाओं की जानकारी दी जाएगी। यह तथ्य ग्रामीण जनमानस पर रेडियो के प्रभाव को स्पष्ट करता है।

दूसरी ओर ग्रामीण क्षेत्रों में समाचार पत्र एवं टेलीविजन का उपयोग सीमित रूप में पाया जाता है। यह एक स्वभाविक तथ्य है कि गाँव शहर से कटा हुआ रहता है और कुछ तो रिमोट क्षेत्रों से जुड़े होते हैं, जहाँ पर समाचार–पत्र एवं टी0वी0 जैसे जनसंचार माध्यमों का पहुँचना अपेक्षाकृत कठिन है। फिर भी आज लगभग 50–60 प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्रों में इन दोनों माध्यमों का प्रयोग देखा जा सकता है। ग्रामीण अंचल की चाय की दुकानों पर समाचार पत्र की एक प्रति कई लोगों द्वारा पढ़ी जाती है और लोगों के बीच राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय खबरों पर वाद–विवाद भी होते देखा जा सकता है। यदि किसी गाँव में एक या दो टेलीविजन हों तो वह सारे गाँव का मनोरंजन और मार्गदर्शन करने का कार्य करता है। उदाहरण के तौर पर अगर हम रामायण एवं महाभारत जैसे धारावाहिकों की बात करें तो हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि गांव के अधिकतर व्यक्तियों के लिए एक दैनिकचर्या बन गयी थी और जिसे देखना अनिवार्य समझा जाता था। अतः हम कह सकते हैं कि ग्रामीण क्षेत्रों में इन माध्यमों का हमेशा से सकारात्मक प्रभाव पड़ा है तथा ज्ञानवर्धक एवं मनोरंजक जानकारी के साथ ग्रामवासियों के मार्गदर्शन में अभिन्न भूमिका का निर्वाह कर साामजिक परिवर्तन एवं प्रत्येक स्तर पर चेतना जागृत कर सहयोग दिया है।

टेलीविजन का प्रभाव ग्रामीण एवं शहरी, दोनों क्षेत्रों में अधिक दिखाई पड़ता हैं टेलीविजन के माध्यम से दुनिया के विभिन्न देशों में होने वाली विभिन्न घटनाओं, सांस्कृतिक गतिविधियों, राजनीतिक उठा–पटक एवं खेलकूद के विषय में तत्काल व सटीक जानकारी मिलती है जो मनोरंजक होने के साथ–साथ ज्ञानवर्द्धक भी होते हैं।

प्रिंट मीडिया ने आजादी के पहले से ही सुधार आन्दोलन के प्रसार तथा राष्ट्रवादी आन्दोलन में अपनी प्रमुख भूमिका के माध्यम से समाज को प्रभावित किया है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद प्रिंट मीडिया ने राष्ट्र निर्माण के कार्य में अपनी भागीदारी निभाने की भूमिका को बराबर जारी रखा और इसके लिए वह विकासात्मक मुद्दों को उठाता रहा और बहुत बड़े भाग के लोगों की आवाज को बुलन्द करता रहा है।

अतः यह कहा जा सकता है कि जन संचार आज हमारे व्यक्तिगत एवं सार्वजनिक जीवन का एक आवश्यक अंग बन गया है। यह अनेक नियंत्रणों के अन्तर्गत रहकर अनेक प्रकार से बहुआयामी रूप में हमारे जीवन को प्रभावित कर रहा है।

Downloaded From **www.dietmathura.org**

अभ्यास प्रश्न

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. भारत में जनसंचार की भूमिका का वर्णन कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

2. जनसंचार साधनों का समाज पर क्या प्रभाव पड़ता है ?

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

3. मुद्रित संचार क्या है ?

बहुविकल्पीय उत्तरीय प्रश्न

4. भारत की पहली सवाक फिल्म थी–

(क) राजा हरिश्चन्द्र (ख) आलम आरा (ग) पुंडलिक (घ) कर्ज

5. डी0डी0 ज्ञानदर्शन की शुरूआत की गई–

(क) 2000 (ख) 2001 (ग) 2002 (घ) 2004

Downloaded From www.dietmathura.org

शिक्षा एवं मानवीय मूल्य

वे अमूर्त अवधारणाएँ या मानक, जिनके आधार पर समाज में भावनाओं, विचारों, कार्यों, गुणों, वस्तुओं, व्यक्तियों, समूहों, लक्ष्यों, साधनों आदि का मूल्यांकन वांक्षनीय या अवांक्षनीय, अधिक प्रशंसनीय या कम प्रशंसनीय, अधिक सही या कम सही आदि के रूप में किया जाता है। 'मूल्य' कहलाते हैं।

प्रत्येक समाज अपने मूल्यों के प्रति अत्यधिक संवेदनशील होता है क्योंकि ये अत्यधिक महत्वपूर्ण होते हैं। ये मूल्य सामाजिक सन्तुलन बनाए रखते हैं, व्यवहारों में एकरूपता लाते हैं, जीवन के मनोवैज्ञानिक आधार निश्चित करते हैं, निश्चित व्यवहार प्रदान करते हैं। इतना ही नहीं ये भूमिका का निर्धारण करते हैं तथा व्यक्ति के व्यवहार और समाजिक परिस्थितियों के मूल्यांकन को सम्भव बनाते हैं। इन्हीं के आधार पर ही सामाजिक जीवन की शैली का निर्धारण तथा अन्तक्रियाएँ सम्भव होती हैं।

प्रमुख शिक्षण बिन्दु

- शिक्षा एवं मानवीय मूल्य
  - अर्थ व परिभाषा
  - मूल्यों का वर्गीकरण
  - मूल्यपरक शिक्षा की आवश्यकता एवं उद्देश्य
- जीवन मूल्य
- मूल्यपरक शिक्षा व मार्गदर्शक सिद्धांत
- मूल्यों के विकास में भूमिकाएं
  - परिवार की
  - समाज की
  - विद्यालय की
- राष्ट्रीय एकता व अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव की शिक्षा
- लोकतांत्रिक, वैज्ञानिक एवं तकनीकी दृष्टिकोण का विकास

मूल्य का अर्थ व परिभाषा

Value (वैल्यू) शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के शब्द 'Valere' शब्द से हुई है जो किसी वस्तु की कीमत या उपयोगिता को व्यक्त करता है। भारतीय धर्मग्रन्थों में भी मूल्य के स्थान पर 'शील' शब्द का बारम्बार प्रयोग किया गया है। दूसरे शब्दों में वस्तुतः मूल्य एक प्रकार का मानक है। विभिन्न विद्वानों ने मूल्य को अपने–अपने तरीके से परिभाषित करने का प्रयास किया है। प्रमुख प्रयास अधोलिखित हैं–

''मूल्य वह है जो मानव इच्छाओं की तुष्टि कर सके।''– **अर्बन**

''मूल्य वे आदर्श, विश्वास या प्रतिमान हैं जिनको एक समाज या समाज के अधिकांश सदस्यों ने ग्रहण कर लिया है।''– **काने**

''मूल्य किसी सामाजिक व्यवस्था में कई अनुस्थापनों में से किसी एक अनुस्थापन को चुनने का एक मानक है।''– **पारसन्स**

उपरोक्त एवं अन्य विद्वानों द्वारा समय–समय पर दी गयी मूल्य की परिभाषाओं के अध्ययन एवं विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि मूल्य मानवीय व्यवहार के निर्धारक व निर्देशक सिद्धान्त तथा मानक हैं जो सामाजिक व्यवस्था के विभिन्न विकल्पों में से चयनित व्यवस्था के अनुरूप कार्य करने को दिशा निर्देश प्रदान करते हैं।

Downloaded From **www.dietmathura.org**

मूल्यों का वर्गीकरण

मानव मूल्य एक ऐसी आचार संहिता हैं जिसे अपने संस्कारों तथा सामाजिक पर्यावरण के माध्यम से अपनाकर मनुष्य अपने निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु अपनी जीवन शैली का निर्धारण करता है, अपने व्यक्तित्व का विकास करता है। ये मानव मूल्य न केवल व्यक्ति के अन्तः करण द्वारा नियन्त्रित होते हैं अपितु उसकी संस्कृति एवं परम्परा द्वारा क्रमशः निस्सृत एवं परिपोषित होते हैं।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् (NCERT) की पुस्तक "Document of Social, moral and spiritual Values in Education" में कुल 83 नैतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों की चर्चा की गई है।

प्रमुख मूल्य निम्नलिखित हैं–

- अनुशासन
- सहनशीलता
- समानता
- मैत्रीभाव
- विश्वसनीयता
- भाईचारा
- स्वतन्त्रता
- ईमानदारी
- मानवीय दृष्टिकोण
- कृतज्ञता
- कर्तव्य भावना
- करुणा
- साहस
- जिज्ञासा
- सहयोग
- शान्ति
- अहिंसा
- राष्ट्रीय चेतना
- सत्यनिष्ठा
- राष्ट्रीय एकता
- समाजवाद
- टीम भावना
- धर्म निरपेक्षता व सर्वधर्म समभाव
- सहानुभूति
- आत्मसम्मान

Downloaded From **www.dietmathura.org**

- आत्मविश्वास
- समयशीलता
- स्वावलम्बन
- आत्म संयम
- आत्म नियंत्रण
- समाज सेवा
- सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना
- नियमितता
- देशभक्ति
- स्वच्छता
- शुद्धता
- नेतृत्व
- कर्तव्यनिष्ठा
- समय का सदुपयोग
- आज्ञाकारिता इत्यादि।

मूल्यपरक शिक्षा की आवश्यकता एवं उद्देश्य

भारत जैसा देश अपनी कला, संस्कृति, दर्शन आदि की गौरवशाली परम्पराओं पर सदा से ही गौरवान्वित होता रहा है किन्तु समसमायिक युग में अनास्था एवं पारस्परिक अविश्वास के वातावरण में हमारी प्राचीन परम्परा एवं मूल्य कुछ धूमिल से हो गये हैं। तथाकथित आधुनिकता की भ्रामक अवधारणा, अस्तित्ववादी जीवन, अनात्मपरक नास्तिकता, पाश्चात्य सभ्यता का अन्धानुकरण, तर्क प्रधान चिन्तन आदि के समेकित प्रभावों से हमारे पुरातन मूल्य प्रदूषित हो गये।

उक्त कलुषित एवं संकटग्रस्त वातावरण ने मूल्यपरक शिक्षा की अपरिहार्यता की ओर सभी का ध्यान आकृष्ट कर लिया है। हमने संक्रमण काल में कर्तव्य या कार्य संस्कृति के स्थान पर उपभोक्तावादी संस्कृति का अन्धानुकरण कर लिया है। इसी उपभोक्ता संस्कृति ने मूल्य परक शिक्षा की आवश्यकता को और भी प्रबल बना दिया है।

मूल्यों के हास या विघटन के प्रमुख कारण अधोलिखित हैं–

- औद्योगीकरण , नगरीकरण, जनसंख्या में तीव्र वृद्धि
- आधुनिक दर्शन एवं मनोविज्ञान के क्षेत्र में मार्क्सवाद, व्यक्तिवाद, अस्तित्ववाद, फ्रायडवाद, भौतिकवाद आदि का जमकर प्रचार–प्रसार
- बौद्धिकता और तर्क का आधिक्य
- राष्ट्र के कर्णधारों की कथनी व करनी में अन्तर से उपजता युवा असंतोष
- सामाजिक राजनीतिक जीवन में व्याप्त विघटनकारी प्रवृत्तियाँ
- बढ़ती असुरक्षा की भावना

Downloaded From www.dietmathura.org

उपर्युक्त एवं अन्य कारकों के समेकित प्रभाव के फलस्वरूप मनुष्य के आचरण में जो गिरावट आई है, उसने सभी प्रबुद्ध विचारकों को चिन्तित किया है। देश में प्रायः सभी राजनीतिक, सामाजिक, साहित्यिक एवं शैक्षिक मंचों से जीवन मूल्यों की पुनः प्रतिष्ठा की मांग की जा रही है। इनके पुनः प्रतिष्ठापन के लिए मूल्यपरक शिक्षा की आवश्यकता महसूस की जा रही है। यही कारण है कि नई शिक्षा नीति में भी मूल्यों के गिरते स्तर पर चिन्ता करते हुए शिक्षा में मूल्यों पर बल दिया गया है।

विद्यालय स्तर पर मूल्यपरक शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्य होने चाहिए–

- छात्रों को एक उत्तरदायी नागरिक बनने के लिए प्रशिक्षित करना।
- राष्ट्रीय लक्ष्यों– समाजवाद, राष्ट्रीय एकता, लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता एवं सर्वधर्म समभाव, सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक न्याय का सही अर्थों में बोध कराना।
- देश की सामाजिक, सांस्कृतिक , धार्मिक परिस्थितियों के सम्बन्ध में उन्हें जागरुक बनाना।
- छात्रों में सहयोग, प्रेम, करुणा, शान्ति, अहिंसा, साहस, समानता, न्याय, बन्धुत्व, वैज्ञानिक दृष्टिकोण आदि मौलिक गुणों का विकास करना।
- छात्रों को स्वयं को जानने के लिए प्रोत्साहित करना जिससे वे स्वयं में आस्था रखने में समर्थ हो सकें।
- स्वयं व अपने साथियों के प्रति, स्वदेश के प्रति, मानवता के प्रति, सभी धर्मों एवं संस्कृतियों के प्रति, जीवन एवं पर्यावरण के प्रति उनमें समुचित दृष्टिकोण विकसित करना।

जीवन मूल्य

शैक्षिक मूल्य

- शिक्षा में नियमितता व निष्ठा
- मूल्यांकन में वस्तुनिष्ठता एवं निष्पक्षता
- स्वस्थ प्रतियोगिता की भावना
- व्यवसाय के प्रति निष्ठा
- छात्रों की सृजनात्मकता का पोषण
- मौलिकता के प्रति सद्भाव

नैतिक मूल्य

- ईमानदारी
- त्याग
- निष्ठा
- करुणा
- दया
- नम्रता
- उत्तरदायित्व की भावना

Downloaded From www.dietmathura.org

सामाजिक व राजनैतिक मूल्य

- सामाजिक दायित्व
- आदर्श नागरिकता
- लोकतन्त्र
- मानवतावाद
- सामाजिक संवेदनशीलता
- राष्ट्रीय एकता

वैश्विक मूल्य

- स्वतंत्रता
- न्याय
- अवसर की समानता
- दासता उन्मूलन

वैज्ञानिक दृष्टिकोण

- वस्तुनिष्ठता
- सृजनात्मक सोच
- तथ्यपरकता
- तर्कयुक्तता
- ज्ञान के प्रति उत्सुकता

सांस्कृतिक मूल्य

- सांस्कृतिक विरासत को अक्षुण्ण रखना।

पर्यावरण मूल्य

- पर्यावरण संरक्षण
- वृक्षारोपण
- वनसंरक्षण
- वन्य जीवों के प्रति दया

मूल्य परक शिक्षा

मूल्यपरक शिक्षा की अवधारणा अपेक्षाकृत व्यापक एवं नवीन अवधारणा है। पारम्परिक रूप में धार्मिक शिक्षा, नैतिक शिक्षा जैसी अवधारणा जो प्रचलित हैं उससे यह भिन्न है। जहाँ तक मूल्यपरक शिक्षा का प्रश्न हैं, इससे तात्पर्य उस शिक्षा से है, जिसमें हमारे नैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक मूल्य माला के समान पिरोये गये हों। इसके अन्तर्गत विभिन्न तत्वों, आयामों, विषयों को मूल्य परक बनाकर उनके माध्यम से विभिन्न मूल्यों को छात्रों के व्यक्तित्व में समाहित करने पर बल दिया जाता है जिससे उनका सन्तुलित व सर्वांगीण विकास हो सके। मूल्य परक शिक्षा को दो अर्थों में प्रयुक्त किया जाता है।

Downloaded From www.dietmathura.org

मूल्यों की शिक्षा

- इसके अन्तर्गत नैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा इतिहास, भूगोल, जीवविज्ञान, रसायनशास्त्र, भौतिकी आदि की शिक्षा की भाँति एक स्वतंत्र विषय के रूप में दी जाती है।

मूल्य समाहित शिक्षा

- सभी विषयों में मनोवैज्ञानिक ढंग से मूल्य समाहित करके उक्त मूल्यों के विकास पर बल देते हैं।

मूल्य परक शिक्षा के सन्दर्भ में मार्गदर्शक सिद्धान्तों का सदैव ध्यान रखना होता है ताकि वांक्षित परिणाम सकारात्मक मिल सकें। ये मार्गदर्शक सिद्धांत अधोलिखित हैं—

मूल्य परक शिक्षा के मार्गदर्शक सिद्धान्त

- मूल्यपरक शिक्षा को समाज की सामाजिक, आर्थिक व्यवस्था के सन्दर्भ में क्रियान्वित किया जाना चाहिए।
- मूल्यपरक शिक्षा धार्मिक शिक्षा से भिन्न है। अतः इसमें धर्म विशेष पर बल नहीं दिया जाना चाहिए।
- मूल्यपरक शिक्षा के कार्यक्रम की सफलता घर, विद्यालय के आदर्श वातावरण तथा शिक्षक के आधार पर होनी चाहिए।
- इसे स्वतंत्र विषय के रूप में पाठ्यक्रम में स्थान प्रदान नहीं किया जाना चाहिए। विभिन्न विषयों में इसके लिए मूल्यों को समाहित किया जाए।
- संविधान में निर्देशित मूल्य एवं सामाजिक उत्तर दायित्व मूल्यपरक शिक्षा का केन्द्र बिन्दु होना चाहिए।

मूल्यों के विकास में भूमिकाएं

- परिवार की भूमिका
- समाज की भूमिका
- विद्यालय की भूमिका

मूल्यों के विकास में परिवार की भूमिका

मानवीय सम्बन्धों के मूल्य स्रोत के रूप में परिवार रूपी संगठन का प्राथमिक स्थान है। परिवार के अतिरिक्त माता–पिता, भाई–बहन कहीं नहीं मिलते, किन्तु व्यक्ति परिवार से बाहर निकलकर भी स्त्रियों से मातृवत्, बड़ों से पितृवत्, समान आयु के व्यक्तियों से भ्रातृवत् सम्बन्धों को निर्मित करता है। यदि उसके पारिवारिक अनुभव सुखद, सहज, सरल एवं सामंजस्यपूर्ण होते हैं, तो कालान्तर में वह उसी प्रकार के सम्बन्ध पैदा कर लेता है। अतः परिवार ही वह धरातल हैं जहाँ बालक का समाजीकरण होता है। यहीं पर वह जीवन की प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करता है। इतना ही नहीं वह मानवीय, सामाजिक, नैतिक, राजनैतिक आदि गुणों को सीखता है। इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध विद्वान रेमण्ट महोदय ने भी उद्घाटित किया है—

Downloaded From www.dietmathura.org

''बच्चे भले ही एक ही विद्यालय में पढ़ते हों, एक ही समान शिक्षकों से प्रभावति हों, एक सा ही अध्ययन करते हों, फिर भी वे अपने सामान्य ज्ञान, रुचियों, भाषण, व्यवहार और नैतिकता में अपने घरों के कारण, जहाँ से वे आते हैं, पूर्णतया भिन्न हो सकते हैं।''

वस्तुतः मूल्यों की शिक्षा बच्चे के घर से शुरु होती है। घर केवल ईंट–पत्थरों से निर्मित ढाँचा या इमारत ही नहीं होता है अपितु घर का अस्तित्व, बहुत कुछ मानसिक या भावनात्मक होता है। 'अपना पन' ही घर है, घर का भाव है। यही अपनापन उसे शिष्टाचार एवं सदाचार सिखाता है। परिवार बालक को सिखाता है कि वह शिष्ट व्यवहार करे, मीठी वाणी बोले, सम्मान देना सीखे, सच बोले, स्वच्छता का ध्यान रखे इत्यादि। इन्हीं आदतों का सामाजिक मूल्य अथवा नैतिक महत्व बचपन में नहीं समझा जा सकता है, परन्तु बच्चा सिखाने से नहीं दिखाने से सीखता है। उसके सामने जैसा नमूना रखा जायेगा, वह देखकर वैसा ही करने लगेगा। अनुकरण ही उसका स्वभाव है। इसका लाभ उठाकर उसमें मूल्यों का विकास किया जा सकेगा।

परिवार निम्नलिखित क्रियाकलापों से एवं व्यवहारों के माध्यम से बच्चों में मूल्यों का विकास कर सकता है–

- माता–पिता परिवार के वातावरण को मूल्योन्मुख बनाकर बच्चों में मूल्यों का विकास कर सकते हैं।
- माता–पिता बच्चों को मूल्य आधारित कथानक या कहानियाँ पढ़ने तथा सुनने के लिए अवसर प्रदान कर सकते हैं।
- माता–पिता तथा परिवार के अन्य सदस्य बच्चों के सामने अपने आचरण एवं क्रियाकलापों को व्यवहार में प्रस्तुत करें। उनकी कथनी व करनी में अन्तर न हो।
- मूल्योन्मुख व्यवहारों के प्रदर्शन के लिए बच्चों को उपयुक्त पुरस्कार दिये जाने चाहिए।
- बालक में स्वस्थ आदतों एवं मूल्यों के विकास के लिए माता–पिता को अपनी कमियों एवं कमजोरियों को समझना चाहिए और उन्हें नियन्त्रित करने का प्रयास करना चाहिए। उपयुक्त परिवेश प्रदान करके वे बालकों में मूल्यों का विकास कर सकते हैं।

मूल्यों के विकास में समाज की भूमिका

मनुष्य ने अपने लम्बे इतिहास में समाज रूपी संगठन का निर्माण किया है। इस संगठन में हमें कार्य करने के लिए सीमाओं के दायरे में रखा गया है। इस संगठन में जहाँ एक ओर कुछ कार्यों को करने की पूर्ण स्वतन्त्रता व स्वच्छन्दता है। वहीं दूसरी ओर कुछ कार्यों के कार्यान्वयन पर निषेध भी है। कहीं अधिकारों की सूची है तो कहीं कर्तव्यों की अपेक्षायें भी हैं। समाज रूपी संगठन में एक व्यवस्था का निर्धारण किया गया है जिसमें हमें एक निश्चित प्रकार से रहना एवं व्यवहार करना पड़ता है। इतना ही नहीं, इस रहन–सहन तथा व्यवहारों में जो सम्बन्ध पाया जाता है उसी को समाज कहते हैं।

मानवीय समाज अपने मूल्यों, आदर्शों, परम्पराओं, मानकों, क्रियाओं को आने वाली सन्तति को प्रदान करता हुआ स्वयं को जीवित रखता है। मूल्यों के विकास में समाज की भूमिका को व्याख्यायित करते हुए विभिन्न विद्वानों द्वारा अपने–अपने तरीके से मत दिए गये हैं–

Downloaded From www.dietmathura.org

''समाज शिक्षा संस्थाओं को अपने सदस्यों में ज्ञान, कौशलों, आदर्शों, मूल्यों तथा व्यवहारों का प्रसार करने एवं सुरक्षित रखने के लिए स्थापित करता है जो कि उसके स्वयं के स्थायित्व एवं निरन्तर विकास के लिए परम आवश्यक हैं।'' **—फ्रैंकलिन**

''समाज शिक्षकों से भरा हुआ है। ये सब जानबूझ कर और चेतन व अचेतन रूप में व्यक्तित्व के पूर्ण विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं।'' **— ओटावे**

उक्त विद्वानों एवं अन्य विद्वानों द्वारा मूल्यों के विकास में समाज की भूमिका के सम्बन्ध में दिये गये मतों से स्पष्ट है कि समाज विभिन्न सामाजिक, धार्मिक व सांस्कृतिक क्रियाकलापों का आयोजन करके मूल्यों के विकास के लिए अवसर प्रदान कर सकता है।

अन्त में यही कहा जा सकता है कि बालकों में अनुकरण की मनोवृत्ति जन्मजात होती है। बालक किशोरों का अनुकरण करते हैं, किशोर अपने से बड़ों का अनुकरण करते हैं, युवक प्रौढ़ जनों का। प्रौढ़ जनों में शिक्षक, अभिभावक, राजनेता, प्रशासक एवं समाज व राष्ट्र के कर्णधार सभी आते हैं। ये सभी व्यक्ति यह महसूस करते हैं कि उन्हें समाज की नवीन सन्तति में मूल्यों एवं आदर्शों की उपयुक्त प्रस्तुति रखनी होगी, जिसका अनुसरण करके नवीन सन्तति के सदस्य अपने जीवन पथ को परिष्कृत करने में समर्थ हो सकेंगे।

मूल्यों के विकास में विद्यालय की भूमिका

छात्रों में मूल्यों के विकास में विद्यालयी शिक्षा महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। बच्चा परिवार रूपी संस्था से पारिवारिक वातावरण के अनुसार मूल्यों को समाहित कर विद्यालय में प्रवेश करता है। पारिवारिक पृष्ठभूमि में विभिन्नता स्वाभाविक होती है। विद्यालय में आने के उपरान्त सकारात्मक मूल्यों को विद्यालय जैसी संस्था में और भी परिष्कृत किया जाता है। मूल्यों के विकास में विद्यालय की भूमिका के सम्बन्ध में प्रसिद्ध 'विद्वान राबिन मैरों' के अनुसार—

विद्यालय में मूल्यों के विकास के दो प्रमुख आधार हैं—

1. विद्यालय का समरसतापूर्ण एवं सौहार्दपूर्ण, स्वस्थ पर्यावरण
2. शिक्षकों द्वारा आदर्श प्रस्तुतीकरण

चर्चा बिन्दु—मूल्यों के विकास हेतु विद्यालय का वातावरण किस प्रकार का होना आवश्यक हैं?

विद्यालयी वातावरण, अध्यापकों का व्यक्तित्व एवं व्यवहार तथा विद्यालय में उपलब्ध अर्ध संरचनात्मक सुविधाएं छात्रों को मूल्योन्मुख बनाने में महती भूमिका निभाती हैं। विद्यालय की प्रातः कालीन सभा, पाठ्यक्रम एवं पाठ्य सहगामी क्रियायें, सभी धर्मों के धार्मिक उत्सवों का आयोजन, कार्यानुभव, खेलकूद, विषय क्लब, समाज सेवा जैसे क्रियाकलाप छात्रों में सहयोग एवं पारस्परिक

Downloaded From www.dietmathura.org

सद्भाव, निष्ठा एवं ईमानदारी, अनुशासन एवं सामाजिक दायित्व आदि जीवन मूल्यों के विकास में सहायक होते हैं। अतः मूल्यों के विकास के लिए विद्यालय का वातावरण लोकतांत्रिक, उत्साहवर्धक, स्वच्छ, सौन्दर्यपूर्ण, अनुशासनप्रिय एवं सृजनात्मक होना चाहिए।

मूल्यों की सीख तथा आदर्श प्रस्तुति में घनिष्ठ सम्बन्ध है। एक बार करके दिखाना सौ बार कहने के बराबर होता है। मात्र कहने की अपेक्षा करने का प्रभाव अधिक गहन एवं स्थायी होता है। शिक्षकों द्वारा प्रस्तुत आदर्श प्रस्तुति से छात्रों में मूल्यों का आत्मसातीकरण सहज एवं सरलता से हो सकता है। इस सम्बन्ध में टैगोर के विचार भी यही थे– '' हमारे शिक्षक जब यह समझने लगेंगे कि हम गुरु के आसन पर बैठे हैं और हमें अपने जीवन द्वारा छात्रों में प्राण फूँकने हैं, अपने ज्ञान द्वारा उनके हृदय में ज्ञान एवं विद्या की ज्योति जगानी है, अपने प्रेम द्वारा बालकों का उद्धार करना है, उनके अमूल्य जीवन में सुधार करना है, तब वे ऐसी वस्तु प्रदान करने के लिए तत्पर हो सकेंगे जो बेचे जाने वाली नहीं है, जो मूल्य देकर प्राप्त नहीं हो सकती। उसी समय ये छात्रों के समीप सरकार द्वारा नहीं वरन् धर्म के विधान और प्राकृतिक नियम के अनुसार सम्मानित एवं पूज्य बन सकेंगे।

राष्ट्रीय एकता व अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव की शिक्षा

राष्ट्र एक विशालकाय परिदृश्य है, जो समग्रता, सहिष्णुता तथा सद्भाव का प्रतीक है। राष्ट्र की अस्मिता तथा व्यक्तित्व किसी एक भाषा, एक धर्म तथा एक जाति तक परिसीमित नहीं हो सकता क्योंकि राष्ट्र इन सभी घटकों का पुंज होते हुए भी इससे ऊपर है। भाषा, जाति, धर्म आदि व्यक्ति को सच्चा नागरिक बनाने तथा उसके संस्कारों को और अधिक परिष्कृत करने के साधन हैं।

प्रो0 जिमर्न ने अपनी पुस्तक Nationalism and Government में व्यक्त किया है–

''मेरी दृष्टि में राष्ट्रीयता का प्रश्न सामूहिक जीवन, सामूहिक विकास तथा सामूहिक आत्म सम्मान से सम्बन्धित है।''

इस प्रकार स्पष्ट है कि भूमि, भूमिवासी जन तथा जन–संस्कृति तीनों के सम्मिलन से राष्ट्र का स्वरूप बनता हैं।

शैक्षिक एवं राजनैतिक तत्वों के साकार प्रतीक डॉ0 राधाकृष्णन् ने अपने इस कथन द्वारा हमारे मानस पटल पर मोटे और गहरे अक्षरों से अंकित करने की चेष्टा की है कि यदि हममें राष्ट्र के रूप में जीवित रहने की तनिक भी अभिलाषा है, तो हमें राष्ट्रीय एकता को अनिवार्य आवश्यकता के रूप में स्वीकार करना पड़ेगा। भारत की जनसंख्या में असाधारण विविधता है, उसके विभिन्न भागों को एक–दूसरे से पृथक करने वाली दूरियाँ बहुत लम्बी हैं, उसके निवासियों के दैनिक जीवन एवं व्यवसायों को प्रभावित करने वाली जलवायु एवं भौतिक दशाओं में अत्यधिक विभिन्नता है। यह अति तीव्र गति से होने वाले सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं प्राविधिक परिवर्तनों के युग में से गुजर रहा है। ऐसे संक्रमण काल में भारतीयों को अत्यधिक सतर्कता से कार्य करना चाहिए। वे ऐसा तभी कर सकते हैं, जब वे अपने आन्तरिक भेदभावों को निश्चित सीमाओं के अन्तर्गत रखें और इसके साथ ही सामान्य राष्ट्रीयता की भावना का विकास करें और अपने देश के उत्थान के लिए कन्धे से कन्धा मिलाकर कार्य

Downloaded From www.dietmathura.org

करें। राष्ट्रीय एकता की हर देश को हर समय आवश्यकता है, किन्तु भारत जैसे देश के लिए इसकी कहीं अधिक आवश्यकता है।

प्रशिक्षुओं से चर्चा करें–

- राष्ट्रीय एकता की विभिन्न प्रकार की विभेदक शक्तियों जैसे–
  - जातिवाद
  - साम्प्रदायिकता
  - भाषाई विरोध
  - क्षेत्रवाद
  - राजनैतिक हस्तक्षेप
  - प्रान्तीयता
  - राजनीतिक दलदल

अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव

शाब्दिक अर्थ में अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव दो शब्दों अन्तर्राष्ट्रीय एवं सद्भाव से मिलकर बना है। इससे स्पष्ट है कि विभिन्न राष्ट्रों के बीच सम्बन्ध और अच्छी भावना ही अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव को व्यक्त करती है। दूसरे शब्दों में अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव विभिन्न राष्ट्रों के मध्य अच्छी भावना से युक्त सम्बन्ध रखने का मंतव्य देता है।

''अन्तर्राष्ट्रीयता एक भावना है, जो व्यक्ति को यह बताती है कि वह केवल अपने राष्ट्र का ही नहीं, अपितु विश्व का नागरिक भी है।'' – **गोल्ड स्मिथ**

इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव के निम्नलिखित तत्व उभर कर सामने आते हैं–

- अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव राष्ट्र के नागरिकों को विश्व का नागरिक बनने की प्रेरणा प्रदान करता है।
- अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव सभी राष्ट्रों को अपनी संकुचित राष्ट्रीय भावना की परिधि से ऊपर उठकर वैश्विक सहयोग बढ़ाने का मन्तव्य देता है।
- अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव समस्त राष्ट्रों को आपसी समझदारी से रहने तथा विपदाओं का मिल–जुलकर मुकाबला करने का मन्तव्य देता है।
- अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव शान्तिपूर्ण जीवन व्यतीत करने तथा वैश्विक परिप्रेक्ष्य में व्यापार, वाणिज्य के द्वारा सभी राष्ट्रों के बहुमुखी विकास का मूलमंत्र देता है।

महत्व

प्रत्येक राष्ट्र की अपनी सभ्यता, संस्कृति, रीति व्यवहार–नीति, धर्म के प्रति प्रेम होना स्वाभाविक है। अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव की आवश्यकता एवं महत्व को निम्नवत् व्यक्त किया जा सकता है–

- सम्पूर्ण विश्व की सुरक्षा एवं संरक्षा के लिए अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव की आवश्यकता है।
- विश्व के सभी राष्ट्रों के निवासियों में मानवीय मूल्यों तथा सद्गुणों के उद्भव के लिए आवश्यक है।

Downloaded From **www.dietmathura.org**

- सभी देशों के आर्थिक एवं वैज्ञानिक विकास के लिए आवश्यक है।
- पिछड़े राष्ट्रों को इससे विकास का अवसर मिलता है।
- प्रत्येक देश में विद्यमान आन्तरिक मतभेदों, आतंकवाद आदि की समाप्ति में यह महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।
- विविध राष्ट्रों में परस्पर आदान–प्रदान , आवागमन, शैक्षिक भ्रमण हेतु आवश्यक है।

अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव के विकास में शिक्षा तभी कारगर भूमिका अदा कर सकती है जब शिक्षा का एक लक्ष्य/उद्देश्य अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव का विकास करना निरूपित किया जाय। इसका उद्देश्य शिक्षा या ज्ञान द्वारा सद्भावना बढ़ाना है। यह झगड़े को न केवल समाप्त करता है अपितु मित्रता भी स्थापित करता है। पाठ्य सहगामी क्रियायें अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव विकास में महती भूमिका अदा कर सकती हैं। अतएव इसके लिए विद्यालय में समय–समय पर विविध प्रकार की पाठ्य सहगामी क्रियाओं का आयोजन किया जाना चाहिए यथा–

- प्रदर्शनी लगाना
  - जन्म दिन मनाना
  - अन्तर्राष्ट्रीय दिवसों एवं सप्ताहों का आयोजन
  - विदेशी विद्वानों के भाषणों का आयोजन
  - अन्तर्राष्ट्रीय खेल आयोजन
  - विविध क्लबों का गठन
  - भ्रमण इत्यादि।

प्रशिक्षुओं से यूनेस्को–(United Nations Educational Scientific and cultural organization) की चर्चा करें तथा उसकी स्थापना के लक्ष्यों व उद्देश्यों पर गोष्ठी कराएँ।

लोकतांत्रिक, वैज्ञानिक व तकनीकी दृष्टिकोण का विकास

लोकतन्त्र शासन की व्यवस्था का वह रूप है जिसमें जनता का, जनता के द्वारा और जनता के लिए शासन हो। शिक्षा के सार्वभौमीकरण के निर्धारण में विभिन्न घटकों का महत्वपूर्ण योगदान होता है। इसमें से लोकतांत्रिक दृष्टिकोण जमीनी स्तर से जुड़ी वह व्यवस्था है, जिसमें जनता की आशाओं, उम्मीदों, अपेक्षाओं व समय की माँग के अनुरूप व्यवस्था में आमूल–चूल परिवर्तन जनता द्वारा सम्भव बनता है। ऐसी व्यवसथा में किसी व्यक्ति, वर्ग, समुदाय, धर्म, मूल, जाति, वंश से बिना राग–द्वेष, पक्षपात किये बिना शासन विकास के लिए अपनी भूमिका सुनिश्चित करने की गारण्टी देता है।

लोकतन्त्र के विकास का आधार जनता है और जनता का आधार व्यक्ति होता है। अतः लोकतंत्रात्मक शासन व्यवस्था का आदर्श योग्य नागरिक तैयार करना है जिसके लिए व्यक्ति विकास सुविधाएं, स्वतन्त्रता और अवसर की इच्छा करता है। अतः लोकतंत्रात्मक व्यवस्था में निम्न आदर्श माने जा सकते हैं–

- मत व्यक्त करने की स्वतंत्रता और अवसर
- व्यक्तित्व का आदर और सुरक्षा

Downloaded From www.dietmathura.org

- जनशक्ति का आदर
- बन्धुत्व की भावना का प्रसार
- लोकतन्त्र में शान्ति का महत्व
- लोकहित व सहयोग की भावना
- लोकतांत्रिक सामाजिक वातावरण

प्रशिक्षुओं से उक्त आदर्शों की बिन्दुवार चर्चा करायें तथा भारतीय समाज में इनके महत्व पर निबन्ध लेखन प्रतियोगिता का आयोजन कराएँ।

शिक्षा आदान–प्रदान की प्रक्रिया में अध्यापक का प्रमुख स्थान है। लोकतंत्रात्मक राज्य में तो उसका महत्व और भी अधिक बढ़ जाता है। अध्यापकों का यह कर्तव्य बन जाता है कि उसका ध्यान केवल पाठ्यक्रम की पूर्णता पर ही न रह जाए बल्कि छात्रों में सच्ची नागरिकता, सामाजिकता तथा सच्चरित्रता जैसे मूल्यों का विकास करना भी हो। ध्यातव्य है यह कार्य तभी पूर्णता को प्राप्त कर सकता है जबकि उसका प्रशिक्षण लोकतंत्रीय आदर्शों के अनुरूप हुआ हो तथा वह सच्चरित्रता की भावनाओं से ओत–प्रोत हो।

लोकतंत्र की सफलता का आधार शिक्षा है। यदि देश की अधिकांश जनता अशिक्षित या निरक्षर है, तो ऐसी परिस्थिति में लोकतंत्र की सफलता पर प्रश्नचिह्न लगना स्वाभाविक है। यही कारण है कि विश्व के प्रमुख लोकतांत्रिक गणराज्यों में सर्वसाधारण में शिक्षा–प्रसार की ओर ध्यान दिया जाता है। वास्तविकता यह है कि शिक्षित नागरिक ही शासन व राजनीति के उत्तरदायित्वों का वहन निष्ठापूर्वक करने में सक्षम हो सकता है। शिक्षित नागरिक ही प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से शासन की प्रक्रिया में अपनी भूमिका सुनिश्चित कर सकता है तथा मतदान का उपयोग कर सकता है। शिक्षा के द्वारा ही व्यक्ति में लोकतांत्रिकता रूपी दृष्टिकोण का विकास किया जा सकता है। यही कारण है कि शिक्षा के द्वारा छात्रों में लोकतांत्रिक दृष्टिकोण का विकास करने पर सदा से ही भारत जैसे देश में बढ़ावा दिया जा रहा है।

लोकतांत्रिक देश में शिक्षा का योगदान

- व्यावहारिक आदर्शों का निर्धारण
- वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास
- आर्थिक सम्पन्नता में वृद्धि
- सामाजिक नियंत्रण की शिक्षा
- बेरोजगारी उन्मूलन
- बढ़ती जन्म दर पर लगाम
- अपराधी सुधार इत्यादि।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि शिक्षा ही वह माध्यम है जिसके द्वारा किसी भी देश में लोकतांत्रिक मूल्यों का संवर्द्धन किया जा सकता है।

व्यक्ति के भावात्मक क्षेत्र से सम्बन्धित व्यवहारगत परिवर्तन, जिसके द्वारा व्यक्ति, वस्तु या स्थिति के प्रति एक निश्चित दृष्टिकोण प्रदर्शित करता है, उसे 'अभिवृत्ति' कहते हैं। उदार मनोवृत्ति, सहज जिज्ञासा, सत्य के प्रति निष्ठा, अपनी कार्य पद्धति में पूर्ण विश्वास और अपने परिणाम की सत्यता को प्रयोग में लाकर प्रमाणित करना आदि ये सब तकनीकी और वैज्ञानिक अभिवृत्ति के अन्तर्गत आते हैं

Downloaded From www.dietmathura.org

अर्थात् परम्परागत विचारों से हटकर स्वतंत्र एवं मुक्त चिन्तन की प्रवृत्ति तकनीकी और वैज्ञानिक अभिवृत्ति का द्योतक है।

विद्यार्थियों में वैज्ञानिक व तकनीकी दृष्टिकोण का विकास करने के सम्बन्ध में विद्यालय रूपी संस्था द्वारा निम्नलिखित कदम उठाए जा सकते हैं—

अध्यापक का व्यक्तित्व

छात्रों में वैज्ञानिक व तकनीकी दृष्टिकोण विकसित करने के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि अध्यापक स्वयं का दृष्टिकोण भी वैज्ञानिक बनाएँ। उसे अपना व्यवहार इस प्रकार रखना चाहिए कि छात्रों पर सत्यप्रियता और तार्किकता का प्रभाव पड़े। उसका यह कर्तव्य बनता है कि वह बिना पर्याप्त आधार के/प्रामाणिकता के किसी भी तथ्य को स्वीकार न करें।

उचित शिक्षण प्रविधियाँ

शिक्षण प्रभावशाली एवं क्रमबद्ध होना चाहिए। छात्रों को प्रत्येक तथ्य यथासम्भव प्रायोगिक आधार पर, मॉडल प्रदर्शन द्वारा समझाया जाना आवश्यक है। अध्यापकों द्वारा निरीक्षण, प्रयोग तथा निष्कर्ष निकालने के अवसरों के साथ—साथ इसमें छात्रों की भी परस्पर सहभागिता ली जानी चाहिए।

जिज्ञासाओं की सन्तुष्टि

छात्रों में प्रकृति के कई अनसुलझे, तथ्यों अनकही, अनुसनी जानकारियों के प्रति, उनके रहस्यों के प्रति तीव्र जिज्ञासा होना स्वाभाविक होता है। छात्र उन अनजाने तथ्यों के बारे में जानकारी करना चाहते हैं। उनकी इन सभी जिज्ञासाओं को यथासम्भव सन्तुष्ट करने का प्रयास किया जाना चाहिए तथा ज्ञान के संचार का क्रम किसी भी स्तर पर रुकने न पाये।

अन्ध विश्वासों का समापन

छात्रों में व्याप्त अन्धविश्वास, जिसे समाज द्वारा उन्हें विरासत में पीढ़ी दर पीढ़ी के क्रम में दिया गया है, उसे उनमें वैज्ञानिक व तकनीकी दृष्टिकोण का विकास करके ही समाप्त किया जा सकता है। वैज्ञानिक तर्कों, सिद्धान्तों, प्रविधियों का उपयोग कर इसमें सुधार लाया जा सकता है।

नवीन वैज्ञानिक साहित्य का उपयोग

छात्रों में वैज्ञानिक सोच उत्पन्न करने के लिए उन्हें विज्ञान सम्बन्धी नवीनतम साहित्यों के सतत अध्ययन हेतु प्रेरित करना चाहिए। विद्यालय व्यवस्था का भी यह परम दायित्व बनता है कि वैज्ञानिक खोजों, समसामयिक घटनाओं, उपलब्धियों सम्बन्धी साहित्यों की पुस्तकालयों में उपलब्धता बनी रहे। इतना ही नहीं महान वैज्ञानिकों की जीवनियाँ तथा प्रमुख आविष्कारों की कहानियाँ आदि प्रेरणादायक हो सकती हैं।

Downloaded From www.dietmathura.org

अभ्यास प्रश्न

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. मूल्य क्या हैं? मूल्यों को भारतीय समाज के सम्बन्ध में वर्गीकृत कीजिए।

2. मूल्यपरक शिक्षा की आवश्यकता पर प्रकाश डालिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

3. मूल्यपरक शिक्षा के उद्देश्य बताइये।

4. मूल्यपरक शिक्षा के मार्गदर्शक सिद्धान्तों का उल्लेख कीजिए।

5. मूल्यों के विकास में विद्यालय की भूमिका स्पष्ट कीजिए।

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

6. अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव क्या है ?

7. अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव के विकास में पाठ्यसामग्री का आयोजन किस प्रकार होता है?

बहुविकल्पीय प्रश्न

8. 'Nationalism and Government' पुस्तक के लेखक हैं ?

(क) अर्बन　　(ख) जिम्मरमैन

(ग) जिमर्न　　(घ) पारसन्स

Downloaded From www.dietmathura.org

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्यायें— डॉ0 एस0पी0गुप्ता
- भारतीय शिक्षा में नवीन प्रवृतियां— डॉ0 प्रतिभा उपाध्याय
- शिक्षा के दार्शनिक आधार— डॉ0 रामशकल पाण्डेय
- शिक्षा के समाजशास्त्रीय आधार— डॉ0 सरयू प्रसाद चौबे
- शिक्षा की दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय पृष्ठभूमि— डॉ0 रामशकल पाण्डेय
- शिक्षा के मूल सिद्धान्त — डॉ0 रामशकल पाण्डेय
- उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षा— डॉ0 गुरसरनदास त्यागी / डॉ0 विजय कुमारनन्द
- शिक्षा के सामान्य सिद्धान्त— पी0डी0पाठक / जी0एस0 डी0 त्यागी
- शिक्षा के दार्शनिक एवं सामाजिक आधार— डा0 गुरसरनदास त्यागी
- उभरते हुये भारतीय समाज में शिक्षा— डॉ0 रामशसकल पाण्डेय
- वर्तमान भारतीय शिक्षा की समस्याएँ — डॉ0 रामशकल पाण्डेय व डॉ0 करुणाशंकर मिश्र
- शिक्षा के दार्शनिक एवं सामाजिक आधार— डॉ0 राजीव मालवीय
- विश्व के प्रमुख शिक्षा शास्त्री— डॉ0 रामशकल पाण्डेय

Downloaded From **www.dietmathura.org**